Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

टैगोर की श्रेष्ठ कहानियाँ

2

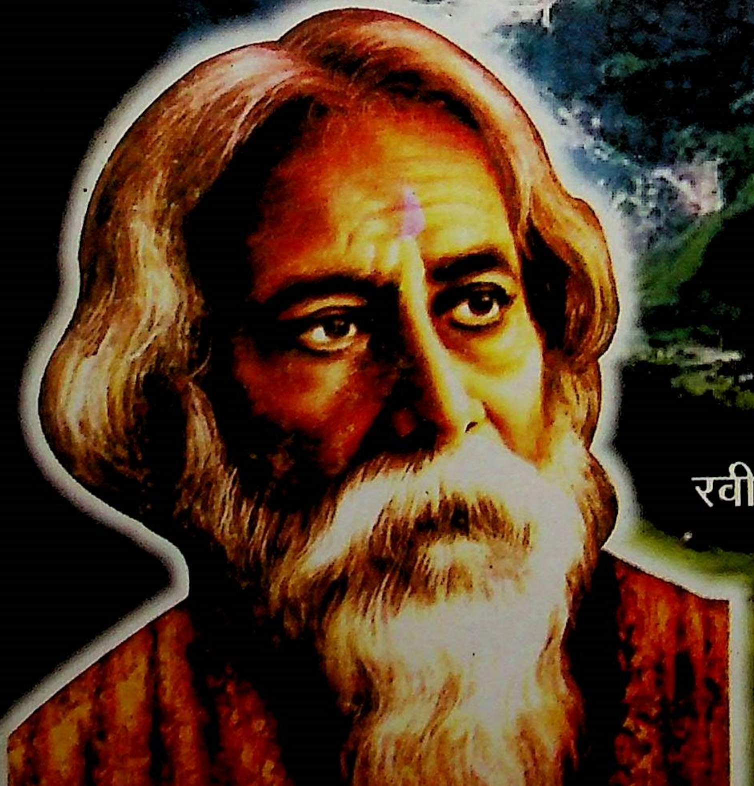

लेखक
रवीन्द्रनाथ टैगोर

CC-0. In Public Domain.

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

टैगोर
की श्रेष्ठ कहानियाँ

2

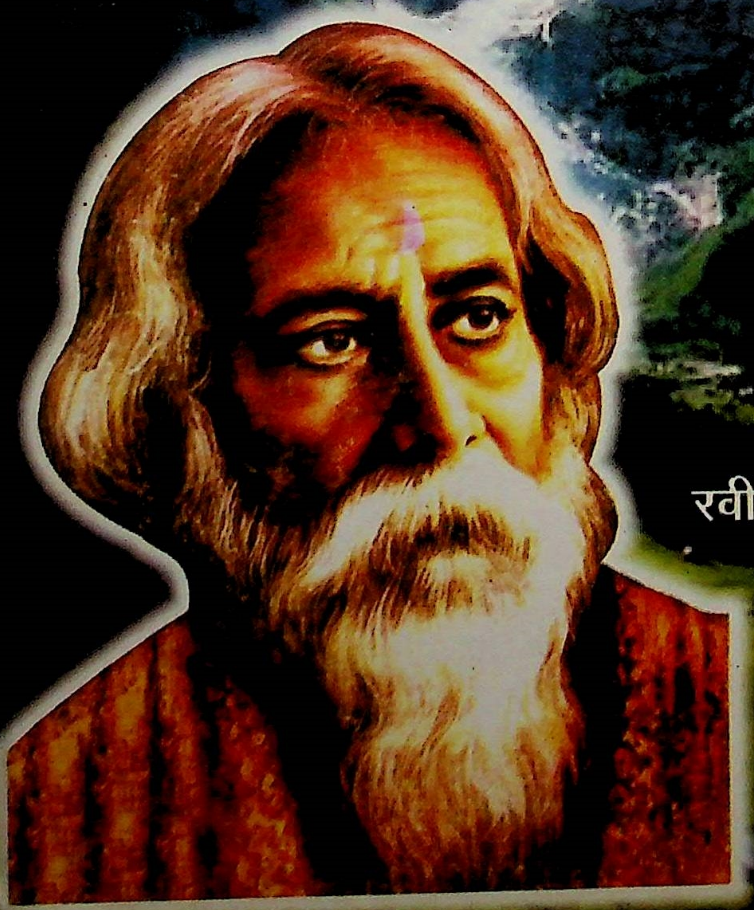

लेखक
रवीन्द्रनाथ टैगोर

CC-0. In Public Domain. Fundi...

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

29/A151 707927

टैगोर की श्रेष्ठ कहानियां

(भाग-2)

SPS Central Library Srinagar Acc No. 707924

लेखक
रविन्द्रनाथ टैगोर

नवनिधि प्रकाशन, गाजियाबाद (उ॰प्र॰)

Nawnedi Prakashan, Gaziabad

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अनुक्रम

1. कवि और कविता 7
2. यह स्वतन्त्रता 12
3. विद्रोही 17
4. सीमान्त 24
5. विदा 40
6. काबुलीवाला 53
7. अनाथ 62
8. अवगुंठन 74
9. पोस्टमास्टर 82
10. एक रात 88
11. जीवित और मृत 95
12. व्यवधान 108
13. विचारक 113
14. पाषाणी 120
15. भाई-भाई 140
16. कंचन 150

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कवि और कविता

1

राजमहल के सामने भीड़ लगी हुई थी। एक नवयुवक संन्यासी बीन पर प्रेम-राग अलाप रहा था। उसका मधुर स्वर गूंज रहा था। उसके मुख पर दया और सहृदयता के भाव प्रकट हो रहे थे। स्वर के उतार-चढ़ाव और बीन की झंकार दोनों ने मिलकर बहुत ही आनन्दप्रद स्थिति उत्पन्न कर रखी थी। दर्शक झूम-झूम कर आनन्द प्राप्त कर रहे थे।

गाना समाप्त हुआ, दर्शक चौंक उठे। रुपये-पैसे की वर्षा होने लगी। एक-एक करके भीड़ छटने लगी। नवयुवक संन्यासी ने सामने पड़े हुए रुपये-पैसे को बड़े ध्यान से देखा और आप-ही-आप मुस्करा दिया। उसने बिखरी हुई दौलत को एकत्रित किया और फिर उसे ठोकर मारकर बिखरा दिया। इसके पश्चात् बीन उठाकर एक ओर चल दिया।

2

राजकुमारी माया ने भी उस नवयुवक संन्यासी का गाना सुना था। दर्शक प्रतिदिन वहां आते और संन्यासी को न पाकर निराश हो वापस चले जाते थे। राजकुमारी माया भी प्रतिदिन राजमहल के सामने देखती और घंटों देखती रहती। जब रात्रि का अन्धकार सर्वत्र अपना आधिपत्य जमा लेता तो राजकुमार खिड़की में से उठती। उठने से पहले वह सर्वदा एक निराशाजनक करुणामय आह खींचा करती थी।

इसी प्रकार दिन, हफ्ते और महीने बीत गए। वर्ष समाप्त हो गया, परन्तु युवक संन्यासी फिर दिखाई न दिया। जो व्यक्ति उसकी खोज में आया करते थे, धीरे-धीरे उन्होंने वहां आना छोड़ दिया। वे उस घटना को भूल गये, किन्तु राजकुमारी माया....

राजकुमारी माया उस युवक संन्यासी को हृदय से न भुला सकी। उसकी आंखों में हर समय उसका चित्र फिरता। होते-होते उसने भी गाने का अभ्यास किया।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

वह प्रतिदिन अपने उद्यान में जाती और गाने का अभ्यास करती। जिस समय रात्रि की नीरवता में सोहनी की लय गूंजती तो सुनने वाले ज्ञान-शून्य हो जाते।

3

राजकवि अनंगशेखर युवक था। उसकी कविता प्रभावशाली और जोरदार होती थी। जिस समय वह दरबार में अपनी कविता गायन के साथ पढ़कर सुनाता तो सुनने वालों पर मादकता की लहर दौड़ जाती, शून्यता का राज्य हर ओर होता। राजकुमारी माया को कविता से प्रेम था। सम्भवतः वह भी अनंगशेखर की कविता सुनने के लिए विशेषतः दरबार में आ जाती थी।

राजकुमारी की उपस्थिति में अनंगशेखर की जुबान लड़खड़ा जाती। वह ज्ञान-शून्य-सा खोया-खोया हो जाता, किन्तु इसके साथ ही उसकी भावनाएं जागृत हो जातीं। वह झूम-झूमकर उपमा और उदाहरणों को सम्मुख रखता। सुनने वाले अनुरक्त हो जाते। राजकुमारी के हृदय में भी प्रेम की नदी तरंगें लेने लगतीं। उसको अनंगशेखर से कुछ प्रेम अनुभव होता, किन्तु तुरन्त ही उसकी आंखें खुल जातीं और युवक संन्यासी का चित्र उसके सामने फिरने लगता। ऐसे मौके पर उसकी आंखों से आंसू छलकने लगते। अनंगशेखर आंसू-भरे नेत्रों पर दृष्टि डालता तो स्वयं भी आंसुओं के प्रवाह में बहने लगता। उस समय वह शस्त्र डाल देता और अपनी जुबान से आप ही कहता—"मैं अपनी पराजय मान चुका।"

कवि अपनी धुन में मस्त था। चहुंओर प्रसन्नता और आनन्द दृष्टिगोचर होता था। वह अपने विचारों में इतना मग्न था जैसे प्रकृति के आंचल में रंगरेलियां मना रहा हो।

सहसा वह चौंक पड़ा। उसने आंखें फाड़-फाड़कर अपने चहुंओर दृष्टि डाली और फिर एक उसांस ली। सामने एक कागज पड़ा था। उस पर कुछ पंक्तियां लिखी हुई थीं। रात्रि का अन्धकार फैलता जा रहा था। वह वापस हुआ।

राजमहल समीप था और उससे मिला हुआ उद्यान था। अनंगशेखर बेकाबू हो गया। राजकुमारी की खोज उसको बरबस उद्यान के अन्दर ले गई।

चन्द्रमा की किरणें जलस्रोत की लहरों से अठखेलियां कर रही थीं, प्रत्येक दिशा में जूही और मालती की गन्ध प्रसारित थी, कवि आनन्दप्रद दृश्य को देखने में तल्लीन हो गया। भय और शंका ने उसे आ दबाया। वह आगे कदम न उठा सका। समीप ही एक घना वृक्ष था। उसकी छाया में खड़े होकर वह उद्यान के बाहर

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

का आनन्द प्राप्त करने लगा। इसी बीच में वायु का एक मधुर झोंका आया। उसने अपने शरीर में एक कम्पन अनुभव किया। इसके बाद उद्यान से एक मधुर स्वर गूंजा, कोई गा रहा था। वह अपने-आपे में न था, कुछ खो-सा गया। मालूम नहीं इस स्थिति में वह कितनी देर खड़ा रहा ? जिस समय वह होश में आया, तो देखा कोई पास खड़ा है। वह चौंक उठा, उसके सामने राजकुमारी माया खड़ी थी।

अनंगशेखर का सिर नीचा हो गया। राजकुमारी ने मुस्कराते हुए होंठों से पूछा—"अनंगशेखर, तुम यहां क्यों आये ?"

कवि ने सिर उठाया, फिर कुछ लजाते हुए राजकुमारी की ओर देखा, फिर भी मुख से कुछ न कहा।

राजकुमारी ने फिर पूछा—"तुम यहां क्यों आये ?"

इस बार कवि ने साहस से काम लिया। हाथ में जो पत्र था वह राजकुमारी को दे दिया। राजकुमारी ने कविता पढ़ी। उस कविता को अपने पास रखना चाहा; किन्तु वह छूटकर हाथ से गिर गई। राजकुमारी तीर की भांति वहां से चली गई। अब कवि से सहा न हो सका, वह ज्ञान-शून्य होकर चिल्ला उठा—"माया, माया !"

परन्तु अब माया कहां थी।

4

राजदरबार में एक युवक आया, दरबारी चिल्ला उठे—"अरे, यह तो वही संन्यासी है जो उस दिन राजमहल के सामने गा रहा था।

राजा ने मालूम किया—"यह युवक कौन है ?"

युवक ने उत्तर दिया—"महाशय, मैं कवि हूं।"

राजकुमारी उस युवक को देखकर चौंक उठी।

राजकवि ने भी उस युवक पर दृष्टि डाली, मुख फक हो गया। पास ही एक व्यक्ति बैठा हुआ था, उसने कहा—"वाह ! यह तो एक भिक्षुक है।"

राजकवि बोल उठा—"नहीं, उसका अपमान न करो, यह कवि है।"

चहुंओर सन्नाटा छा गया। महाराज ने उस युवक से कहा—"कोई अपनी कविता सुनाओ।"

युवक आगे बढ़ा, उसने राजकुमारी को और राजकुमारी ने उसको देखा। स्वाभिमान अनुभव करते हुए उसने कदम आगे बढ़ाये।

राजकवि ने भी यह स्थिति देखी तो उसके मुख पर हवाइयां उड़ने लगीं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

युवक ने अपनी कविता सुनानी आरम्भ की। प्रत्येक चरण पर 'वाह-वाह' की ध्वनियां गूंजने लगीं, किसी ने ऐसी कविता आज तक न सुनी थी।

युवक का मुख स्वाभिमान और प्रसन्नता से दमक उठा। वह मस्त हाथी की भांति झूमता हुआ आया और अपने स्थान पर बैठ गया। उसने एक बार फिर राजकुमारी की ओर देखा और इसके पश्चात् राजकवि की ओर।

महाराज ने राजकवि से कहा—"तुम भी अपनी कविता सुनाओ।"

अनंगशेखर चेतना-शून्य-सा बैठा था। उसके मुख पर निराशा और असफलता की झलक प्रकट हो रही थी।

महाराजा फिर बोले—"अनंगशेखर ! किस चिन्ता में निमग्न हो ? क्या इस युवक-कवि का उत्तर तुमसे नहीं बन पड़ेगा ?"

यह अपमान कवि के लिए असहनीय था ! उसकी आंखें रक्तिम हो गयीं, वह अपने स्थान से उठा और आगे बढ़ा। उस समय उसके कदम डगमगा रहे थे।

आगे पहुंचकर वह रुका, हृदय खोलकर उसने अपनी काव्य-प्रतिभा का प्रदर्शन किया। चहुंओर शून्यता और ज्ञान-शून्यता छा गई, श्रोता मूर्ति-से बनकर रह गये।

राजकवि मौन हो गया। एक बार उसने चहुंओर दृष्टिपात किया। उस समय राजकुमारी का मुख पीला था। उस युवक का घमण्ड टूट चुका था। धीरे-धीरे सब दरबारी नींद से चौंके, चहुंओर से 'धन्य है, धन्य है' की ध्वनि गूंजी। महाराज ने राजसिंहासन से उठकर कवि को अपने हृदय से लगा लिया। कवि की अन्तिम विजय थी।

महाराज ने निवेदन किया—"अनंग ! मांगों क्या मांगते हो ? जो मांगोंगे दूंगा।"

राजकवि कुछ देर तक सोचता रहा। इसके बाद उसने कहा—"महाराज मुझे और कुछ नहीं चाहिए ! मैं केवल राजकुमारी का इच्छुक हूं।"

यह सुनते ही राजकुमारी को गश आ गया। कवि ने फिर कहा—"महाराज, आपके कथन अनुसार राजकुमारी मेरी हो चुकी, अब जो चाहूं कर सकता हूं।" यह कहकर उसने युवक-कवि को अपने समीप बुलाया और कहा—

"मेरे जीवन का मुख्य उद्देश्य यह था कि राजकुमारी का प्रेम प्राप्त करूं। तुम नहीं जानते कि राजकुमारी की प्रसन्नता और सुख के लिए मैं अपने प्राण तक न्यौछावर करने को तैयार हूं। हां, युवक ! तुम इनमें से किसी बात से परिचित नहीं हो; किन्तु थोड़ी देर के पश्चात तुमको ज्ञात हो जायेगा कि मैं ठीक कहता था या

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

नहीं।"

कवि की जुबान रुक गई, उसका स्वर भारी हो गया, सिलसिला जारी रखते हुए उसने कहा—"क्या तुम जानते हो कि मैंने क्या देखा ? नहीं और इसका न जानना ही तुम्हारे लिए अच्छा है। सोचता था, जीवन सुख से व्यतीत होगा, परन्तु यह आशा भ्रमित सिद्ध हुई। जिससे मुझे प्रेम है वह अपना हृदय किसी और को भेंट कर चुकी है। जानते हो अब राजकुमारी को मैं पाकर भी प्रसन्न न हो सकूंगा; क्योंकि राजकुमारी प्रसन्न न हो सकेगी। आओ, युवक आगे आओ ! तुम्हें मुझसे घृणा हो तो, बेशक हुआ करे, आओ आज मैं अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति तुम्हें सौंपता हूं।"

राजकवि मौन हो गया। किन्तु उसका मौन क्षणिक था। सहसा उसने महाराज से कहा—"महाराज, एक विनती है और वह यह कि मेरे स्थान पर इस युवक को राजकवि बनाया जाए।"

राजकवि के कदम लड़खड़ाने लगे। देखते-देखते वह पृथ्वी पर आ रहा। अन्तिम बार पथराई हुई दृष्टि से उसने राजकुमारी की ओर देखा, यह दृष्टि अर्थमयी थी। वह राजकुमारी से कह रहा था—"मेरी प्रसन्नता यही है कि तुम प्रसन्न रहो। विदा।"

इसके पश्चात् कवि ने अपनी आंख बन्द कर लीं और ऐसी बन्द कि फिर न खुलीं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

यह स्वतन्त्रता

पाठक चक्रवर्ती अपने मुहल्ले के लड़कों का नेता था। सब उसकी आज्ञा मानते थे। यदि कोई उसके विरुद्ध जाता तो उस पर आफत आ जाती, सब मुहल्ले के लड़के उसको मारते थे। आखिरकार बेचारे को विवश होकर पाठक से क्षमा मांगनी पड़ती। एक बार पाठक ने एक नया खेल सोचा। नदी के किनारे एक लड़की का बड़ा लट्ठा पड़ा था, जिसकी नौका बनाई जाने वाली थी। पाठक ने कहा—"हम सब मिलकर उस लट्ठे को लुढ़काएं, लट्ठे का स्वामी हम पर क्रुद्ध होगा और हम सब उसकी मजाक उड़ाकर खूब हंसेंगे।" सब लड़कों ने उसका अनुमोदन किया।

जब खेल आरम्भ होने वाला था तो पाठक का छोटा भाई मक्खन बिना किसी से एक भी शब्द कहे उस लट्ठे पर बैठ गया। लड़के रुके और एक क्षण तक मौन रहे। फिर एक लड़के ने उसको धक्का दिया, परन्तु वह न उठा। यह देखकर पाठक को क्रोध आया। उसने कहा—"मक्खन, यदि तू न उठेगा तो इसका बुरा परिणाम होगा।" किन्तु मक्खन यह सुनकर और आराम से बैठ गया। अब यदि पाठक कुछ हल्का पड़ता, तो उसकी बात जाती रहती। बस, उसने आज्ञा दी कि लट्ठा लुढ़का दिया जाये।

लड़के की आज्ञा पाते ही एक-दो-तीन कहकर लट्ठे की ओर दौड़े और सबने जोर लगाकर लट्ठे को धकेल दिया। लट्ठे को फिसलता और मक्खन को गिरता देखकर लड़के बहुत प्रसन्न हुए किन्तु पाठक कुछ भयभीत हुआ। क्योंकि वह जानता था कि इसका परिणाम क्या होगा।

मक्खन पृथ्वी पर से उठा और पाठक को लातें और घूंसे मारकर घर की ओर रोता हुआ चल दिया।

पाठक को लड़कों के सामने इस अपमान से बहुत खेद हुआ। वह नदी किनारे मुंह-हाथ धोकर बैठ गया और घास तोड़-तोड़कर चबाने लगा। इतने में एक नौका वहां पर आई जिसमें एक अधेड़ आयु वाला व्यक्ति बैठा था। उस व्यक्ति ने पाठक के समीप आकर मालूम किया—"पाठक चक्रवर्ती कहां रहता है ?"

पाठक ने उपेक्षा भाव से बिना किसी ओर संकेत किए हुए कहा—"वहां," और फिर घास चबाने लगा।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

उस व्यक्ति ने पूछा—"कहां ?"

पाठक ने अपने पांव फैलाते हुए उपेक्षा से उत्तर दिया—"मुझे नहीं मालूम।"

इतने में उसके घर का नौकर आया और उसने उससे कहा—"पाठक तुम्हारी मां तुम्हें बुला रही है।"

पाठक ने जाने से इन्कार किया, किन्तु नौकर चूंकि मालकिन की ओर से आया था, इस वजह से वह उसको जबर्दस्ती मारता हुआ ले गया ?

पाठक जब घर आया तो उसकी मां ने क्रोध में आकर पूछा—"तूने मक्खन को फिर मारा ?"

पाठक ने उत्तर दिया—"नहीं तो, तुमसे किसने कहा ?"

मां ने कहा—"झूठ मत बोल, तूने मारा है।"

पाठक ने फिर उत्तर दिया—"नहीं यह बिल्कुल असत्य है, तुम मक्खन से पूछो।"

मक्खन चूंकि कह चुका था कि मुझे मारा है इसलिए उसने अपने शब्द कायम रखे और दोबारा फिर कहा—'हां-हां तुमने मारा है।"

यह सुनकर पाठक को क्रोध आया और मक्खन के समीप आकर उसे मारना आरम्भ कर दिया। उसकी मां ने उसे तुरन्त बचाया और पाठक को मारने लगी। उसने अपनी मां को धक्का दे दिया। धक्के से फिसलते हुए उसकी मां ने कहा—"अच्छा, तू अपनी मां को भी मारना चाहता है।"

ठीक उसी समय वह अधेड़ आयु का व्यक्ति घर में आया और कहने लगा—"क्या किस्सा है ?"

पाठक की मां ने पीछे हटकर आने वाले को देखा और तुरन्त ही उसका क्रोध आश्चर्य में परिवर्तित हो गया। क्योंकि उसने अपने भाई को पहचाना और कहा—"क्यों दादा, तुम यहां ? कैसे आये ?" फिर उसने नीचे को झुकते हुए उसके चरण छुए।

उसके भाई विशम्भर उसके विवाह के पश्चात् बम्बई चला गया था, वह व्यापार करता था। अब कलकत्ता अपनी बहन से मिलने आया था, क्योंकि बहन के पति की मृत्यु हो गई थी।

कुछ दिन तो बड़ी प्रसन्नता के साथ बीते। एक दिन विशम्भर ने दोनों लड़कों की पढ़ाई के विषय में पूछा।

उसकी बहन ने कहा—"पाठक हमेशा दुःख देता रहता है और बहुत चंचल है, किन्तु मक्खन पढ़ने का बहुत इच्छुक है।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

यह सुनकर उसने कहा—"मै। पाठक को बम्बई ले जाकर पढ़ाऊंगा।"

पाठक भी चलने के लिए सहमत हो गया। मां के लिए यह बहुत हर्ष की बात थी, क्योंकि वह सर्वदा डरा करती थी कि कहीं किसी दिन पाठक मक्खन को नदी में न डुबो दे या उसे जान से न मार डाले।

पाठक प्रतिदिन मामा से पूछता था कि तुम किस दिन चलोगे। आखिर को चलने का दिन आ गया। उस रात पाठक से सोया भी न गया, सारा दिन जाने की खुशी में इधर-उधर फिरता रहा। उसने अपनी मछली पकड़ने की हत्थी, पत्थर के छोटे-छोटे टुकड़े और बड़ी पतंग भी मक्खन को दे दी, क्योंकि उसे जाते समय मक्खन से सहानुभूति-सी हो गई थी।

2

बम्बई पहुंचकर पाठक अपनी मामी से पहली बार मिला। वह उसके आने से कुछ प्रसन्न न हुई; क्योंकि उसके तीन बच्चे ही काफी थे एक और चंचल लड़के का आ जाना उसके लिए आपत्ति थी।

ऐसे लड़के के लिए उसका अपना घर ही स्वर्ग होता है, उसके लिए एक नये घर में नये लोगों के साथ रहना बहुत कठिन हो गया।

पाठक को यहां पर सांस लेना कठिन हो गया। वह रात को प्रतिदिन अपने नगर के स्वप्न देखा करता और वहां जाने की इच्छा करता रहता। उसको वह स्थान याद आता जहां वह पतंग उड़ाता था और जहां वह जब कभी चाहता जाकर स्नान करता था। मां का ध्यान उसे दिन-रात विकल करता रहता। उसकी सारी शक्ति समाप्त हो गई....अब स्कूल में उससे अधिक कमजोर कोई विद्यार्थी न था। जब कभी उसका अध्यापक उससे कोई प्रश्न करता, तो वह मौन खड़ा हो जाता और चुपचाप अध्यापक की मार सहन करता। जब दूसरे लड़के खेलते तो वह अलग खड़ा होकर घरों की छतों को देखा करता।

एक दिन उसने बहुत साहस करके अपने मामा से मालूम किया—"मामाजी, मैं कब तक घर जाऊंगा ?"

मामा ने उत्तर दिया—"ठहरो, जब तक कि छुट्टियां न हो जाएं।"

किन्तु छुट्टियों में अभी बहुत दिन शेष थे, इसलिए उसको काफी प्रतीक्षा करनी पड़ी। इस बीच में एक दिन उसने अपनी किताब खो दी। अब उसको अपना पाठ याद करना बहुत कठिन हो गया। प्रतिदिन उसका अध्यापक उसे बड़ी निर्दयता के

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

साथ मारता था। उसकी दशा इतनी खराब हो गई कि उसके मामा के बेटे उसे अपना कहते हुए शर्माते थे। पाठक मामी के पास गया और कहने लगा—"मैं स्कूल न जाऊंगा, मेरी पुस्तक खो गई है।"

मामी ने क्रोध से अपने होंठों को चबाते हुए कहा—"दुष्ट ! मैं तुझको कहां से महीने में पांच बार पुस्तक खरीद कर दूं ?"

इस समय पाठक के सिर में दर्द उठा, वह सोचता था कि मलेरियां हो जाएगा; किन्तु सबसे बड़ा सोच-विचार यह था कि बीमार होने के पश्चात् वह घर वालों के लिए एक आपत्ति बन जायेगा।

दूसरे दिन प्रातः पाठक कहीं भी दिखाई न दिया। उसको चारों तरफ खोजा गया किन्तु वह न मिला। वर्षा बहुत अधिक हो रही थी और वे व्यक्ति जो उसे खोजने गये, बिल्कुल भीग गये। आखिकार विशम्भर ने पुलिस को सूचना दे दी।

3

मध्याह्न पुलिस का सिपाही विशम्भर के द्वार पर आया। वर्षा अब भी हो रही थी और सड़कों पर पानी खड़ा था। दो सिपाही पाठक को हाथों पर उठाए हुए लाए और विशम्भर के सामने रख दिया। पाठक के सिर से पांव तक कीचड़ लगी हुई और उसकी आंखें ज्वर से लाल थीं। विशम्भर उसको घर के अन्दर ले गया, जब उसकी पत्नी ने पाठक को देखा तो कहा—"यह तुम क्या आपत्ति ले आये हो, अच्छा होता जो तुम इसको घर भिजवा देते।"

पाठक ने यह शब्द सुने और सिसकियां लेकर कहने लगा—"मैं घर जा तो रहा था परन्तु वे दोनों मुझे जबर्दस्ती ले आए।"

ज्वर बहुत तीव्र हो गया था। सारी रात वह अचेत पड़ा रहा, विशम्भर एक डॉक्टर को लाया। पाठक ने आंखें खोलीं और छत की ओर देखते हुए कहा—"छुट्टियां आ गई हैं क्या ?"

विशम्भर ने उसके आंसू पोंछे और उसका हाथ अपने हाथ में लेकर उसके सिरहाने बैठ गया। पाठक ने फिर बड़बड़ाना शुरू किया—"मां, मां मुझे इस प्रकार न मारो, मैं सच-सच बताता हूं।"

दूसरे दिन पाठक को कुछ चेत हुआ। उसने कमरे के चहुंओर देखा और एक ठण्डी सांस लेते हुए अपना सिर तकिए पर डाल दिया।

विशम्भर समझ गया और अपना मुख उसके समीप लाते हुए कहने

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

लगा—"पाठक, मैंने तुम्हारी मां को बुलाया है।"

पाठक फिर उसी प्रकार चिल्लाने लगा। कुछ घंटों के पश्चात् उसकी मां रोती हुई कमरे में आई। विशम्भर ने उसको मौन रहने के लिए कहा, किन्तु वह न मानी और अपने-आपको पाठक की चारपाई पर डाल दिया और चिल्लाते हुए कहने लगी—"पाठक, मेरे प्यारे बेटे पाठक !"

पाठक की सांस कुछ समय के लिए रुकी, उसकी नाड़ी हल्की पड़ी और उसने एक सिसकी ली।

उसकी मां फिर चिल्लाई—"पाठक, मेरे आंख के तारे, मेरे हृदय की कोयल !"

पाठक ने बहुत धीरे से अपना सिर दूसरी ओर किया और बिना किसी ओर देखते हुए कहा—"मां ! क्या छुट्टियां आ गई हैं ?"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

विद्रोही

1

लोग कहते हैं अंग्रेजी पढ़ना और भाड़ झोंकना बराबर है। अंग्रेजी पढ़ने वालों की मिट्टी खराब है। अच्छे-अच्छे एम०ए० और बी०ए० मारे-मारे फिरते हैं, कोई उन्हें पूछता तक नहीं। मैं इन बातों के विरुद्ध हूं। अंग्रेजी पढ़-लिखकर मैं डाक्टर बना हूं। अंग्रेजी शिक्षा के विरोधी तनिक आंख खोलकर मेरी दशा देखें।

सोमवार का दिन था। सवा नौ बजे मेरे मित्र बाबू सन्तोषकुमार बी०एस-सी० एक नवयुवक रोगी को साथ लिये मेरे दवाखाने में आये। उस रोगी की आयु अठारह-उन्नीस से अधिक न थी। गेहुंआ रंग, बड़ी-बड़ी आंखें, गठीला शरीर, कपड़े स्वदेशी, किन्तु मैले थे। सिर के बाल लम्बे और रूखे। उस युवक को देखकर मुझे बहुत प्रसन्नता हुई।

सन्तोषकुमार ने युवक का परिचय कराते हुए कहा—"आप जिला नदिया के निवासी हैं, नाम ललित कृष्ण बोस है, किन्तु ललित के नाम से प्रसिद्ध हैं। एम०ए० में पढ़ते थे; परन्तु किसी कारणवश कालेज छोड़ दिया।"

मैंने मुसकराते हुए पूछा—"आजकल आप क्या करते हैं ?"

सन्तोषकुमार ने उत्तर दिया—"दो महीने पहले यह किरण प्रेस में प्रूफरीडर के काम पर थे परन्तु इस काम में जी न लगने के कारण नौकरी छोड़ दी। परसों से ज्वर से पीड़ित हैं, कोई अच्छी औषधि दीजिए।"

आज से पहले भी मैंने इस युवक को कहीं देखा है, परन्तु कहां देखा है और कब ? यह स्मरण नहीं। रोग की छान-बीन के पश्चात् मैंने ललित से कहा—"मालूम होता है, आप आवश्यकता से अधिक परिश्रम करते हैं, खैर, कोई बात नहीं दो दिन में आराम हो जायेगा।"

ललित बहुत मधुर-भाषी था। मैं उसकी बातों पर लट्टू हो गया। मैंने कहा—"हर तीन घण्टे के अन्तर से दवा पीजियेगा। दूध और साबूदाने के सिवाये कोई और चीज खाने की आवश्यकता नहीं। कल फिर आने का कष्ट कीजियेगा।"

ललित हंसने लगा। जाते समय मैंने उससे कल अवश्य आने के लिए कहा, परन्तु ललित ने शाम ही को आने का वचन दिया।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

बुढ़िया की आंखों में आंसू झलकने लगे। उसने कहा, "बेटा ! अपना भाग्य ही खोटा है, कल सत्तू खाने के लिए छः पैसे मिल गये थे आज उसका भी सहारा दिखाई नहीं देता। आज भूखे पेट ही रहना होगा। हाय ! यह हमारे पाप का फल है।"

बुढ़िया ने एक ठंडी उसांस ली और अपने फटे मैले आंचल से अपनी और बच्चे की आंखें पोंछीं। बच्चा फिर उसी विनती से कहने लगा--"बाबा, भूखे की सुध लेना, परमेश्वर तुम्हारा भला करेगा।' परन्तु नक्कारखाने में तूती की आवाज कौन सुनता ? इतना अधिक जन-समूह था; किन्तु इस विनती पर कोई दान देकर सुनने वाला था।

ललित उस समय बुढ़िया की ओर देख रहा था! उसकी दुखित दशा देखकर उसका हृदय विकल हो गया। उसने अपनी जेब टटोली, उसमें फूटी कौड़ी भी नहीं थी, बहुत व्याकुल हुआ। उसने अपनी दूसरी जेब में हाथ डाला, कुछ आवश्यक कागजों के बीच में एक अठन्नी निकल आई। ललित की निराशा प्रसन्नता में परिवर्तित हो गई, मुखड़ा खिल गया। वह अठन्नी उसने बुढ़िया के हाथ पर रख दी।

जिस प्रकार दस-पांच रुपये लगाने वाले को लाटरी में दस-बीस हजार रुपये मिल जाने पर पसन्नता होती है, जिस प्रकार एक युवती नये आभूषण पहनकर प्रसन्न होती है, जिस प्रकार एक सूखे हुए खेत में वर्षा हो जाने से किसान हर्ष से फूला नहीं समाता, जिस प्रकार कोई नया कवि अपनी कविता को किसी पत्रिका में छपा हुआ देखकर प्रसन्न होता है। उससे कहीं अधिक उस गरीब बुढ़िया को अठन्नी पाकर प्रसन्नता हुई। प्रसन्नता के मारे उसकी आंखों में आंसू भर आए, वह निर्निमेष ललित की ओर देखने लगी। उसका मग्न हृदय ललित को सहस्र आशीष दे रहा था।

यह दशा देखकर मुझे बहुत आश्चर्य हुआ। मैंने अनेकों बार उस बुढ़िया को देखा था, उससे मुझे सहानुभूति भी थी किन्तु कभी यह साहस न हुआ कि उसकी सहायता करूं। कभी हृदय में आता कि उसको कुछ देना चाहिए, कभी यह कहता कि इसमें क्या रखा है, संसार में लाखों गरीब हैं किस-किसकी सहायता करूंगा ? ललित, जिसे कभी-कभी भूखे तक रहना पड़ता, जिसको मैंने कभी एक पैसे का पान तक चबाते न देखा था और जो मेरी दृष्टि में बहुत कंजूस था, उसका यह दान देखकर मेरे आश्चर्य की सीमा न रही।

स्वप्न में उस दिन मुझे ललित की बहुत-सी विशेषताएं दिखाई दीं। मालूम नहीं वे सत्य थीं या असत्य, किन्तु ज्योतिषी के हिसाब से उनको सत्य ही समझना चाहिए। इसका कारण यह है कि रात मुझे ढाई बजे नींद आई और वह स्वप्न मैंने रात के अंतिम पहर में देखा था।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

ललित प्रतिदिन सुबह-शाम मेरे यहां आने लगा। मैं उसके व्यवहार से बहुत प्रसन्न था। ललित ने कहा—"मैं इसको बंगला सिखाऊंगा बंगला बड़ी मधुर भाषा है।" मैं स्वयं भी यही चाहता था। उमाशंकर ने बंगला पढ़ना शुरू कर दिया, ललित आज से उमाशंकर का अध्यापक हो गया।

2

कलकत्ता जैसे बड़े नगर में यों तो प्रत्येक त्यौहार पर बड़ी रौनक होती है किन्तु दुर्गा-पूजा के अवसर पर असाधारण धूमधाम और चहल-पहल दिखाई देती है। दशहरा के दिन प्रायः सारे रास्तों पर जन-समूह होता है। बड़े-बूढ़ों में भी उस दिन एक विशेष हर्ष की भावना होती है, लड़कों और युवकों की तो चर्चा ही व्यर्थ है। प्रत्येक व्यक्ति अपनी धुन में मस्त दिखाई देता है। जिस समय दुर्गा की सवारी सामने से आती है तो 'काली माई की जय' के उच्च जय-घोष से आकाश गूंज उठता है, हृदय में एक अनुपम आवेश उत्पन्न होता है।

उस दिन दुर्गा पूजा थी। हम सब व्यक्ति भी शोभा देखने गये थे, ललित साथ था। पहले की अपेक्षा ललित में आज अधिक प्रदर्शन था। प्रत्येक स्थान पर वह देवी की मूर्ति को नमन करता, कभी उसके नेत्र लाल हो जाते और कभी उनमें आंसू उमड़ आते। मैंने देखा, कभी वह हर्षातिरेक से नाचने-कूदने लगता और कभी सर्वथा मौन हक्का-बक्का होकर इधर-उधर देखता। मैंने बहुत प्रयत्न किया; परन्तु उनकी इन चेष्टाओं को न समझ सका। उससे मालूम करने का साहस न हुआ।

हमारे पीछे एक गरीब बुढ़िया एक आठ-नौ साल के बच्चे को साथ लिये खम्भे की आड़ में खड़ी थी। सम्भवतः अथाह जन-समूह के कारण उसको किसी ओर जाने का साहस न होता था। वह भिखारिन थी। गरीबी के कारण पेट पीठ से लग गया था। उसने अपना दाहिना हाथ भीख के लिए पसार रखा था। बच्चा अनुनय-विनय करते हुए कह रहा था—"बाबा, भूखे की सुध लेना, परमेश्वर तुम्हारा भला करेगा।" किन्तु संसार में गरीबों की कौन सुनता है ? गरीब बुढ़िया की ओर किसी ने आंख उठाकर भी न देखा, प्रत्येक मनुष्य अपनी प्रसन्नता में प्रसन्न था। बच्चे ने बुढ़िया से कहा—"घंटों बीत गए परन्तु अब तक दो पैसे मिले हैं, सोचता था आज दुर्गा-पूजा है कुछ अधिक ही मिल जायेगा; किन्तु खेद है कि चिल्लाते-चिल्लाते गला बैठ गया; कोई सुनता ही नहीं। जी में आता है यहीं प्राण त्याग दूं।" यह कहकर बच्चा रोने लगा।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

बुढ़िया की आंखों में आंसू झलकने लगे। उसने कहा, "बेटा ! अपना भाग्य ही खोटा है, कल सत्तू खाने के लिए छः पैसे मिल गये थे आज उसका भी सहारा दिखाई नहीं देता। आज भूखे पेट ही रहना होगा। हाय ! यह हमारे पाप का फल है।"

बुढ़िया ने एक ठंडी उसांस ली और अपने फटे मैले आंचल से अपनी और बच्चे की आंखें पोंछीं। बच्चा फिर उसी विनती से कहने लगा--"बाबा, भूखे की सुध लेना, परमेश्वर तुम्हारा भला करेगा।' परन्तु नक्कारखाने में तूती की आवाज कौन सुनता ? इतना अधिक जन-समूह था; किन्तु इस विनती पर कोई दान देकर सुनने वाला था।

ललित उस समय बुढ़िया की ओर देख रहा था। उसकी दुखित दशा देखकर उसका हृदय विकल हो गया। उसने अपनी जेब टटोली, उसमें फूटी कौड़ी भी नहीं थी, बहुत व्याकुल हुआ। उसने अपनी दूसरी जेब में हाथ डाला, कुछ आवश्यक कागजों के बीच में एक अठन्नी निकल आई। ललित की निराशा प्रसन्नता में परिवर्तित हो गई, मुखड़ा खिल गया। वह अठन्नी उसने बुढ़िया के हाथ पर रख दी।

जिस प्रकार दस-पांच रुपये लगाने वाले को लाटरी में दस-बीस हजार रुपये मिल जाने पर पसन्नता होती है; जिस प्रकार एक युवती नये आभूषण पहनकर प्रसन्न होती है, जिस प्रकार एक सूखे हुए खेत में वर्षा हो जाने से किसान हर्ष से फूला नहीं समाता, जिस प्रकार कोई नया कवि अपनी कविता को किसी पत्रिका में छपा हुआ देखकर प्रसन्न होता है। उससे कहीं अधिक उस गरीब बुढ़िया को अठन्नी पाकर प्रसन्नता हुई। प्रसन्नता के मारे उसकी आंखों में आंसू भर आए, वह निर्निमेष ललित की ओर देखने लगी। उसका मग्न हृदय ललित को सहस्र आशीष दे रहा था।

यह दशा देखकर मुझे बहुत आश्चर्य हुआ। मैंने अनेकों बार उस बुढ़िया को देखा था, उससे मुझे सहानुभूति भी थी किन्तु कभी यह साहस न हुआ कि उसकी सहायता करूं। कभी हृदय में आता कि उसको कुछ देना चाहिए, कभी यह कहता कि इसमें क्या रखा है, संसार में लाखों गरीब हैं किस-किसकी सहायता करूंगा ? ललित, जिसे कभी-कभी भूखे तक रहना पड़ता, जिसको मैंने कभी एक पैसे का पान तक चबाते न देखा था और जो मेरी दृष्टि में बहुत कंजूस था, उसका यह दान देखकर मेरे आश्चर्य की सीमा न रही।

स्वप्न में उस दिन मुझे ललित की बहुत-सी विशेषताएं दिखाई दीं। मालूम नहीं वे सत्य थीं या असत्य, किन्तु ज्योतिषी के हिसाब से उनको सत्य ही समझना चाहिए। इसका कारण यह है कि रात मुझे ढाई बजे नींद आई और वह स्वप्न मैंने रात के अंतिम पहर में देखा था।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

3

ललित के सहयोग से उमाशंकर में आश्चर्यजनक परिवर्तन हो गये। कहां तो वह बिना मोटर के घर से बाहर न निकलता था पर अब यह दशा थी कि ललित के साथ वायु-सेवन के लिए प्रतिदिन कोसों पैदल निकल जाता, सिनेमा देखने का चस्का जाता रहा, व्यक्तिगत विलास सामग्री और प्रदर्शन के व्यसन को भी तिलांजलि दे दी। अंग्रेजी शिक्षा से अब उसे घृणा हो गई। रविवार के दिन मेरे यहां कुछ मित्रों की गार्डन-पार्टी थी, खूब आनन्द रहा। मैं अपने मित्रों के सत्कार में लगा हुआ था। उधर उपेन्द्र कुमार, गोपाल, उमाशंकर और ललित में चुपके-चुपके बातें हो रही थीं। ये लोग क्या बातें कर रहे थे यह बताना कठिन है, क्योंकि प्रथम तो पार्टी के झंझटों में उलझा हुआ था, उनकी ओर अधिक ध्यान न था, दूसरे वे मेरे से दूर थे और धीरे-धीरे बातें कर रहे थे, बीच-बीच में जब ये लोग खिल-खिलाकर हंस पड़ते तो मुझे भी हंसी आ जाती।

गोपाल बाबू को मैं काफी समय से जानता हूं, रिश्ते में यह सन्तोषकुमार के बहनोई होते हैं। प्रथम श्रेणी के शौकीन प्रेमी स्वभाव के हैं। आज देखा तो कलाई रिस्टवाच से खाली थी, रेशम की कमीज में से सोने के बटन गायब थे, होंठों की लाली गायब, बाल भी फैशन के न थे। मैंने सन्तोषकुमार से धीरे से कहा—"आज तो भाई साहब का कुछ और ही रंग है वह पहले-से चटक-मटक दिखाई नहीं देते, क्या बात है ? कुछ समझ में नहीं आता।"

सन्तोषकुमार ने मुसकराते हुए उत्तर दिया—"आजकल इन पर स्वदेशी भूत सवार है। कई महीने से यह इसी रंग में रंगे हुए हैं, क्या आपने आज ही इन्हें इस वेश में देखा है ?"

मैंने उत्तर दिया—"हां ! और इसीलिए मुझे आश्चर्य भी हुआ।"

सन्तोषकुमार ने किस सीमा तक उपेक्षा-भाव से कहा—"हमें क्या मतलब ? जो जिसके जी में आए करे, बार-बार समझाने पर भी यदि कोई न सुने तो क्या किया जाए। अधिक कहने-सुनने से अपनी प्रतिष्ठा पर आंच आती है। जैसी करनी वैसी भरनी प्रसिद्ध है। जब बन्दी-गृह में चक्की पीसनी पड़ेगी तो आटे-दाल का भाव मालूम हो जायेगा।"

मैंने कहा—"सन्तोषकुमार तुम बिल्कुल सत्य कहते हो, जमाने की हवा कुछ बदली हुई दिखाई देती है। ललित को भी कुछ स्वदेश की सनक है। यद्यपि मैं स्वदेशी का विरोधी हूं और देश-भक्त मुझे एक आंख नहीं भाते तब भी मैं ललित की

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

स्पष्टवादिता और सात्विकता पर मुग्ध हूं। उसकी रुचि मुझे बहुत भाती है।"

सन्तोष कहने लगा—"किन्तु आपकी भांति उसकी धाक नहीं बंध सकती। आप जब पाश्चात्य वस्त्र पहनकर बाहर निकलते होंगे तो अशिक्षित मनुष्य भय से कांप उठते होंगे और अशिक्षित व्यक्ति आपसे नमस्कार करके आकाश पर पहुंच जाते होंगे।"

मुझे हंसी आ गई, सन्तोषकुमार भी हंसने लगा।

उस दिन रात को मैं अचेत सोया हुआ स्वप्न देख रहा था कि किसी ने मुझे झंझोड़ा, मैं चौंक गया। आंखें खोलकर देखता हूं तो मेरा नौकर रामलाल हाथ में लालटेन लिये खड़ा है।

मुख पर हवाइयां उड़ रही हैं, शरीर थर-थर कांप रहा है। मैंने घबराकर मालूम किया—"क्यों रामलाल क्या बात है, तुम कांप क्यों रहे हो ?"

रामलाल नें उत्तर दिया—"बाबू, पुलिस ने सारा मकान घेर रखा है, कोई बात समझ में नहीं आती। मैं कोई चोर या बदमाश न था, पुलिस का नाम सुनकर घबरा गया। दो-एक बेईमानियां जो छिपकर की थीं वे आंखों के सामने फिरने लगीं। पूर्ण विश्वास हो गया कि पुलिस मुणे गिरफ्तार करने आई है।"

पुलिस की हलचल सुनकर मेरी चेतना जाती रही। साहस करके नीचे आया। रामलाल बोला—"आज्ञा हो तो दो-चार हाथ दिखाकर पुलिस वालों को पृथ्वी पर लिटा दूं ?"

मैंने कहा—"सावधान ! भूलकर भी ऐसा न करना, पुलिस से बिगाड़ करना अच्छा नहीं होता।"

द्वार खोल दिया। दो-तीन सार्जेण्टों के साथ एक श्वेत वस्त्रधारी बंगाली और आठ-दस सिपाही कमरे के अन्दर घुस आये।

बंगाली बाबू ने जेब से एक बादामी कागज निकालकर मुझे दिखाते हुए कहा—"यह गिरफ्तारी-वारंट है, आपके यहां विद्रोहियों की गुप्त-मंत्रणा का स्थान है। विद्रोही तुरन्त गिरफ्तार किया जाएगा।"

मुझ पर बिजली-सी टूट पड़ी। मैं समझा सम्भवतः मैं ही विद्रोही हूं और मेरी गिरफ्तारी का यह वारंट है, मुझको पुलिस गिरफ्तार करने आई है। आह ! अब कुशल नहीं, यदि फांसी से बच रहा तो काला पानी अवश्य भेजा जाऊंगा।"

मैंने कंपकपाते हुए कहा—"विद्रोही और वह भी मेरे मकान में ? आप क्या कह रहे हैं। मैं सरकार का शुभाकांक्षी हूं। इसी वर्ष मुझे राय साहब की उपाधि मिली है आपको भ्रम हुआ है।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

एक सार्जेंट ने त्यौरी बदलकर कहा—"अम काला आडमी नहीं है, गोरा आडमी कभी झूठ नहीं बोल सकटा।'

बंगाली बाबू ने तनिक रुष्टता की मुद्रा में कहा—"पुलिस को भ्रम नहीं हो सकता, भ्रम प्रायः डाक्टरों को हुआ करता है।"

मैंने पूछा—"विद्रोही का नाम क्या है ?"

कहा—"शरद् कुमार।"

"बंगाली है ?"

"हां।"

"कहां का रहने वाला है ?"

"श्री रामपुर का।"

मेरे सिर से जैसे विपत्ति-सी टल गई। नाम सुनते ही होंठों पर हंसी खेलने लगी। मैंने कहा—"महाशय, इस नाम का कोई व्यक्ति मेरे घर में नहीं है।"

"कोई और बंगाली आपके मकान में है ?"

"हां, सीधा-साधा नवयवुक है जो उमाशंकर को बंगला भाषा पढ़ाता है।"

उस श्वेत वस्त्रधारी बंगाली ने कहा—"हां, उसकी ही खोज है। उसका असली नाम शरद् कुमार है। पुलिस महीनों से उसके पीछे परेशान है, हाथ ही न आता था।"

मैंने आश्चर्य से कहा—"वह तो जिला नदिया का रहने वाला है और आप कहते हैं कि अपराधी श्री रामपुर का निवासी है।"

"सब उसकी चालें हैं, वह श्री रामपुर का निवासी है। उसके पिता का नाम हृदयनाथ है जो एक प्रसिद्ध जमींदार हैं।'

मैंने फिर पूछा—"उस पर क्या अपराध है ?"

इंस्पेक्टर ने उत्तर दिया—"विद्रोह, एक गुप्त संस्था से उसका संबन्ध है। बम बनाना, चोरी, डकैती, कत्ल, लूटमार यह उनकी देश-सेवा हैं।"

यह सुनकर मुझे हंसी आ गई। मैंने कहा—"आप महानुभाव एक सत्रह-अठारह वर्ष के बंगाली युवक को विद्रोही बना रहे हैं, यह भला कोई मानने की बात है। एक साधारण युवक की गिरफ्तारी के लिए इतने व्यक्ति !"

चार सिपाही, दरवाजे पर खड़े किए गये, घर की तलाशी शुरू हुई। दालान, कोठरी, बैठक, रसोईघर, यहां तक कि दिशा-मैदान तक के स्थान को ढूंढ़ डाला किन्तु ललित का कहीं पता न था। अलबत्ता उसके कमरे में एक कागज का टुकड़ा मिला; पढ़कर सब आश्चर्य से एक-दूसरे का मुंह ताकने लगे। उसमें लिखा था—

इंस्पेक्टर साहब नमस्ते।

70794

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मैं फिर भाग रहा हूं। आपके पुलिस वाले समझ गये होंगे कि मैं कितना भयानक व्यक्ति हूं, जरा बचते रहियेगा।"

भारत माता का तुच्छ सेवक
शरद्"

बंगाली बाबू ने अपने माथे पर हाथ मारकर कहा—"बना बनाया खेल बिगड़ गया, कमबख्त ने चक्मा दे दिया। महीनों की मेहनत पर पानी फिर गया।"

पुलिस निराश होकर वापस चली गई। हम सब भी उमाशंकर के साथ ललित के लिए आंसू बहाने लगे। ललित से हम सबको बहुत अधिक प्रेम था, उसका यह काम देखकर मुझे आश्चर्य हुआ।

महाशय ! मैं वही डाक्टर हूं, मेरी डाक्टरी बहुत चमक गई है, उमाशंकर मैट्रिक पास कर चुका है, उसकी दश दिन-प्रतिदिन बदलती जा रही है। यह वही उमाशंकर है जो अपने हाथों गिलास में पानी भी नहीं डालता था, आज वही गरीबों की सेवा के लिए हर समय उद्यत रहता है। ललित के पश्चात् स्वयंसेवक का जीता-जागता चित्र मुझे उमाशंकर ही में दिखाई दिया। एक दिन बैठे-बैठे ललित का ध्यान आ गया, आंखें में आंसू भर आये। उसकी स्मृति से पुराना प्रेम ताजा हो गया। इसी बीच उमाशंकर ने कमरे में प्रवेश किया। उसके हाथ में एक अंग्रेजी का अखबार था। मुंह लाल हो रहा था, आंखें डबडबा रही थीं। उसने भर्राई हुई आवाज में कहा—"ललित को आजीवन देश-निकाले का दंड दिया गया है। वह कातिल नहीं था, वह देश का सच्चा सेवक, स्वतंत्रता का पुजारी, सहृदय और सबसे प्रेम का बर्ताव करने वाला मनुष्य था।

"ललित का उद्देश्य कत्ल या लूटमार करना रहा हो या विद्रोह, इसके विषय में मैं कुछ नहीं जानता, मैं उसके स्पष्टवादी स्वभाव और उसकी सादगी का कायल हूं। मुझे उस पर पूर्ण विश्वास था।" उमाशंकर के शब्द सुनकर मेरा हृदय दहल गया। उमाशंकर रोने लगा। मैं भी अधिक न सहन कर सका, मैंने अपने आंसू पोंछे। इसके पश्चात् मैंने कहा—"उमाशंकर ललित को देखने के लिए हृदय विकल है, वह कब तक वापस आयेगा।"

उमाशंकर ने इसका कोई उत्तर न दिया, वह दहाड़ें मार-मारकर रोने लगा। उसकी यह दशा देखकर मुझसे भी सहन न हो सका। दशा भिन्न हो गयी, हृदय के टुकड़े-टुकड़े हो गये, चिन्ता और क्रोध तिलमिलाने और छटपटाने लगा। ●

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सीमान्त

1

उस दिन सबेरे कुछ ठण्ड थी; परन्तु दोपहर के समय हवा गर्मी पाकर दक्षिण दिशा की ओर से बहने लगी थी। यतीन जिस बरामदे में बैठा हुआ था, वहां से उद्यान के एक कोने में खड़े हुए एक ओर कटहल और दूसरी ओर के शिरीष वृक्ष के बीच से बाहर का मैदान दिखाई पड़ता है। वह सुनसान मैदान फाल्गुन की धूप में धू-धू करके जल रहा था। उसी से सटा हुआ एक कच्चा रास्ता निकल गया है। उसी पर एक खाली बैलगाड़ी धीमी चाल से गांव की ओर लौट रही थी और गाड़ीवान धूप से बचने के लिए सिर पर लाल रंग का गमछा लपेटे मस्ती में किसी गीत की कड़ियां दोहराता हुआ जा रहा था ?

ठीक इसी समय पीछे से किसी नारी का मधुर और हास्य स्वर फूट पड़ा—"क्यों यतीन, क्या बैठे-बैठे अपने पिछले जन्म की किसी बात को सोच रहे हो ?" यतीन ने सुना और पीछे की ओर देखकर कहा—"क्या मैं ऐसा ही हतभागा हूं पटल, जो सोचते समय पिछले जन्म के विचारे बिना काम ही नहीं चलेगा।"

अपने परिवार में पटल नाम से पुकारी जाने वाली वह बाला बोल उठी—"झूठी शेखी मत मारो यतीन; तुम्हारे इस जन्म की सारी बातें मुझे मालूम हैं। छिः ! छिः ! इतनी उम्र हो गई, फिर भी एक बहू घर में न ला सके। हमारा जो धनेसर माली है, उसकी भी एक घरवाली है। रात-दिन उसके साथ लड़-झगड़कर मोहल्ले भर के लोगों को वह कम-से-कम इतना तो बता देती है, कि उसका भी इस दुनिया में अस्तित्व है। तुम तो मैदान की तरफ मुंह करके ऐसे भाव दर्शा रहे हो, मानो किसी पूनम के चांद से सलोने मुखड़े का ध्यान करने के लिए बैठे हो ? तुम्हारी इन चालाकियों को मैं खूब समझती हूं। यह सब लोगों को दिखाने के लिए ढोंग रच रखा है। देखो यतीन, जाने-माने ब्राह्मण के लिए जनेऊ की आवश्यकता नहीं पड़ती। हमारा वह धनेसर माली तो कभी विरह का बहाना करके इस सुनसान मैदान की ओर दृष्टि गड़ाये बैठा नहीं रहता। जुदाई की लम्बी घड़ियों में भी उसे वृक्ष के नीचे हाथों में खुरपी थामे समय काटते देखा है; किन्तु उसकी आंखों में ऐसी खुमारी नहीं देखी। एक तुम हो, ज़िसने सात जन्म से कभी बहू का सलोना मुखड़ा नहीं निहारा।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

बस, अस्पताल में शव की चीड़-फाड़ करके और मोटे-मोटे पोथे रट-रटकर उम्र के सुहावने दिन काट दिये। अब आखिर, इस चिलचिलाती दोपहरी में तुम इस प्रकार ऊपर की ओर टकटकी बांधे क्या देखते रहते हो, कुछ तो कहो ? नहीं, ये सब व्यर्थ की चालाकियां मुझे अच्छी नहीं लगतीं। देख-देखकर सारा बदन अन्तर की ज्वाला से जलने लगता है।

यतीन ने सुना और हाथ जोड़कर कहा—"चलो, रहने भी दो। मुझे व्यर्थ में वैसे ही लज्जित मत करो। तुम्हारा वह धनेसर माली ही सब प्रकार से धन्य रहे। उसी के आदर्शों पर मैं चलने का यत्न करूंगा बस, अब देर नहीं, सवेरे उठते ही सामने लकड़ियां बीनने वाली जिस किसी बाला का मुंह देखूंगा उसी के गले में स्नेह से गुंथी हुई फूलों की माला डाल दूंगा। तुम्हारे ये कटाक्ष भरे शब्द अब मुझसे नहीं सहन होते।"

"बात निश्चित रही न...." पटल ने पूछा।

"हां।"

"तब चलो मेरे साथ।"

यतीन कुछ भी न समझ सका। उसने पूछा—"कहां ?"

पटल ने उसे उठाते हुए कहा—"चलो तो सही।"

परन्तु यतीन ने हाथ छुड़ाते हुए कहा—"नहीं, नहीं, अवश्य तुम्हें कोई नई शरारत सूझी है। मैं अभी तुम्हारे साथ नहीं जाने का हूं।"

"अच्छा, तो यहीं पड़े रहो—"पटल ने रोष-भरे शब्दों में कहा और शीघ्रता के साथ अन्दर चली गई।

यतीन और पटल की आयु में बहुत थोड़ा अन्तर है और वह है सिर्फ एक दिन का। पटल यतीन से बड़ी थी, चाहे उसे यह बड़प्पन एक ही दिन का मिला हो; लेकिन इस एक दिन के लिए यतीन को उसके लिए लोकाचार हेतु सम्मान दिखाना होगा, यह यतीन को बिल्कुल भी स्वीकार नहीं। दोनों का सम्बन्ध चचेरे भाई-बहन का है और बचपन एक साथ ही खेल-कूद में बीता है। यतीन के मुख से 'दीदी' शब्द न सुनकर पटल ने अनेकों बार पिता और चाचा से उसकी शिकायत की; परन्तु किसी प्रकार से भी इसका खास फल निकला हो, ऐसा नहीं जान पड़ता। संसार में इस एक छोटे भाई के पास भी पटल का छोटा-सा मामूली नाम 'पटल' आज तक नहीं छिप सका।

पटल देखने में खासी मोटी-ताजी, गोल-मटोल लड़की है। उसके प्रसन्न मुख से किये जाने वाले आश्चर्यजनक हास-परिहासों को रोकने की ताकत समाज में भी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

नहीं थी। उसका चेहरा सास-मां के सामने भी गम्भीरता का साम्राज्य स्थापित नहीं कर सका। पहले-पहल वह इन बातों के कारण इस नये घर में चर्चा का केन्द्र बनी रही। अन्त में स्वयं पराजित होकर परिजनों को कहना पड़ा—"इस बहू के तो ढंग ही अनोखे हैं।"

कुछ दिनों के बाद तो उसकी ससुराल में यहां तक नौबत आ गई, कि इसके हास्य के आघात से परिजनों का गाम्भीर्य भूमिसात हो गया; क्योंकि पटल के लिए किसी का भारी जी और मुंह लटकाना देखना असम्भव है।

पटल के पति हरकुमार बाबू डिप्टी मजिस्ट्रेट हैं। बिहार के एक इलाके से उनकी तरक्की करके उन्हें कलकत्ते के आबकारी विभाग में उच्च पद पर ले लिया गया है। प्लेग के भय से कलकत्ता से बाहर उपनगर में एक किराये के मकान में रहते हैं और वहीं से अपने काम पर कलकत्ते आया-जाया करते हैं। मकान के चारों ओर बड़ी चारदीवारी है और उसी में एक छोटा-सा बगीचा है।

इस आबकारी के विभाग में हरकुमार बाबू को अक्सर दौरे के रूप में अनेक गांवों का चक्कर काटना पड़ता है। पटल इस मौके पर अकेली रह जाती है, जो उसे खलता है। वे इस बात को दूर करने के लिए किसी आत्मीयजन को घर से बुलाने की सोच रहे थे कि उसी समय हाथ ही में डाक्टरी की उपाधि से सुशोभित यतीन चचेरी बहन के निमंत्रण पर एक सप्ताह के लिए वहां आ पहुंचा।

कलकत्ते की प्रसिद्ध अंधेरी गलियों में से होकर पहली बार पेड़-पत्तों के बीच आकर आज यतीन इस सूने बरामदे में फाल्गुन की दुपहरिया से आत्मविभोर बैठा था कि पटल पीछे से आकर यह नई शरारत कर गई। पटल के चले जाने के बाद वह कुछ देर लिए निश्चित होकर बैठ गया। लकड़ी बीनने वाली लड़कियों का जिक्र आ जाने के कारण यतीन का मन बचपन में सुनी परी-देश की रोचक कथाओं के गली-कूचों में चक्कर काटने लगा।

पर कहां ? अभी कुछ क्षण भी नहीं बीते होंगे, कि पटल का हास्य से भरा हुआ चिर-परिचित स्वर यतीन के कानों में पड़ा। उसे सुनकर वह चौंक पड़ा। उसने मुड़कर देखा पटल किसी बालिका को खींचे ला रही थी ? इतना देखकर यतीन ने मुख फेर लिया। तभी पटल ने उस बालिका को यतीन के सामने करके पुकारा—"चुनिया !" बालिका ने अपना नाम सुन करके कहा—"क्या हैं दीदी ?"

पटल ने चुनिया का हाथ छोड़ते हुए कहा—"मेरा यह भाई कैसा है ? देख तो भला।"

चुनिया जो अब तक गर्दन झुकाये हुए थी निःसंकोच यतीन के चेहरे की ओर

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

निहारने लगी।

उसे ऐसा करते हुए देख पटल ने पूछा—"क्यों री, देखने में तो अच्छा लगता है न ?"

चुनिया ने शान्त स्वर से सिर हिलाते हुए कहा—"हां ! अच्छा है।"

यतीन ने देखा और सुना, फिर लज्जावश कुर्सी से उठता हुआ बोला—"ओह पटल ! यह क्या लड़कपन है ?"

"मैं लड़कपन कर रही हूं या तुम व्यर्थ में ही बुढ़ापा दिखला रहे हो।"—पटल ने यतीन के शब्दों को सुनकर निःसंकोच कहा।

"अब बचाना मुश्किल है"—यतीन के होंठों से शब्द निकले और वह यहां से भाग गया। पटल ने उसका पीछा किया और भागती हुई बोली। "अरे ! सुनो तो, भय की कोई बात नहीं है, यकीन तनिक भी नहीं है। कौन तुम्हारे गले में अभी माला डाल रहा है ? फाल्गुन-चैत में तो इस बार कोई लगन ही नहीं पड़ती, अभी बहुत समय है।"

वे दोनों उस जगह से चले गये; परन्तु चुनिया आश्चर्यचकित अवस्था में वहीं खड़ी रह गई। उसके इकहरे बदन ने तनिक भी जुम्बिश न की। उसकी आयु लगभग 16 ही वर्ष की होगी। उसके सलोने मुख का वर्णन पूर्णतया लेखनी से नहीं किया जा सकता; पर इतना अवश्य लिखा जा सकता है, कि उसमें ऐसी आकर्षण शक्ति है, जो देखते ही वन की मृगी की याद दिला देती है। साहित्यिक भाषा में कहने की आवश्यकता पड़े तो उसे निर्बुद्धि भी कहा जा सकता है; किन्तु मूर्ख के साथ उसकी उपमा नहीं दी जा सकती है। हां, अपने समाधान के लिए यह अवश्य सोचा जा सकता है, कि बुद्धिवृत्तिपूर्ण विकसित नहीं हुई है; लेकिन इन सब बातों से चुनिया का सौन्दर्य घटा नहीं; अपितु उसमें एक विशेषता ही आ गई है।

संध्या को हरकुमार बाबू ने कलकत्ते से लौटकर यतीन को देखा तो वे बहुत प्रसन्न हुए और उसी मुद्रा में बोले—"तुम आ पहुंचे, चलो बड़ा ही अच्छा हुआ।"

और फिर दफ्तर के कपड़े बदलकर जल्दी से उसके पास बैठकर कुछ व्यस्त भाव से बोले—"यतीन ! तुम्हें जरा डॉक्टरी करनी होगी। अकाल पाल रहे हैं। पटल उसे चुनिया कहकर पुकारती है। उसके मां-बाप और वह, सब बाहर मैदान के पास ही एक पेड़ के नीचे पड़े हुए थे। सूचना मिलते ही मैंने बाहर जाकर देखा, तो बेचारे मां-बाप दुनिया के झंझटों से मुक्ति पा चुके थे, सिर्फ लड़की के प्राण अभी बाकी थे। मैंने उसे लड़की समझा और बड़ी सेवा-जतन के बाद उसे बचाने में समर्थ हुई।

"उसकी जाति के विषय में कोई कुछ नहीं जानता ? यदि उस ओर से कोई

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

ऐतराज भी करता है तो पटल कहती है वह द्विज है। एक बार मरकर फिर से जो इस घर में जन्मी है। इसलिए इसकी मूल जाति तो कभी की मिट चुकी है।

पहले पहल उसने पटल को मां कहकर पुकारना शुरू किया था; पर पटल को इसमें लज्जा का भाव होता था। अतः पटल ने उसे धमकाते हुये कहा—"खबरदार !! मुझे अब से मां मत कहना। दीदी कहकर भले ही पुकार सकती हो, पटल कहती है, "अरे, इतनी बड़ी लड़की यदि मुझे मां कहेगी तो मैं अपने आपको बुढ़िया समझने लगूंगी।"

हरकुमार बाबू ने लम्बी सांस खींचकर पुनः कहा—"यतीन एक बात और भी है। शायद उन अकाल के दिनों में या फिर किसी अन्य कारणवश चुनिया को रह-रहकर एक शूल की तरह पीड़ा उठा करती है। असल बात क्या है, सो तुम्हीं को अच्छी तरह डॉक्टरी परीक्षा करके समझना होगा—अरे, ओ तुलसी, चुनिया को तो बुला ला।"

हरकुमार बाबू के इस लम्बे व्याख्यान की समाप्ति पर यतीन खुलकर सांस भी न ले सका था, कि चुनिया केश बांधती हुई, अपनी आधी बंधी वेणी को पीठ पर लटकाये कमरे में दाखिल हुई। अपनी बड़ी-बड़ी गोल आंखों को एक बार दोनों व्यक्तियों पर डालकर चुपचाप खड़ी हो गई।

हरकुमार बाबू सबकी चुप्पी को तोड़कर बोले—"तुम तो व्यर्थ में ही संकोच कर रहे हो यतीन। यह तो देखने भर की बात है। कच्चे नारियल की तरह इसके भीतर सिर्फ स्वच्छ तरल द्रव्य ही छलक रहा है; कठोर गरी की रेखा मात्र भी अभी तक फूटी नहीं है। यह बेचारी कुछ भी समझती-बूझती नहीं है। इसे तुम नारी समझने की भूल मत कर बैठना। यह तो जंगल की भोली-भाली मृगी-मात्र है।"

यतीन चुपचाप अपने डाक्टरी फर्ज को पूरा करने में लग गया। चुनिया ने भी किसी प्रकार का संकोच नहीं किया और न आपत्ति ही उठाई ? यतीन ने थोड़ी देर तक चुनिया के शरीर की जांच-पड़ताल करके कहा—"शरीर यंत्र में कोई विकार पैदा हुआ हो ? ऐसा तो दिखाई नहीं देता।"

पटल ने उसी क्षण आंधी के समान वहां पहुंचकर कहा—"हृदय-यंत्र में भी कोई विकार पैदा नहीं हुआ यतीन परीक्षा करना चाहते हो क्या....अच्छी बात है।"

और फिर वह चुनिया के पास जाकर उसकी ठोड़ी छूती हुई बोली—"चुनिया ! मेरा यह भाई तुझे पसंद आया न ?"

चुनिया ने सिर हिलाकर कहा—"हां।"

पटल ने पूछा—"मेरे इस भाई से विवाह करेगी ?"

चुनिया ने इस बार भी वैसे ही सिर हिलाकर कहा—"हां।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पटल और हरकुमार बाबू दोनों ही हंस पड़े। चुनिया इस खेल के गर्भ को समझ कर भी इन्हीं का अनुकरण किए, हंसी से घिरा चेहरा लेकर एकटक ताकती रह गई।

यतीन का चेहरा लज्जा से लाल हो उठा। वह कुछ परेशान-सा होकर बोला—"ओह, पटल ! तुम बहुत ज्यादती कर रही हो। यह तो सरासर अन्याय है। हरकुमार बाबू भी तो तुम्हें बहुत बढ़ावा दे रहे हैं।"

पटल के कुछ कहने से पूर्व हरकुमार बाबू बोले—"यदि ऐसा न करूं तो मैं इससे प्रश्रय पाने की प्रत्याशा कैसे कर सकता हूं—तनिक बताओ तो सही ? लेकिन यतीन, चुनिया को तुम नहीं जानते, इसी कारण तुम इतने हैरान हो रहे हो। दिखाई देता है, तुम स्वयं लजा-लजाकर चुनिया को भी लजाना सिखा दोगे। ज्ञान वृक्ष का फल उसे दया कर मत खिलाओ। आज तक हम सब ने सरल भाव से उसके साथ खेल किया है। अब तुम यदि बीच में आकर गम्भीरता दिखाने लगोगे तो उसके लिए बड़ा असंगत-सा मामला हो जायेगा....।"

तभी पटल बोल उठी—"इसी से तो यतीन के साथ मेरी कभी नहीं बनी। बचपन से लेकर आज तक सिर्फ झगड़ा ही हुआ है। यतीन आवश्यकता से अधिक गम्भीर है।"

हरकुमार बाबू किसी रहस्य के मर्म को समझते हुए बोले—"शायद इसी कारण से यह वाक्युद्ध करना तुम्हारी आदत बन गई है। जब भाई साहब नौ दो ग्यारह हुए तो फिर मुझ गरीब....।"

पटल ने तुनककर कहा—"फिर वही झूठ ! भला आप से झगड़ा करने में कौन-सा सुख पा जाती हूं—इसलिए मैं उसकी चेष्टा ही नहीं करती ?"

मैं शुरू में ही हार मान लेता हूं—"हरकुमार बाबू ने पटल को चिढ़ाने के अभिप्रायः से उत्तर दिया।

"बड़ी बहादुरी दिखाते हो न शुरू में हार कर, यदि मेरी अंत में मान लेते, तो कितनी खुशी मुझे होती। आपने कभी समझने का भी प्रयत्न किया है इसे।" इतना कहकर पटल चुनिया को लेकर वहां से चली गई। उसके जाते ही कमरे में नीरवता का आचरण छा गया। वे दोनों एक-दूसरे को देखते हुए शान्त बैठे रहे। थोड़ी देर के बाद तुलसी ने भोजन की सूचना दी। हरकुमार बाबू यतीन को लेकर तुलसी के पीछे रसोईघर में पहुंच गये। पटल वहां न थी। चुनिया ने ही खाना परोसने का काम किया। दोनों भोजन करने बैठ गये। खाते समय बातें करना सभ्यता के विरुद्ध समझकर हरकुमार बाबू ने बोलना उचित नहीं समझा—इस प्रकार वह वातावरण शान्त ही बना रहा।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

2

यतीन सारी रात अपने कमरे की खिड़कियां खोलकर जाने क्या-क्या सोचता रहा ? जिस लड़की ने अपने मां-बाप को मरते देखा है। उसके जीवन पर कैसी भयंकर छाया आकर पड़ी होगी ? ऐसी विदारक घटना के भीतर से आज वह इतनी बड़ी हुई है। उसे लेकर भला कही परिहास किया जा सकता है। यही अच्छा हुआ, जो विधाता ने कृपा करके उसकी विकसित बुद्धि पर एक आवरण डाल दिया। यदि किसी कारणवश वह आवरण कभी उठ जाये, तो भाग्य की रुद्र लीला का कैसा भयंकर चिह्न लक्षित हो उठेगा ?

यतीन जब फाल्गुन की दुपहरिया में वृक्षों के अंतराल से आकाश की ओर निहार रहा था और कटहल की कलियों की मादक सुगन्ध से मृदुतर होकर गंध-शक्ति को चहुंओर से घेर रखा था, तो उस समय उसके मन ने सारी दुनिया को माधुर्य के कुहरे से ढके हुए देखा था, लेकिन अब इस बुद्धिहीन लड़की ने अपनी हिरनी जैसी आंखों द्वारा उस सुनहले कुहरे को मानो पानी की काई की तह के समान हटा डाला है।

फाल्गुन के इस आवरण के पीछे जो विश्व भूख-प्यास से विकल, विषाद की भार-स्वरूप गठरी को देह पर लिये विराट प्रतिमा का रूप धर कर खड़ा है, आज वह उद्घाटित यवनिका के शिल्प-मधुरता के अंतराल से स्पष्ट दृष्टिगोचर हुआ है।

कब सवेरा हुआ और पूरा दिन बीतकर शाम होने को आई यह यतीन को ठीक से याद ही नहीं रहा ? वह तो पटल के बुलाने पर जब अन्दर गया तो उसने देखा कि चुनिया को वही पीड़ा उठी हुई थी। उसके हाथ -पांव तो सुन्न हो गये थे और उसका कोमल शरीर अकड़ गया था। यतीन ने दवा लाने के लिए तुलसी को भेजकर बोतल में पानी मंगवाया, पर पटल झट से बोल उठी—"कैसे डॉक्टर बने हो जी ? पांवों में तनिक गर्म-गर्म तेल की मालिश भी तो करनी होगी। देखते नहीं, इस बेचारी के तलुवे कैसे बर्फ हो रहे हैं ?"

यतीन ने विस्मित नेत्रों से पटल की ओर देखा और उसके हाथ में से गर्म तेल का बर्तन लेकर, रोगिणी के तलुओं में पूरी शक्ति से उस तेल की मालिश शुरू कर दी। इलाज करते हुए रात भी बीतने को आई पर....हरकुमार बाबू कलकत्ते से लौटने पर बार-बार चुनिया की अवस्था के विषय में पूछने लगे। यतीन समझ गया कि इस समय दफ्तर से लौटने पर पटल के बिना हरकुमार बाबू की अवस्था कुछ ....इसीलिए बार-बार आकर चुनिया की अवस्था को पूछने का यही भेद है।

S.P.S. Library
Srinagar.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

वह परिहास करता हुआ पटल से बोला—"हरकुमार बाबू छटपटा रहे हैं, तुम अब जाओ।"

उसी समय पटल ने मुंह बनाते हुए गम्भीर मुद्रा में कहा—"दूसरों की दुहाई तो दोगे ही। कौन छटपटा रहा है, सो मैं अच्छी तरह जानती हूं ? मेरे चले जाने से ही अब तुम्हें रिहाई मिलेगी न ? इधर बात-बात में चेहरे का रंग उषा की तरह लाल हो उठता है। तुम्हारे पेट में भी यह सब छिपा हुआ है, आज से पहले इसे कौन जान सकता था ?"

यतीन पटल के इस कटाक्ष से तिलमिला उठा। उसने हाथ जोड़ते हुए कहा—"अच्छा, दुहाई तुम्हारी; तुम यहीं रहो। मुझे क्षमा करो। तुम्हारे मुंह पर गम्भीर्य रहने से ही मेरी जान बचेगी। मैंने समझने में भूल की थी। हरकुमार बाबू शायद इस समय सुख और शान्ति में हैं। ऐसा सुयोग उनके भाग्य में हमेशा नहीं बदा होता है।"

चुनिया ने तनिक आराम पाकर जब आंखें खोलीं तो पटल ने प्यार भरे स्वर में कहा—"पगली। तेरी हिरनी जैसी आंखें खुलवाने के लिए तेरा वर बड़ी देर से तलुवे सहलाकर तुझे मना रहा है। इसीलिए तूने देर की, अब समझी। छिः ! छिः !! उठ उसके पवित्र चरणों की धूलि ले।"

चुनिया ने मानो अज्ञात प्रेरणा से उसी क्षण उठकर छुपी हुई श्रद्धा के साथ यतीन के चरणों की धूलि माथे में लगा ली।

और दूसरे ही दिन से यतीन के साथ नये-नये उपद्रवों का श्री गणेश हो गया। यतीन जब भोजन के लिए बैठता तो चुनिया प्रसन्नचित्त विजन डुलाकर मक्खियों को दूर करने में जुट जाती। यतीन व्यस्त भाव से कह उठता—"रहने दो, रहने दो, इसकी आवश्यकता नहीं।"

चुनिया ऐसा सुनकर विस्मित नेत्रों से पार्श्व-कक्ष की ओर देखती और उसके बाद फिर से पंखा डुलाने लग जाती। यतीन जैसे खीज उठता और पटल को सुनाने के अभिप्रायः से कहता—"पटल ! तुम यदि इसी प्रकार मुझे तंग करोगी तो मैं कदापि भोजन नहीं करूंगा। यह लो, मैं उठता हूं।"

लेकिन एक दिन यतीन के उठने का उपक्रम देखकर चुनिया ने विजन को एक ओर फेंक दिया। यतीन को उसी क्षण उसके चेहरे पर विषाद की रेखाएं दृष्टिगोचर हुईं। खिन्नावस्था में उसी क्षण वह फिर बैठ गया। चुनिया कुछ भी नहीं समझती है, लजाना उसे आता नहीं है विषाद् का भारत सम्भालने की उसमें क्षमता नहीं है—सबके समान इन बातों पर यतीन के हृदय ने भी विश्वास करना आरम्भ कर दिया था।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

किन्तु आज मानो उसे सहसा दिखाई दिया, कि सारे नियमों का व्यक्ति-क्रम करके अकस्मात कब क्या घटित हो जाता है, इसे पहले से कभी नहीं जाना जा सकता है ? चुनिया ने फिर विजन नहीं डुलाया। उसे वही फेंककर तत्काल ही दूसरे कमरे में चली गई।

✠ ✠ ✠ ✠

यतीन बरामदे में बैठा था। आमों के पत्तों के बीच में छिपी हुई कोयल ने उच्च स्वर में अपना तराना छेड़ दिया था। आप मंजरियों की सुगन्ध से सवेरे की हवा भारी हो गई थी। तभी उसे देखा, चुनिया चाय का प्याला हाथ में लिये समीप आने से मानो कुछ झिझक-सी रही है। उसकी भोली और कलरारी आंखां के छोरों में कहां का एक सकरुण भय छुप कर आ बैठा है। उसके चाय लेकर आने से यतीन रीझेगा या खीझेगा, इसे जैसे वह ठीक-ठीक समझ ही नहीं पा रही थी।

यतीन ने सुस्थिर चित्त से उठकर आगे बढ़ते हुए उसके हाथ से चाय का प्याला ले लिया। भला इस हिरनी जैसी आंखां वाली मानवी को किसी क्षुद्र कारणवश कहीं वेदना दी जा सकती है ! किन्तु उसने चाय का प्याला हाथ में पकड़ा ही था, कि देखा बरामदे क़े दूसरे किनारे से सहसा प्रगट होकर पटल ने मौन हास्य द्वारा उंगली दिखाई। भाव बिल्कुल स्पष्ट थे, अब कैसे हारे तुम ?

उसी संध्या को यतीन किसी पत्रिका के पृष्ठ पलट रहा था, कि पुष्पों की सुगन्ध से चकित होकर उसने सिर उठाया। देखा मौलसिरी के पुष्पों का हार हाथ में लिये चुनिया धीरे-धीरे उसके कमरे में प्रविष्ट हो रही है।

यतीन ने मन-ही-मन में सोचा। यह तो बहुत ज्यादती की जा रही है। पटल के इस निष्ठुर मनोरंजन को अब और अधिक चढ़ावा नहीं देना चाहिए। अतः उसने चुनिया से कहा—"छिः, छिः ! चुनी ! तुम्हें बनाकर दीदी अपना मनोरंजन किया करती हैं, सो क्या तुम इतना भी नहीं समझ पाती ?"

बात समाप्त होने से पहले ही चुनिया ने त्रस्त मन और संकुचित भाव से अन्दर की ओर लौट जाने का उपक्रम किया। यतीन ने तब शीघ्रता से उसे बुलाकर कहा—"देखूं तनिक ! तुम्हारे इस हार को।"

हाथ आगे करके उसने हार ले लिया। चुनिया के मुख पर से विषाद के बादल फट गये और आनन्द क़ी उज्जवल रेखा-सी फूट पड़ी। ठीक उसी समय दूसरे कमरे में से किसी के अट्टहास की उच्छ्वसित ध्वनि सुनाई दी ?

दूसरे दिन सवेरे उपद्रव करने के अभिप्रायः से पटल ने यतीन के कमरे में जाकर देखा, कि कमरा सूना पड़ा है। सिर्फ मेज पर पड़े कागज पर लिखा है—"भागा

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जा रहा हूं, यतीन।"

"अरी ओ चुनिया ! तेरा वन तो भाग निकला। उसे तू रोक भी नहीं पाई।" बाहर जाकर पटल ने चुनिया की वेणी पकड़कर डुलाते हुए कहा और फिर घर के काम-धन्धों में लग गई।

किन्तु चुनिया को इस छोटी-सी बात समझने में कुछ समय लगा। वह पाषाण प्रतिमा के समान खड़ी स्थिर दृष्टि से सामने की ओर देखती रही। इसके उपरान्त धीरे-धीरे यतीन के कमरे में जाकर उसने देखा। कमरा खाली पड़ा है और पिछली शाम को उसका दिया हुआ हार उसी तरह मेज पर रखा है।

उस दिन फाल्गुन मास का सवेरा स्निग्ध एवं सुन्दर दिखाई पड़ रहा था कम्पित कृष्ण चूड़ा वृक्ष की शालाओं के भीतर से छनकर और छाया के साथ घुल-मिलकर सवेरे की धूप बरामदे में आ रही थी। गिलहरी अपनी मुलायम पूंछ को पीठ की ओर मोड़े हुए इधर-उधर कुछ पाने की आशा में दौड़ रही थी। पक्षियों का समूह संगठित रूप में अपने मधुर रागों द्वारा भी अपने वक्तव्य को मानो किसी तरह सम्पूर्ण नहीं कर पा रहे थे; किन्तु महान विश्व के इन छोटे से कोने में इस पल्लव समूह काया और धूप के द्वारा बने विश्व के तनिक खंड के भीतर प्राणों का आनन्द पूर्णरूप से खिल उठा था।

उसी एक कोने के बीच एक बुद्धिहीन लड़की अपने जीवन का अपने इर्द-गिर्द के सम्पूर्ण परिवेश का कोई समीचीन अर्थ नहीं खोज पा रही थी ? उसके लिए सभी कुछ एक पहली बन गया था। यह क्या हो गया ?.... और ऐसा हुआ क्यों ? फिर उसके बाद यह सवेरा, यह घर, सब कुछ एक साथ ही भला इतने सूने क्यों हो गये ? जिसके अन्तर में समझने की शक्ति इतनी कम दी थी, उसी की अकस्मात एक दिन हृदय की अतुल वेदना के रहस्य-गर्भ के गाढ़ अन्धकार में बिना ज्योति सहसा किसने उतार दिया ? विश्व के इस सहज उच्छवसित जीवनमय समाज में इन तरुपल्लवों, मृग-खगों के आत्मा-विस्मृत कलरव के भीतर इस प्रगाढ़ अन्धकार से उसे फिर कौन खींचकर बाहर लायेगा।

पटल ने एकाएक पहुंचकर विस्मित स्वर में कहा—"यह क्या हो रहा है, चुनिया ?"

चुनिया ने सुना मात्र लेकिन उठी नहीं, कुछ बोली भी नहीं, जैसी थी वैसी ही रही। पटल ने समीप पहुंचकर स्पर्श किया तो उच्छवसित हो वह फूट-फूट कर रोने लगी। अश्रु आंखों के बांध को लांघकर अविरल गति से बहने लगे।

पटल ने आश्चर्य चकित-सी अवस्था में कहा—"अरी कलमुंही, तूने तो

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

बिल्कुल ही सत्यानाश कर लिया। तू क्यों भला मरने गई थी ?"

और फिर चुनिया की इस अवस्था से अवगत करने के अभिप्राय: से पटल ने अपने पति के समीप जाकर कहा—"यह तो, अच्छी मुसीबत बैठे-बिठाये गले से बांध ली। आखिर ! आपकी अक्ल पर भी क्या पत्थर पड़ गये थे, जो मुझे उस समय रोका नहीं।"

हरकुमार बाबू ने पटल की खीझपूर्ण बात को सुनकर कहा—"तुम्हें रोकने की मेरी कभी आदत ही नहीं रही, फिर रोकने से ही ऐसा कौन-सा कल निकल आता ?"

"आप कैसे हो जी—" पटल ने तुनककर कहा—"मैं यदि गलती करूं तो आप जबरदस्ती नहीं रोक सकते क्या ?"

फिर वह उत्तर पाये बिना ही, दौड़ती हुई आकर यतीन के कमरे में विरह-व्यथा से पीड़ित लड़की को आलिंगनबद्ध करती हुई बोली—"मेरी रानी बहन ! तू क्या चाहती है; सो एक बार तो दिल खोलकर मुझसे कह ?"

परन्तु चुनिया के पास ऐसी कौन-सी भाषा है, जिससे वह अपने हृदय के व्याघात को वाणी के द्वारा सुना सके। वह हृदय की सारी वेदना लिये मानो किसी अनिर्वचनीय वेदना पर जा पड़ी है। यह कैसी वेदना है ? विश्व में और भी किसी को क्या ऐसी ही अनुभूति होती है ? संसार उसके विषय में क्या सोचता होगा ? ....किसी भी विषय में चुनिया कुछ भी तो नहीं जानती वह तो केवल अपने इन आंसुओं के द्वारा ही कुछ कह सकती है। मन की पीड़ा को दर्शाने का और तो कोई उपाय उसका जाना हुआ नहीं है।

फिर पटल के ही ओठ हिले—"चुनिया तेरी दीदी बड़ी उछृंखल है, लेकिन स्वप्न में भी नहीं सोचा था। कोई भी कभी उसकी बात पर भरोसा नहीं करता, फिर तूने ही ऐसी भयंकर भूल क्यों की ? चुनिया ! एक बार, बस एक बार अपनी दीदी की ओर मुंह उठाकर तो देख, उसे क्षमा कर दे बहन।"

किन्तु चुनिया का मन इस अकस्मात घटना से बिल्कुल ही विमुख हो चुका था। इसलिए वह किसी भी तरह पटल के मुख की ओर न देख सकी। सारी बातें अच्छी तरह प्रकार से नहीं समझने पर भी उसने एक प्रकार के गूढ़ भाव से पटल पर क्रोध प्रकट किया था। वह उसी अवस्था में अपने हाथों में जोरों से सिर गढ़ाये रही।

पटल तब धीरे-धीरे अपनी लम्बी भुजाओं को हटाकर चुपचाप उठकर चली आई। पाषाण प्रतिमा की तरह खिड़की के किनारे स्तब्ध भाव से आकर खड़ी हो गई। फाल्गुन की धूप से चिकनी चमकीली सुपारी वृक्ष की पल्लव श्रेणी को निहारते-निहारते उसके दोनों नेत्रों से अश्रु बहने लगे।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

और अगले दिन चुनिया उसे बिल्कुल दिखाई नहीं दी। पटल उसे बड़े प्यार से अच्छे-अच्छे आभूषणों और वस्त्रों से अलंकृत किया करती थी। वह स्वयं बड़ी बेतरतीबी से रहती, अपनी स्वयं की सजावट के विषय में कोई यत्न नहीं करती थी; लेकिन सजावट की अपनी आकांक्षा को वह चुनिया को सजाकर ही पूरा कर लेती थी। आज बहुत दिनों के संचित वह सारे आभूषण और वस्त्र चुनिया के कमरे में पड़े हुए थे। अपने हाथों के कंगन और चूड़ियां तथा नाक की लोंग तक वह उतार कर डाल गई थी। अपनी पटल दीदी के इतने दिनों के लाड़-प्यार को मानो उसने अपनी देह से बिल्कुल ही चिह्न-रहित कर डालने का भरसक प्रयत्न किया है।

हरकुमार बाबू ने पता लगाने के लिए पुलिस में सूचना भेजी। उन दिनों प्लेग की महामारी से भयभीत होकर इतने आदमी इतनी विभिन्न दिशाओं में जीवन की साध लेकर भाग रहे थे। उन भगोड़ों के समूह में से किसी खास व्यक्ति को ढूंढ़ निकालना पुलिस के लिए कठिन कार्य बन गया था। दो-चार बार गलत व्यक्ति का पता पाने पर हरकुमार बाबू को काफी दुःखी और लज्जित होना पड़ा।

अन्त में उन्होंने चुनिया के मिलने की आशा को त्याग दिया। एक दिन जिसे अज्ञात की गोद में पड़ा पाया था, वही आज फिर किसी अज्ञात ही अन्तर्धान हो गई थी?

सरकारी प्लेग अस्पताल का डॉक्टर यतीन दोपहर का भोजन करके अस्पताल पहुंचा ही था, कि सूचना मिली, जनाने वार्ड में कोई नई रोगिनी आई है। पुलिस उसे रास्ते से उठाकर लाई है।

यतीन देखने गया। लड़की ने मुंह का अधिकांश भाग चादर से ढका हुआ था। यतीन ने हाथ उठाकर नाड़ी को टटोला। ज्वर अधिक नहीं था; लेकिन कमजोरी अधिक थी। विशेष परीक्षा के अभिप्रायः से जब उसने मुख पर से चादर हटाकर देखा तो चकित रह गया, वह चुनिया थी।

यतीन अब तक पटल से चुनिया के विषय में सब-कुछ सुन चुका था। मरीजों की भीड़ से फुरसत पाते ही यतीन के मानस पटल पर, अव्यक्त हृदय तरंग के घूंघट से ढकी हुई चुनिया की मृगी जैसी दोनों सुन्दर आंखें प्रायः सदा एक प्रकार की अश्रुहीन कातरता को बिखरा दिया करती थी....

आज रोगी की नेत्रों की बड़ी-बड़ी पलकों ने चुनिया के शीर्ण कपोलों पर गहरी छाया रेखा खींच रखी है। देखते ही यतीन के वक्षस्थल के भीतर मानो किसी ने सहसा मेरु जैसे कोई बोझ दबाकर रख दिया है। इस एक लड़की को भगवान ने स्वयं ही फूल की तरह कोमल रूप में गढ़कर फिर दुनिया से खींचकर प्लेग जैसी महामारी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

के स्रोत में कैसे बहा दिया ? आज इस छोटी-सी आय ने विपदाओं के इतने बड़े आघात, वेदना का इतना भारी बोझ, आखिर कैसे सह लिया ? यह सब समा कैसे गए ? यतीन ही भला उसके जीवन में तीसरे संकट की तरह कहां से आकर लग गया था ?

रुद्ध दीर्घ सांसें यतीन के रुद्ध द्वार पर निरन्तर धक्के देने लगीं; किन्तु उसी आघात की वेदना से उसके हृदय के तार में किसी अज्ञात सुख की होड़ सी लग गई ? जो स्नेह विश्व में मिलना कठिन होता है, वही फाल्गुन की किसी दोपहरिया में पूर्ण विकसित बसन्ती मंजरी के समान अयाचित और अकस्मात ही उसके चरणों के निकट खिसककर जा पड़ी है। जो निश्छल स्नेह इस प्रकार यम के द्वार तक आकर मूर्छित होकर गिर पड़ता है, ऐसे देवयोग नैवेद्य का सच्चा अधिकारी दुनिया में इस तरह अनायास ही भला और कौन हो सकता है ?

यतीन चुनिया के पार्श्व में बैठकर उसे थोड़ा-थोड़ा गर्म दूध पिलाने लगा, पीते-पीते काफी देर के बाद चुनिया ने दीर्घ सांस लेकर नेत्र खोले। यतीन के चेहरे की ओर देखकर किसी सुन्दर स्वप्न की तरह उसने उसे याद करने का प्रयत्न किया, किन्तु यतीन ने जैसे ही उसके ललाट पर हाथ रखकर हिलाते हुए कहा—"चुनिया।" वैसे ही उसकी बेहोशी की आखिरी खुमारी भी अकस्मात टूट गई। यतीन को उसने पहचान लिया और उसी के साथ उसकी दृष्टि पर किसी सुकुमार मोह का आवरण आ पड़ा। पहले कजरारे बादलों के समागम के साथ आषाढ़ के सुगम्भीर गगन में जैसी गहरी छाया अंकित हो जाती है, चुनिया की काली आंखों की वैसी ही सुदूर व्यापी सजल स्निग्धता घनीभूत हो गई।

स्नेह और करुण मिश्रित स्वर में यतीन ने कहा—"चुन्नी ! यह थोड़ा-सा दूध और पी लो।"

उसी क्षण चुनिया उठकर बैठ गई, फिर प्याले पर से यतीन के मुख की ओर दृष्टि रखे हुए धीरे-धीरे दूध का शेष भाग भी खत्म कर दिया।

अस्पताल का विशेष डॉक्टर यदि एक ही रोगी के सिरहाने बराबर बैठा रहे, तो काम भी नहीं चले और अच्छा भी प्रतीत नहीं होता। इसलिए दूसरी जगहों में भी अपना फ़र्ज़ निभाने के लिए यतीन जब उठा तो भय और निराशा से चुनिया की दोनों आंखें व्याकुल हो उठीं। यतीन ने उसका हाथ थामकर दिलासा देते हुए कहा—"मैं अभी वापस आता हूं चुन्नी। भय की कोई बात नहीं है।"

यतीन ने अस्पताल के अधिकारियों को सूचित किया, कि इस नई रोगिनी को प्लेग नहीं है। वह केवल क्षुधा से पीड़ित होने के कारण ही इतनी क्षीण हो गई है। यहां

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

प्लेग के अन्य रोगियों के साथ रखने से उस पर प्लेग के कीटाणु का आक्रमण हो सकता है।....इस प्रकार समझा-बुझा कर उसे वहां से दूसरे स्थान पर ले जाने के लिए यतीन ने विशेष तौर से इजाजत ले ली और अपने आवास-गृह में ले आया। फिर इस समाचार से सूचित करने के लिए उसने उसी दिन पटल के पास एक पत्र डाल दिया।

3

उस दिन संध्या को घर में रोगिनी और डॉक्टरी के सिवा कोई नहीं था। सिरहाने के पास रंगीन कागज के आवरण से घिरा हुआ मिट्टी के तेल का लैम्प धीमी रोशनी फैला रहा था। कॉर्नस पर रखी हुई टाइमपीस निस्तब्ध कमरे में टिक-टिक शब्द का सुन्दर राग अलाप रही थी।

यतीन ने चुनिया के ललाट पर हाथ फेरते हुए पूछा—"अब कैसा लगता है चुन्नी ?"

चुनिया ने इसका कोई उत्तर नहीं दिया; परन्तु यतीन का वह हाथ अपने क्षीण हाथों से ललाट पर ही दबा रखा।

यतीन ने पुनः पूछा—"अच्छा लगता है।"

चुनिया ने सुन्दर आंखों पर पलकों के तनिक कपाट बन्द करते हुए कहा—"हां।"

यतीन ने उस उंगली से संकेत करके पूछा—"चुन्नी, तुम्हारे गले में यह क्या है ?"

चुनिया ने शीघ्रता के साथ साड़ी का पल्लू खींचकर उसे ढकने का यत्न किया। यतीन ने देखा, उसके गले में मौलसिरी के फूलों का सूखा हुआ हार पड़ा है। टाइमपीस के टिक-टिक शब्द के बीच यतीन चुपचाप बैठा सोचने लगा। अपने हृदय की बात को छिपाने का यह प्रथम प्रयास है। चुनिया मानो पहले एक मृगछोना थी। मालूम नहीं किस घड़ी हृदय भार से आतुर हो यौवन की मादकता का रूप धारण कर बैठी ? किस धूप के उजाले में उसकी जवाला की तीक्ष्ण लपटों से चुनिया की समझ पर आच्छादित कुहरा हट गया। उसकी लज्जा, शंका, वेदना, सभी एकदम प्रकाशित हो उठे।

और इन्हीं विचारों में खोये चौकी पर बैठे-ही-बैठे, न जाने कब यतीन की पलकें नींद के बोझ से दब गईं। वह रात्रि के अन्तिम पहर में अचानक द्वार खुलने की आवाज से चौंककर उठ गया। उसकी आंखों ने देखा पटल और हरकुमार बाबू

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

बड़ा-सा बैंग लिए कमरे में दाखिल हो रहे हैं।

हरकुमार बाबू ने बैग को कमरे में रखकर और यतीन के पास पहुंच कहा—"तुम्हारा पत्र पाकर सवेरे ही चल देने का मैंने विचार किया था; लेकिन जब रात को सो रहा था तो करीब ग्यारह-बारह बजे पटल ने जगा कर कहा—"अजी, सुनते हो, कल सवेरे जाने पर चुनिया को नहीं देख पाएंगे। हमें इसी समय पहुचना होगा।" उसे मैं किसी प्रकार भी समझा नहीं पाया। तब चटपट एक गाड़ी भाड़े पर लेकर हम लोग उसी क्षण घर से निकले।"

पटल ने तभी अपने पति से कहा—"चलो, यतीन के बिछौने पर आप आराम करें।"

हरकुमार बाबू तनिक-सी आपत्ति का भान करते हुए यतीन के कमरे में जाकर लेट गए और फिर उन्हें पलक बन्द करते हुए तनिक भी देर नहीं लगी।

रोगिनी के कमरे में वापस आने पर पटल ने यतीन को एक कोने में बुलाकर पूछा—"कुछ आशा है।"

यतीन ने चुनिया की नाड़ी को टटोल सिर हिलाते हुए जताया—"नहीं।"

पटल ने चुनिया के निकट अपने को प्रगट किये बिना ही यतीन को फिर ओट में करके पूछा—"यतीन ! सच कहना तुम क्या चुनिया को नहीं चाहते ?" इस बार यतीन ने पटल के प्रश्न का उत्तर नहीं दिया। वह वहां से हटकर चुनिया के बिछौने के छोर पर बैठ गया। उसका हाथ अपने हाथों में धीरे से दबाता हुआ बोला—"चुन्नी ! चुन्नी !! चुन्नी !!!"

चुनिया ने आंखों पर से पलकों का आवरण हटाकर चेहरे पर शांत मधुर हंसी का आभास लाते हुए कहा—"क्या है ?"

यतीन आशीतीत स्वर में बोला—"चुन्नी ! अपना यह हार मेरे गले में पहना दो।"

वह निर्मिमेष एवं विमूढ़ नेत्रों से केवल यतीन के चेहरे की ओर ताकती रह गई।

यतीन ने फिर कहा—"अपना यह हार क्या मुझे नहीं पहनाओगी चुन्नी ?"

यतीन के निकट इस तनिक से दुलार का सहारा पाकर चुनिया के मन में पहले किए गए अनादर का थोड़ा-सा अभिमान जाग उठा, बोली—"इससे क्या होगा ?"

यतीन ने उसके दोनों हाथों को अपने हाथों में समेटते हुए कहा—"मैं तुम्हें प्यार करता हूं चुन्नी।"

यतीन के इस वाक्य को सुनकर पल भर के लिए चुनिया स्तब्ध रह गई। फिर उसके दोनों नेत्रों से अविरल खारा जल बहने लगा। यतीन बिछौने से उतरकर भूमि पर घुटने टेककर बठ गया और चुनिया के हाथों के पास उसने अपना सिर रख

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

दिया। चुन्नी ने अपने गले का हार उतार कर यतीन के गले में पहना दिया।

तब पटल ने चुनिया के पास आकर पुकारा—"चुनिया।"

स्वर को पहचानते ही चुनिया का कांतिहीन मुख चमक उठा, बोली—"क्या है, दीदी ?"

पटल उसके क्षीण हाथों को अपने हाथों में थामकर बोली—"अब तो तू मुझसे नाराज नहीं है बहिन।"

चुनिया ने स्निग्ध कोमल दृष्टि पटल के चेहरे पर फेंकते हुए कहा—"मैं नाराज कहां थी, दीदी ?"

पटल की ओर से कोई उत्तर नहीं मिला। वह मुड़कर यतीन से बोली—"यतीन ! तुम थोड़ी देर के लिए उधर वाले कमरे में जाकर बैठो।"

यतीन बिना किसी संकोच के चुपचाप चला गया। पटल ने उसके जाते ही बैग खोलकर उसमें से सारे आभूषण और वस्त्र निकाले। फिर रोगिनी को बिना हिलाये-डुलाये खूब सावधानी से उसके कमजोर हाथों में कुछ चूड़ियों को पिरोकर दो गंगन भी पहना दिए। उसके बाद आवाज दी—"यतीन !"

यतीन आ गया। तब उसे शैया पर बिठाकर पटल ने उसके हाथों में चुनिया का एक सोने का हार थमा दिया। यतीन ने धीरे-धीरे चुनिया का सिर ऊंचा करके हार उसके गले में पहना दिया।

उषा की लाली में जब सूर्य की प्रथम किरण चुनिया के चेहरे पर पड़ी, तब उसे देखने के लिए वह वहां नहीं थी। उसके अम्लान मुख की कांति देखकर ऐसा प्रतीत नहीं होता था, कि वह मरी पड़ी है। यही जान पड़ता था, मानो किसी अतलस्पर्शी सुखद स्वप्न में वह पूर्णरूप से लीन हो चुकी है ?

जब उसके शव को लेकर चलने का समय आया। तब पटल चुनिया की छाती पर पछाड़ खाकर गिर पड़ी और क्रन्दन स्वर में बोली—"बहिन ! तेरे भाग्य अच्छे थे जीवन की अपेक्षा तेरा मरण ही अधिक सुखद हुआ।" और चुनिया की शान्त-स्निग्ध मृत्यु छवि की ओर निहारते हुए यतीन के अन्तर में बारम्बार यही भाव उठने लगा—जिसका यह धन था, उसी ने ही वापस ले लिया; किन्तु उसने मुझे भी उससे वंचित नहीं रखा।

श्मशान घाट पर पहुंचकर शव जल उठा। शोकातुर अवस्था में यतीन ने अज्ञात प्रेम की सीमा का अन्त कर दिया।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

विदा

कन्या के पिता के लिए धैर्य धरना थोड़ा-बहुत सम्भव भी था; परन्तु वर के पिता पल भर के लिए भी सब्र करने को तैयार न थे। उन्होंने समझ लिया था कि कन्या के विवाह की आयु पार हो चुकी है; परन्तु किसी प्रकार कुछ दिन और भी पार हो गये तो इस चर्चा की भद्र या अभद्र किसी भी उपाय से दबा रखने की क्षमता भी समाप्त हो जायेगी ? कन्या को आयु अवैध गति से बढ़ रही थी, इसमें किसी को शंका करने की आवश्यकता पड़ी नहीं; किन्तु इससे भी बड़ी शंका इस बात की थी कि कन्या की तुलना में दहेज की रकम अब भी काफी अधिक थी। वर के पिता इसी हेतु इस प्रकार से जल्दी मचा रहे थे।

मैं ठहरा वर अपितु विवाह के विषय में मेरी राय से अवगत होना नितान्त व्यर्थ समझा गया। अपनी कर्त्तव्यपरायणता में मैंने भी किसी प्रकार की न्यूनता नहीं आने दी, यानी एम० ए० पास करके छात्रवृति का अधिकारी बन बैठा। परिणाम यह निकला कि मेरे सम्बन्घ में श्री प्रजापति के दोनों ही पक्ष, कन्या पक्ष और वर पक्ष बार-बार बेचैन होने लगे।

हमारी जन्म-भूमि में जो पुरुष एक बार विवाह कर लेता है, उसके मन में दूसरी बार विवाह करके रचनात्मक कार्यों में कोई जिज्ञासा या उद्वेग नहीं होता एक बार नर-मांस का स्वाद लेने पर उसके प्रति बाघ की जो मन की दशा होती है, नारी के विषय में बहुत कुछ वैसी ही हालत एक बार विवाह कर लेने वाले पुरुष के मन की भी होती है।

एक बार नारी का अभाव घटित हुआ, कि फिर सबसे पहला प्रयत्न उस अभाव को पूर्ण करने के लिए किया जाता है। ऐसा करते हुए इस बार उसका मन दुविधा में नहीं रहता, कि भावी पत्नी की आयु क्या है और कैसी है उसकी अवस्था ?

मैं देखता हूं कि सारी दुविधा और दुश्चिंता का ठेका आज कल के लड़कों के ही नाम छूटा है। लड़कों की ओर से बारम्बार विवाह का प्रस्ताव होने पर उनके पिता पक्ष के चांदी के समान श्वेत केश खिजाब की महिमा से बारम्बार श्याम-वर्ण को अपना लेते हैं और उधर बातचीत की तप्ताग्नि से ही लड़कों के श्याम केश, मारे चिन्ता, परेशानी के रात के कुछ घंटों में ही उठने का उपक्रम करते हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

आप विश्वास कीजिए, मेरे मन में ऐसा कोई विषय या उद्वेग का श्रीगणेश नहीं हुआ; अपितु विवाह के प्रस्ताव से मन मयूर बसन्त की दक्षिण पवन की शीतलता में नृत्य कर उठा। कौतूहल से उलझी हुई कल्पना की नई आई हुई कोंपलों के बीच मानों गुपचुप कानाफूसी होने लगी। जिस विद्यार्थी को एडमण्ड वर्क की फ्रांसीसी क्रान्ति की घोर टीकाओं के पांच-सात पोथे जबानी घोटने हों, उसके मन में इस जाति के भावों का उठना निरर्थक ही समझा जाएगा। यदि टेस्ट बुक कमेटी के द्वारा मेरे इस लेख के पास होने की लेशमात्र भी शंका होती, तो सम्भवतः ऐसा कहने से पूर्व ही सचेत हो जाता।

परन्तु मैं यह क्या ले बैठा ? क्या यह भी ऐसी कोई घटना है ? जिसे लेकर उपन्यास लिखने की योजना बना रहा हूं। मेरी योजना इतनी शीघ्र आरम्भ हो जाएगी, इसकी मैंने कल्पना भी नहीं की थी। प्रबन्ध आकांक्षा थी कि वेदना के जो कजरारे मेघ गत कई वर्षों से मन में छा रहे हैं उन्हें किसी बैशाखी संध्या की तूफानी वर्षा के वेग द्वारा बिल्कुल ही निष्प्राण कर दूंगा। पर न तो बच्चों की पाठ्य-पुस्तक ही लिखी गई, क्योंकि संस्कृत का व्याकरण मेरे मस्तिष्क से अछूता रह गया था और न काव्य ही रचा जा सका; क्योंकि मातृभाषा मेरे जीवन युग में ऐसी फली-फूली नहीं थी जिसके द्वारा मैं अपने हृदय के राज को बाहर प्रकट कर पाता। अतः देख रहा हूं कि मेरे अन्तर का संन्यासी आज अपने अट्टहास से अपना ही परिहास करने के लिए बैठा है। इसके अतिरिक्त वह करे भी तो क्या ? उसके अश्रु शुष्क जो हो गये हैं। जेठ की कड़कड़ाती धूप वस्तुतः जेठ की अश्रु शून्य क्रन्दन ही तो है।

जिसके साथ मेरा विवाह हुआ था, उसका वास्तविक नाम नहीं बताऊंगा, क्योंकि आज ब्रह्मांड के पुरातत्त्व-वेत्ताओं में उसके ऐतिहासिक नाम के विषय में विशेष विवाद होने की शंका नहीं है। जिस ताम्र-पत्र पर उसका नाम अंकित है, वह मेरा ही हृदय है। वह पट और पत्नी का नाम किसी युग में भी विलुप्त होगा, यह सोचना मेरी कल्पना से बाहर है। परन्तु जिस सुनहरी दुनिया में वह अक्षय बना रहा, वहां इतिहास के विद्वानों का आना-जाना नहीं होता है। इस पर भी मेरे इस लेख में उसका कुछ-न-कुछ नाम तो चाहिए ही, अच्छा तो समझ लीजिए शबनम उसका नाम था, क्योंकि शबनम में मुसकान और रुदन दोनों घुल-मिलकर एकाकार हो जाती है और भोर का संदेश प्रभात बेला तक आते ही चुक जाता है।

शबनम मुझसे केवल दो ही वर्ष छोटी थी। मेरा पिता गौरी दान से विमुख हो, सो यह बात नहीं थी। उनके पिता जी कट्टर समाज-विद्रोही थे ? देश में प्रचलित किसी भी धर्म के प्रति उनमें श्रद्धा न थी। उन्होंने खूब कसकर आंग्ल भाषा का

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अध्ययन किया था। मेरे पिता उग्र भाव से समाज के अनुयायी थे। जिसे अंगीकार करते हुए किंचित-मात्र भी अड़चन हो, ऐसी किसी भी वस्तु की हमारे समाज की विशाल ड्योढ़ी या अन्तःपुर में या पिछली राह पर झलक देख पाना सम्भव न था। इसका भी कारण यही कि उन्होंने भी कसकर आंगल भाषा का अध्ययन किया था। पितामह और पिता जी के विभिन्न मूर्तियां थीं। कोई भी सरल स्वभाव का नहीं। फिर भी बड़ी आयु वाली कन्या के साथ मेरा विवाह करना पिता ने इसलिए स्वीकार कर लिया कि उसकी इस बड़ी-सी आयु को दोनों मुट्ठियों में दहेज की रकम भी बहुत बड़ी थी। शबनम मेरे श्वसुर की एकमात्र कन्या थी। पिता जी को पूर्ण विश्वास था कि कन्या के पिता का सारा धन भावी दामाद भविष्य के उदर को परिपूर्ण करने वाला है। मेरे श्वसुर को किसी मत-मतान्तर का झमेला नहीं था ? पश्चिम की किसी पहाड़ी रियासत के नरेश के यहां किसी उच्च पद पर थे ? शबनम जब गोद में ही थी, तभी उसकी मां के प्यार का आंचल उस पर से उठ गया था। इस बात की ओर उसके पिता का ध्यान भी नहीं गया कि पुत्री प्रति वर्ष एक-एक वर्ष करके बड़ी होती जा रही है। वहां उनके समाज का कोई ऐसा ठेकेदार नहीं था, जो उनके नेत्रों में अंगुली डालकर इस सच्चाई को उनके हृदय में बिठा देता।

शबनम ने यथा समय उम्र के 16 वर्ष पार किए; किन्तु वे स्वाभाविक 16 वर्ष थे, सामाजिक नहीं। किसी ने उसे यौवन के प्रति सचेत होने का परामर्श नहीं दिया और न ही उसने स्वयं उस ओर देखा ? मैंने उन्नीसवें वर्ष में कॉलिज के तृतीय वर्ष में पग रखा। ठीक तभी मेरा विवाह हो गया। समाज या समाज के ठेकेदार के मत से वह आयु विवाह के उपयुक्त है या नहीं, इस विषय में दोनों पक्ष लड़-भिड़कर चाहे खून खराबा कर बैठे; किन्तु मैं तो निवेदन के साथ यही कहना चाहता हूं कि परीक्षा पास करने के हेतु यह आयु जिस प्रकार ठीक है, विवाह करने के लिए भी उससे किसी प्रकार कम नहीं। विवाह का सूत्रपात एक चित्र के द्वारा हुआ था। उस दिन मैं पढ़ाई-लिखाई में सिर गढ़ाये बैठा था कि मेरे साथ परिहास का सम्बन्ध रखने वाली किसी आत्मीयता ने मेरे सम्मुख टेबुल पर शबनम का चित्र लाकर रख दिया और कुछ पल शान्ति के साथ बिताकर कहा—"लो, अब झूठ-मूठ की पढ़ाई बन्द करके सचमुच की पढ़ाई करो। एकदम जी तोड़कर परिश्रम में लगाने वाली पढ़ाई।" चित्र किसी अनाड़ी चित्रकार द्वारा खींचा गया था। कन्या के मां नहीं थी, अतः उस दीर्घ श्याम केशों को बांध-संवार कर जूड़े में जरी गूंथकर कलकत्ते की प्रसिद्ध शाह या मालिक कम्पनी की भद्दी, तंग जैकेट पहनाकर दूसरे पक्ष के नेत्रों में धूल झोंकने का बरबस प्रयत्न नहीं किया गया था। केवल एक सरल भरा हुआ चेहरा था, मृगी-सी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

दो आंखें और सीधी-सादी एक साड़ी। तब भी पता नहीं क्यों कोई अपूर्व महिमा, सौन्दर्य उसे घेरे हुए था। किसी भी एक चौकोर चौकी पर वह बैठी हुई थी। पीछे आवरण के स्थान पर एक धारीदार शतरंजी झूल रही थी। पास में तनिक-सी ऊंची तिपाई पर ही फूलदानी में फूलों के सुन्दर गुलदस्ते दीख रहे थे। ईरानी कालीन पर साड़ी की तिरछी किनारी से किंचित अनाबद्ध को कोमल खाली पैर। चित्र की उस रूप-सुधा को जैसे ही मेरे मन के जादू का स्पर्श मिला कि वह मेरे अन्तरम में जाग उठी। वे दोनों कजरारी आंखें मेरे सारे चिन्तन को चीरकर मुझ पर जाने कैसे अनोखे भाव से आकर स्थिर हो गई और उस तिरछी किनार के निम्न भाग के दोनों अनावृत्त पगों ने मेरे अन्तर पद्मासन पर बरबस अपना घर बना लिया।

पत्रे की तिथियां आई-गई हो गईं। विवाह के दो-तीन लग्न भी बीत गये; किन्तु मेरे श्वसुर को छुट्टी मिलने का नाम भी नहीं। इधर कुछ मास से मेरे देखते-देखते एक अकाल मेरी इतनी बड़ी अविवाहित उम्र को फिजूल ही उन्नीसवें वर्ष से बीसवें वर्ष की ओर धकेलने का प्रयास कर रहा था। श्वसुर और उनके अधिकारियों पर मुझे खीझ होने लगी।

विवाह का दिन ठीक अकाल की पूर्व लग्न पर ही आकर पड़ा। उस दिन की शहनाई की हर तान आज मुझे स्मरण हो रही हैं। उस दिन के प्रति मुहूर्त को मैंने चेतनता के साथ स्पर्श किया था। मेरी यह उन्नीस वर्ष की आयु मेरे जीवन में सदैव रहे, मैं उसे कदापि नहीं भुला सकूंगा।

विवाह-मंडप में चहुओर कोलाहल-सा फैला हुआ था। उसी के बीच कन्या का कोमल हाथ मैंने अपने हाथों में पाया। मुझे स्पष्ट तरीके से याद है कि यही मेरे जीवन की एक परम आश्चर्यजनक घटना है। मेरे मन ने बारम्बार यही कहा—"इसे मैंने पाया है, हासिल किया है; किन्तु किसे ? यह तो दुर्लभ है। यह नारी है, इसके रहस्य का क्या कभी ओर-छोर पाया जा सकता है ?"

मेरे श्वसुर का नाम गौरी शंकर था। जिस हिमाचल पर वे उच्च पदाधिकारी थे, उसी हिमाचल के मानों गोती थे। उनके गम्भीरता के शिखर पर क्षेत्र में कोई प्रशान्त स्वच्छ हंसी उज्ज्वल होकर छाई हुई थी। उनके हृदय के स्नेह-स्रोत का संधा जिसने भी एक बार पा लिया, उसने फिर कभी उनसे सम्बन्ध-विच्छेद करने की चेष्टा नहीं की।

काम पर लौटने से पूर्व उन्होंने मुझे बुलाकर कहा—"बेटा, अपनी बच्ची को 17 वर्ष से जानता हूं और तुम्हें अभी कुछ दिनों से, इस पर भी सौंपा तुम्हारे ही हाथों में है। जो निधि आज तुम्हें मिली है, किसी दिन उसका मूल्य भी परख सको, इससे

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

बढ़कर आशीर्वाद मेरे पास नहीं।"

मेरे माता-पिता ने उन्हें बारम्बार आशा भरे शब्दों में कहा—"समधी जी ! कुछ चिन्ता न करना। तुम्हारी पुत्री जैसे पिता को छोड़कर आई है वैसे ही यहां माता-पिता दोनों पाये ऐसा ही समझिये।"

शबनम से विदा होते समय वे हंसकर बोले—"बिटिया चल दिया। इस बूढ़े पिता को छोड़ तेरा कौन अपना रहा है ? आज से यदि इसका कुछ भी गुम हो जाये, तो इसके लिए मुझे जिम्मेवार न ठहराना।" शबनम ने उत्तर दिया—"क्यों नहीं, यदि कभी इतनी-सी चीज भी गुम हो गई तो आपको सारी हानि भरनी पड़ेगी।"

अन्त में घर रहते जिन विषयों पर बहुधा ही झंझट खड़े हो जाते थे, उनसे उसने पिता को बार-बार सचेत कर दिया। भोजन के विषय में अनियम का उन्हें खासा अभ्यास था। कुछ विशेष प्रकार के अपथ्य भोजन पर उनकी विशेष रुचि थी। पिता को उन सारे प्रलोभनों से यथासम्भव दूर रखना बेटी का विशेष कर्त्तव्य था। इसी से वह पिता का हाथ पकड़ कर बोली– "बाबू जी ! क्या मेरी एक बात रखेंगे ?" पिता ने प्रफुल्लित मन से कहा—"मानव इसलिए बचपन देता है, कि एक दिन उसे भंग कर चैन की सांस ले सके। इससे बचपन न देना ही श्रेयस्कर है।"

फिर वह कुछ न बोली और पिता के चले जाने पर उसने कमरे के द्वार बन्द कर लिए इसके बाद की घटना का बखान अन्तर्यामी ही कर सकते हैं। पिता-पुत्री की अश्रुहीन विदाई का दृश्य पार्श्व के कक्ष की चिर-कौतूहली अंतःपुरिकाओं ने देखा, सुना और आलोचना की—"कैसी अजीब बात है भला ? रूखी-सूखी जमीन पर रहते-रहते इन लोगों का हृदय भी सूखकर कांटा हो गया है। माया-ममता का चिन्ह लेशमात्र भी नहीं रहा। राम ! राम ! राम !"

मेरे श्वसुर के मित्र बनमाली बाबू ने ही हमारी बातचीत पक्की की थी। वे हम लोगों के परिवार से भलीभांति परिचित थे। वे मेरे श्वसुर से बोले—"बेटी को छोड़कर तो तुम्हारा दुनिया में कोई नहीं है। यहीं इनके पास ही कोई मकान लेकर जिन्दगी के शेष दिन काट डालो।"

उत्तर मिला—"जब दान किया है, तो निःशेष करके ही दे डाला है। फिर लौट-लौटकर निहारने से उसकी पीड़ा बढ़ेगी। जिस अधिकार को एक बार त्याग चुका, उसे बार-बार बनाये रखने के प्रयत्न से बढ़कर विडम्बना और क्या होगी ?"

अन्त में मुझे एकान्त में ले जाकर किसी अपराधी की तरह सकुचाते हुए बोले—"बिटिया को पुस्तकें पढ़ने का बड़ा चाव है और लोगों को खिलाना-पिलाना उसे बहुत अच्छा लगता है। यदि बीच-बीच में तुम्हें रुपये-पैसे भेज दिया करूं, इससे

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

वे नाराज तो नहीं होंगे ?"

सुनकर मुझे तनिक आश्चर्य हुआ। कारण जीवन में कभी किसी भी ओर से धनराशि मिलने पर पिताजी नाराज हुए हों, उनका ऐसा बिगड़ा मिजाज तो मैंने कभी नहीं देखा ? जो हो, मेरे श्वसुर मानों मुझे घूंस दे रहे हों कुछ ऐसे ही भाव से मेरे हाथों में सौ रुपये का एक नोट थमा कर, वे वहां से चटपट चल दिए। मैंने देखा, इस बार जेब से रूमाल निकालने की बारी आ ही गई। स्तब्ध होकर मैं विचारों में खो गया। मैंने अनुभव किया कि ये लोग बिल्कुल ही अन्य जाति के मानव हैं।

अपने सहपाठियों में कितनों ही को तो विवाह करते हुए देखा है। विवाह मंत्रों के उच्चारण के साथ-ही-साथ स्त्री को एकबारगी कंठ के निम्न भागों में उतार लेते हैं। हजम करने के यंत्र तक पहुंचने पर थोड़ी देर के बाद वह पदार्थ अपने गुणों एवं अवगुणों को हल कर सकता है और इसके फलस्वरूप हृदय के भीतर चिन्ता बनकर हलचल भी आरम्भ हो सकती है। सो होती रहे; परन्तु निगलने के रास्ते में इससे कोई रुकावट नहीं पड़ती।

किन्तु मैंने विवाह-मंडप में ही समझ लिया था कि पाणिग्रहण के मंत्र द्वारा जिसे प्राप्त किया जाता है, उससे घर-गृहस्थी तो भलीभांति चल जाती है; परन्तु उसके हृदय को पूर्णरूपेण पाना पन्द्रह आना बाकी रह जाता है। मुझे सन्देह है कि विश्व के अधिकांश पुरुष पत्नी को ठीक-ठाक पाते हैं या उनको समझते हैं। वे स्त्री को ब्याह कर ले आते हैं, किन्तु उपलब्ध नहीं कर पाते और न कभी उन्हें इस बात का एहसास हो पाता है कि उन्होंने पाया कुछ भी नहीं। उनकी पत्नियां भी मृत्यु काल तक इस कटु सत्य से अवगत नहीं हो पातीं। लेकिन मैंने ऐसा अनुभव किया कि वह मेरी साधना की निधि है। वह अचल सम्पत्ति नहीं, सम्पदा है, अगाध रत्नराधि है।

शबनम, नहीं इस नाम से काम नहीं चलेगा। एक तो यह कि वह उसका वास्तविक नाम नहीं है और न यह उसका यथार्थ परिचय है। वह तो दिवाकर की तप्त रश्मि है, क्षय कालीन उषा की विदा बेला के अश्रुओं का बिन्दु नहीं। नाम को गोपनीय रखकर ही आखिर क्या होगा ? उसका वास्तविक नाम था....हेमन्ती।

मैंने देखा, सत्रह वर्ष की इस सुन्दरी पर यौवन का पूरा आलोक बिखरा हुआ है। तब भी इस अवस्था की गोद में भी उसे चेतनता नहीं मिली है। हिमाच्छादित शिखर पर भोर का उजाला तो झलक उठा है; किन्तु हिम अभी तक गल नहीं पाया है। कैसी निष्कलंक शुभ्र है वह, कैसी पवित्र की प्रतिमा है, यह मैं ही जानता हूं, मेरे मन में बराबर यह शंका बनी रहती थी इतनी पढ़ी शिक्षित लड़की का मन पता नहीं, क्योंकर पा सकूंगा ? किन्तु कुछ ही दिवसों के उपरान्त मैंने जान लिया कि

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

उसके मन की राह और शिक्षा की राह आपस में कहीं कटी ही नहीं है। कब उसके सरल-शुभ्र मन पर हल्की-सी रंगीनी छा गई नेत्र अलसतन्द्रा में झूम उठे और देह-मन मानो उत्सुक हो उठे, सो निश्चिन्ता के साथ कह देना मेरे लिए कठिन ही नहीं, अपितु असम्भव है ?

यह तो हुई एक पक्ष की बात; लेकिन अब दूसरा पक्ष भी है। वह और उसके विषय में पूर्णरूप से कहने का समय अब आ पहुंचा है ?

मेरे श्वसुर राज दरबार में उच्च पदाधिकारी थे। इसलिए उनकी कितनी धनराशि बैंक के खातों में है, इस सम्बन्ध में जनश्रुति ने बहुत तरह के अनुमान बिठाये थे। इनमें से किसी भी अनुमान की संख्या लाख के आंकड़ों से नीचे नहीं पड़ती थी। फलस्वरूप एक ओर पिता के प्रति सम्मान बढ़ता गया, तो दूसरी ओर इकलौती बेटी की ओर स्नेह। हमारी घर-गृहस्थी का काम-धंधा और तौर-तरीका जानने के लिए हेम खूब उत्सुकता दिखला रही थी। किन्तु मां ने उसे अगाध स्नेह दिखाने के अभिप्रायः से किसी काम में हाथ नहीं लगाने दिया ? यहां तक कि मायके से हेम के साथ जो पहाड़िन मेहरी आई थी, उसे उन्होंने वास्तव में अपने कक्ष में नहीं घुसने दिया, फिर भी उसकी जाति-पांति के बारे में किसी प्रकार का अपवाद नहीं किया ? वे डरती थीं कि विशेष छान-बीन करने पर कहीं कोई अरुचिकर सत्य न सुनना पड़े।

दिन इसी तरह कट जाते; किन्तु एक दिन पिता जी का मुंह घोर गम्भीर दिखाई दिया। बात यह थी कि मेरे श्वसुर ने मेरे विवाह में 15 सहस्र नकद और पांच सहस्र के आभूषण दिए थे। इधर पिता जी को किसी कृपापात्र दलाल से पता चला कि यह धनराशि कर्ज लेकर जुटायी गई थी; जिसका ब्याज भी कुछ मामूली न था और लाख रुपये की अफवाह तो बिल्कुल उड़ाई हुई थी।

वास्तव में मेरे विवाह के पूर्व श्वसुर की सम्पत्ति के परिणाम के विषय में पिता जी ने भी उनकी कोई आलोचना नहीं की थी। तब भी न जाने किस तर्क-पद्धति से आज उन्होंने यह बिल्कुल पक्का निश्चय कर लिया था कि उनसे समधी ने जान-बूझकर यह धोखा उनके साथ किया है। इसके अलावा पिता जी की यह धारणा थी कि मेरे श्वसुर राजा के मुख्य मंत्री या उसी समान किसी उच्च पद के अधिकारी हैं। पीछे पता चला कि वे वहां के शिक्षा विभाग के अध्यक्ष हैं। पिता जी ने टीका की—अर्थात् विद्यालय के मुख्याध्यापक, विश्व में जितने भी भद्र पद हैं, उनमें सबसे ऊंचा है। पिता जी ने बड़ी-बड़ी आशाएं कर रखी थीं, कि आज नहीं तो कल, श्वसुर के अवकाश प्राप्त करने पर राज मंत्री के पद पर वे स्वयं ही प्रतिष्ठित होंगे।

इन्हीं दिनों के कार्तिक मास में रामलीला के उपलक्ष्य में हमारा जन्म-भूमि का

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सारा परिवार कलकत्ते वाली हवेली में आ जुटा। वधू को देखते ही उनमें एक छोर से दूसरे छोर तक कानाफूसी की लहर दौड़ गई। क्रमशः अस्फुट हुई। दूर के नाते से सम्बन्धित नानी ने कहा—"आग लगे मेरे भाग्य को, नई बहू ने तो उम्र में मुझे भी हरा दिया।"

सुनकर नानी की समवयस्का बोल उठी—"अरे हमें न हरायेगी, तो हमारा बच्चा विदेश से बहू लाने ही क्यों जायेगा ?"

मां ने उग्रता के साथ उत्तर दिया—"भैया रे ! यह क्या बात हो रही है ? बहू ने अभी ग्यारह पार नहीं किए, यही अगले फाल्गुन में बारह में पांव धरेगी। पछहुआ देस में दाल-भात खा-खा कर बड़ी हुई है बेचारी, सो देह तनिक अधिक सम्भल गई है।"

वृद्धाओं ने शान्त अविश्वास के साथ उत्तर दिया—"सो बिटिया रानी, इतनी कमजोर तो हमारी निगाह अभी नहीं हुई है। हमारे ख्याल में तो लड़की वालों ने जरूर उम्र कुछ दबाकर बताई है।"

मां ने कहा—"हम लोगों ने तो जन्म-पत्री देखी है।"

"बात सच है, किन्तु जन्म-पत्री से ही तो प्रमाणित होता है कि बहू की उम्र सत्रह है।"

वृद्धाओं ने कहा—"सो जन्म-पत्री में क्या धोखा-धड़ी नहीं चलती ?" इस बात पर घोर वाद-विवाद छिड़ गया। यहां तक कि संघर्ष की नौबत आ गई। उसी क्षण वहां हेम आ पहुंची। उन दोनों वृद्धाओं में से एक ने उसी से पूछा—"बहू रानी ! तुम्हारी उमर क्या है, बताओ तो भला ?" मां ने आंखों से संकेत किया; परन्तु हेम उनका मतलब नहीं समझी, बोली—"सत्रह।" मां तिलमिला उठी। उसने उसी अवस्था में कहा—"तुम्हें मालूम नहीं है।" हेम विरोध का प्रदर्शन करती हुई बोली—"मुझे ठीक मालूम है। मेरी उम्र सत्रह है।"

वृद्धाओं ने गुपचुप एक-दूसरे के हाथ दबाये। बहू की मूर्खता पर खीझ कर मां बोली—"तुम्हें तो सब मालूम है। लेकिन तुम्हारे बाबू जी ने हम से खुद कहा है कि तुम्हारी उम्र ग्यारह है।"

सुनकर हेम चौंक उठी, बोली—"बाबू जी ने ! कभी नहीं।"

मां ने कहा—"तुमने तो चकित कर दिया है। समधीजी स्वयं मेरे सामने कह गये थे और बिटिया कहती है, कभी नहीं।" यह कहकर मां ने आंख से फिर संकेत किया। अब की बार हेम संकेत समझ गई; लेकिन उसने कंठ को और भी मजबूत करके कहा—"बाबू जी ! ऐसी बात कभी नहीं कह सकते।"

मां ने स्वर को धीमा करके कहा—"तू क्या मुझे झूठा ठहराना चाहती है ?"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हेम ने फिर वही दुहराया—"बाबू जी कभी झूठ नहीं बोलते।"

इसके बाद मां जितना भी अपवाद फैलाने लगी, उतनी ही कालिमा फैलकर सबको एकाकार लीपने-पोतने लगी। इतनी ही नहीं, मां ने नाराज होकर पिताजी के सम्मुख अपनी बहू की मूढ़ता और जिद्दीपन की शिकायत रखी। पिता जी ने उसी क्षण हेम को बुलाकर धमकाते हुए कहा, "इतनी बड़ी अविवाहिता कन्या की अवस्था सत्रह वर्ष की थी, वह कन्या के लिए कोई बड़प्पन की बात है, जो उसका ढिंढोरा पीटती फिरोगी ? हमारे घर में यह सब नहीं चलेगा, कहे देता हूं।"

हाय रे भाग्य, बहू रानी के प्रति पिता जी का यह मधु मिश्रित पंचम स्वर इस प्रकार उस्ताद बाजखां के घोर षडज तक कैसे उतर आया ?

हेम ने व्यथित होकर पूछा—"यदि कोई उम्र जानना चाहे तो क्या उत्तर दूं ?"

पिता जी बोले—"झूठ बोलने की आवश्यकता नहीं। कह दिया करो, मुझे नहीं पता, मेरी सास, मां जानती हैं।" इसके बाद झूठ किस तरह बताया जाता है, इसका सारा उपदेश सुनने के बाद, हेम कुछ इस तरह चुप हो गई कि पिता जी को यह समझना बाकी न रहा कि उसका सारा सदुपदेश बिल्कुल चिकने घड़े पर पानी की तरह पड़ा।

हेम की दुर्गति पर दुःख क्या प्रकट करूं, उसके समक्ष तो मेरा मस्तक ही नत हो गया। मैंने देखा शारदीया प्रभात के आकाश की तरह उसके नेत्रों की वह सरल उदार दृष्टि मानो किसी संशय की छाया से म्लान हो उठी ? भीत मृगी की तरह मानो उसने मेरे मुख की ओर देखा और सोचा, मैं कदाचित इन्हें नहीं पहचानता।

उस दिन मैं एक सुन्दर जिल्द वाली अंग्रेजी कविताओं की एक पुस्तक क्रय करके उसके लिए ले आया था। उसने पुस्तक को अपने सुन्दर हाथों से थामा, फिर धीमे-से गोद में रखकर एक बार भी खोलकर नहीं देखा। मैंने उसके दायें हाथ को अपने हाथों में लेकर कहा—"हेम, मुझ पर नाराज न होना, मैं तो तुम्हारे सत्य के बन्धन में बंधा हुआ हूं।"

सुनकर वह कुछ न बोली, केवल तनिक मुस्करा दी। सृष्टिकर्ता ने वैसी ही मुस्कान जिसे दी है उसे और भी कुछ कहने की आवश्यकता ही कहां ?

इधर पिता जी की आर्थिक तरक्की के कुछ दिनों बाद से सृष्टिकर्ता के उस अनुग्रह को चिर-स्थायी कर रखने के स्वार्थ से हमारे यहां नये उत्साह से पूजा-पाठ चल रहा था। आज तक कभी भी पूजा-अर्चना में बहू की कभी भी बुलाहट नहीं हुई। अचानक नई वधू को पूजा का थाल सजाने का आदेश मिला। वह बोली—"मां ! मुझे समझा दो, कैसे क्या करना होगा ?"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

प्रश्न कुछ ऐसा न था, जिसे सुनकर किसी के सिर पर आसमान टूट पड़ता, यह तो सब लोग भली प्रकार जानते थे कि मातृहीना हेम प्रवास में ही इतनी बड़ी हुई है। तब भी इस उद्देश्य का आशय तो केवल हेम को लज्जित करना ही था। सो सभी ने अपने गाल पर हथेली रखकर कहा—"हाय मैया, यह कैसी बात है ? आखिर किस नास्तिक के घर की बेटी है ? बहू घर की लक्ष्मी अब इस गृहस्थी से विदा होने ही वाली है ? देरी मत समझना" और इसी प्रसंग में हेम के पिता को लक्ष्य करके न जाने कितनी अकथनीय बातें की गईं ?

कटु आलोचना की हवा जब से चलनी आरम्भ हुई थी, तब से हेम आज तक बराबर चुप रहकर सब सहन करती आ रही थी। कभी पल भर के लिए भी उसने किसी के सामने अश्रु न बहाये ? परन्तु आज तो उसकी बड़ी-बड़ी आंखें को प्लावित करती हुई अश्रुओं की झड़ी लग गई। वह खड़ी होकर बोल उठी—"आपको मालूम है, वहां मेरे बाबू जी को सब लोग ऋषि कहते हैं।"

ऋषि मानते हैं, सुनकर उपस्थित लोगों ने पेट भर कर दिल के गुब्बारे निकाले। इस घटना के उपरान्त जब कभी उसके पिता का उल्लेख करना होता, तो सब लोग यही कहते, "तुम्हारे ऋषि बाबूजी।" इस बहू का सबसे मर्म का स्थान कौन-सा है ? इसे हमारे यहां सबने अच्छी प्रकार समझ लिया था। वास्तव में मेरे श्वसुर न ब्राह्मण थे और न ईसाई, और बहुत करके नास्तिक भी नहीं, पूजा-अर्चना की बात कभी उनके ध्यान में ही नहीं। बेटी को उन्होंने शिक्षित बनाने का प्रयत्न अवश्य किया था। कितने ही उपदेश भी दिये थे; किन्तु सृष्टिकर्ता के सम्बन्ध में कोई उपदेश नहीं दिया ? इसी बारे में पूछने पर उन्होंने इतना ही कहा—"जिस विषय को मैं स्वयं नहीं जानता उसे सिखलाना केवल कपट ही होगा।"

ससुराल में हेम की एक सचमुच की भक्तिन थी, मेरी छोटी भगिनी नारायणी, वह अपनी भाभी को बहुत स्नेह करती थी। उसके लिए उस बेचारी को काफी प्रताड़ना सहनी पड़ती थी। घर में हेम के अपमान की कहानी मुझे उसी से सुनने को मिलती थी। हेम के मुंह से कभी किसी दिन भी सुनने को नहीं मिला ? लज्जा का आवरण उसके अपने लिए नहीं था, अपितु मेरे लिए ही था। बाबूजी के पास से वह जो पाती वह मुझे पढ़ने के लिए दे देती। ये पत्र छोटे होने पर भी रस से भरपूर होते थे। वह स्वयं भी उनको जब कभी पत्र लिखती तो मुझे अवश्य दिखा देती। बाबूजी के साथ उसका जो नाता था, उसमें अपने साथ मुझे भी बराबर की भागी बनाये बिना उसका दाम्पत्य पूर्ण जो नहीं हो पाता। उसके इन पत्रों में ससुराल के सम्बन्ध में किसी प्रकार की शिकायत का आभास मात्र भी नहीं ? यदि होता, भावी आशंका की सम्भावना थी, कारण नारायणी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

से मैंने सुन लिया था कि जांच के लिए बीच में उसके पत्र गोपनीय रीति से खोल लिये जाते हैं। इन पत्रों में उसका कोई भी दोष सिद्ध न होने से ऊपर वालों का मन शान्त हो, सो बात नहीं; बल्कि आशा टूटने का दुःख ही सम्भवतः उन्हें ज्यादा टीसा करता था। इसलिए उन्होंने चिढ़ कर कहना शुरू कर दिया कि आखिर इतनी जल्दी-जल्दी पत्र डालने की ही भला कौन-सी जरूरत है ? मानो बाबा ही सब कुछ हैं। हम लोग क्या कोई नहीं ?" और इसी प्रकार की अनेक अरुचिकर बातों का तांता शुरू हो गया। मैंने क्षुब्ध होकर हेम से कहा—"तुम बाबू जी को पत्र लिखती हो, वह किसी और को न देकर मुझे ही दे दिया करो, कॉलिज जाते समय राह में छोड़ दिया करूंगा।"

चकित होकर हेम ने कहा—"क्यों ?"

मैंने संकोचवश कोई उत्तर नहीं दिया। किन्तु हवेली में सबने कहना आरम्भ कर दिया कि अब लड़के के सिर चढ़ना शुरू हुआ है। बी॰ए॰ की उपाधि अब ताक पर धरी रहेगी। आखिर इस बेचारे का भला दोष ही क्या है ?

सो तो है ही ! दोष किसी का है तो वह बेचारी हेम का। उसकी उम्र सत्रह वर्ष की है; वह उसका पहला दोष है। सृष्टिकर्ता का विधान ही ऐसा है, यह भी हेम का तीसरा दोष है। इसलिए तो मेरे हृदय के अणु-अणु में समस्त आकाश इस तरह की बांसुरी की तान साधे हुए है।

बी॰ए॰ की उपाधि को निर्विकार भाव से मैं चूल्हे में फूंक सकता था; किन्तु हेम के कल्याण के लिए मैंने प्रण किया कि मैं अवश्य उत्तीर्ण होऊंगा और अच्छे अंक से। दो कारणों से मुझे अपने प्रण को पूरा कर पाने का भरोसा था। एक तो हेम के अगाध स्नेह में ऐसा आकाशव्यापी विस्तार था कि वह मन को संकीर्ण, आसक्ति में फंसा कर नहीं रहती। उस स्नेह के आस-पास कोई खूब ही स्वास्थ्य-वर्द्धक वायु बहा करती थी। दूसरे परीक्षा की पुस्तकें कुछ ऐसी थीं; जिन्हें हेम के साथ-साथ पढ़ना असम्भव न था। सो मैं कमर कस कर परीक्षा पास करने के उद्योग में जुट गया।

एक दिन रविवार की दुपहरिया में बाहर के कमरे में बैठा हुआ मैं मार्टिन की आचारशास्त्रावली पुस्तक की खास-खास पंक्तियों के मध्य के पथ को चीरते हुए लाल पेन्सिल का हल चलाये जा रहा था कि अचानक सामने की ओर मेरी दृष्टि जा पहुंची। कमरे के सामने आंगन के उत्तर की ओर अन्तःपुर को जाने के लिए एक जीना था इसी बंद जीने में बाहर की तरफ सींकचेदार खिड़कियां थीं। मैंने देखा कि हमे उन्हीं में किसी एक खिड़की के पास पश्चिम की ओर निहारती हुई चुपचाप बैठी है। उस ओर मल्लिक की बगिया है जिसमें कचनार का पेड़ गुलाबी पुष्पों के भार को सम्भाले खड़ा हुआ है। इस भाषाहीन गहरी वेदना के रूप को आज तक इतने सुस्पष्ट भाव से मैंने

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

नहीं देखा था। खास कुछ भी नहीं, अपने कमरे में से मैं किंचित पीछे की और दीवार के सहारे टिके उसके सिर के भंगी भाव भली-भांति देख पा रहा था। मेरा अपना जीवन इस तरह लबालब भर गया था कि किसी प्रकार की भी कोई शून्यता मैंने आज तक देखी ही नहीं थी। आज अकस्मात अपने बिल्कुल ही पार्श्व में मैंने किसी बहुत निराशा का घना गढ़ा देखा था। इस तलहीन गर्त को मैं क्योंकर, कैसे पूरा कर सकूंगा ? मुझे तो जीवन में कुछ भी छोड़ना नहीं पड़ा। न घर, न द्वार और न आज तक किसी प्रकार का अभ्यास ही; लेकिन हेम को तो सभी कुछ छोड़कर और दूर चल कर मेरे पास आना पड़ा। इसका परिणाम कितना अधिक है, सो मैंने भली-भांति सोचा भी नहीं ? हमारे घर में अपमान के कांटों की सेज पर वह बैठी है। उसको हमने आपस में विभक्त कर लिया है। उस वेदना के आसव को हम दोनों ने एक साथ ही पिया था। इसलिए हम दोनों एक-दूसरे के निकट थे। परन्तु हिमाचल में पली हुई यह गिरि नन्दिनी सत्रह वर्ष की लम्बी अवधि तक अपने बाह्य और अन्तःजीवन में कैसी विशाल युक्ति के मध्य पली थी ? कैसे कठोर सत्य और उदार आलोक में उसकी छवि एवं प्रकृति इस प्रकार स्वच्छ और सबल हो चुकी है ? उस सारे वैभव से आज हेम का नाता किस प्रकार निष्ठुरता के साथ तोड़ दिया गया है, इस बात का, आज से पूर्व मैंने कभी अनुभव ही नहीं किया था ? कारण उस स्थान पर हेम के साथ मेरा आसन बराबरी का न था। वह तो अन्दर-ही-अन्दर पल-पल तिल-तिल करके मृतप्राय-सी होती जा रही थी। उसे मैं सब दे सकता था; किन्तु मुक्ति नहीं, मुक्ति मेरे अपने अन्तर में ही कहां है ? इसी हेतु कलकत्ता की इस संकरी गली में खिड़की के सींकचों के भीतर से मूक आकाश के साथ उसके मूक मन की बातचीत हुआ करती।

किसी दिन रात को उठकर मैंने देखा, वह बिछौने पर नहीं है। हाथों पर सिर को थाम कर तारों से भरपूर आकाश की ओर मुंह उठाये वह छत पर लेटी है।

मार्टिन का चरित्रता का बखान वहां पड़ा रह गया। मैं सोचने लगा कि मेरा कर्त्तव्य क्या है ? बाल्यकाल से ही पिता जी के साथ मेरे सम्बन्ध में मेरे संकोच की सीमा न थी। समक्ष होकर कभी उनसे किसी वस्तु के लिए प्रार्थना करने की न तो मेरी आदत ही थी और न साहस ही; किन्तु आज मुझसे न रहा गया। लाज और संकोच को ताक पर धरकर मैं उनसे कह ही बैठा—"उसकी तबियत आजकल कुछ अच्छी नहीं है, सो एक बार बाबूजी के यहां भेज देना ही अच्छा होगा।"

सुनकर पिता जी चकित रह गये। उनके मन में इस बात का तनिक भी संदेह न रहा कि हेम ने ही मुझ में इस अभूतपूर्व साहस का बीजारोपण किया है और अच्छी प्रकार से सिखा-पढ़ा कर यहां भेजा है। दे तत्काल ही उठकर अन्तःपुर में गए और

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हेम से पूछा—"बहू ! तुम्हें क्या नई बीमारी है, बताना तो भला ?"

हेम ने सिर झुकाकर उत्तर दिया—"कहां, बीमारी तो कुछ भी नहीं है।"

पिता ने सोचा, उत्तर तेज दिखाने के लिए है। किन्तु हेम जो प्रतिदिन सूखती जा रही थी, सो नित्यप्रति रहने के कारण हम लोग समझ नहीं पाते थे। एक दिन बनमाली बाबू ने उसे देखा तो चौंक पड़े। वे बोले—"ऐं, यह क्या ? तेरा मुख ऐसा कैसा हो गया है हेम ? बीमार तो नहीं हो ?"

हेम ने कहा—"नहीं।"

परन्तु इस घटना के इस दिन बाद ही अकस्मात मेरे श्वसुर आ पहुंचे। अवश्य ही बनमाली बाबू ने हेम की तबियत की बात लिखी होगी ?

विवाह के उपरान्त पिता से विदा लेते हुए हेम ने अपने अश्रु रोक लिये थे; किन्तु आज जैसे ही उन्होंने उसकी ठोड़ी छूकर मुंह ऊपर को उठाया तो अश्रुओं का बांध टूट गया। उसकी भीगी पलकों ने सब कुछ बता दिया। वह बाबू जी को मुख से आधी बात भी न कह सकी। वे इतना भी न पूछ पाये कि तू कैसी है ? बेटी के क्षीण गात, म्लान मुख और पलकों को देखते ही उनकी छाती टूक-टूक हो गई।

हेम बाबू जी का हाथ पकड़ कर उन्हें शयन-कक्ष में ले गई। कितनी बातें तो पूछने की हैं, बाबू जी की तबीयत भी तो ठीक नहीं दिखाई देती।

हेम बाबू जी के साथ मायके जाने के लिए उद्यत हो गई। बनमाली बाबू ने भी समधी जी से इस बात का संकेत किया। लेकिन अन्ततः बात पिता जी की ही रही और उसके आगे हेम की आकांक्षा कुचल दी गई।

बाप-बेटी को विदा करने की बेला फिर एक बार आ पहुंची। बेटी ने नीरव और शुष्क मुस्कान को पीले मुख पर डालते हुए कहा—"बाबू जी ! यदि फिर कभी आपने मेरे लिए पागलों की भांति बेतहाशा दौड़ते हुए इस हवेली में कदम रखा तो मैं दरवाजा बन्द कर लूंगी।"

बाबू जी ने उसी मुद्रा में उत्तर दिया—"बेटी ! भाग्य में फिर आना लिखा तो साथ में सेंध लगाने के औजार भी लेता आऊंगा।"

इसके बाद हेम के मुख की वह मुस्कान फिर कभी देखने को नहीं मिली।

फिर क्या हुआ सो मुझसे कहा नहीं जायेगा।

सुनता हूं, मां फिर उपयुक्त वधू की खोज में है। सम्भव है किसी दिन मां के अनुरोध की अवहेलना मुझसे न हो सके। यही मुमकिन है; क्योंकि खैर छोड़िये इन भेद भरी बातों को।

●

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

काबुलीवाला

मेरी पांच वर्ष की छोटी लड़की मिनी से पल भर भी बात किए बिना नहीं रहा जाता। दुनिया में आने के बाद भाषा सीखने में उसने सिर्फ एक ही वर्ष लगाया होगा। उसके बाद से जितनी देर तक सो नहीं पाती है, उस समय का एक पल भी वह चुप्पी में नहीं खोती। उसकी माता बहुधा डांट-फटकारकर उसकी चलती हुई जुबान बन्द कर देती है; किन्तु मुझसे ऐसा नहीं होता, मिनी का मौन मुझे ऐसा अस्वाभाविक-सा प्रतीत होता है, कि मुझसे वह अधिक देर तक सहा नहीं जाता और यही कारण है कि मेरे साथ उसके भावों का आदान-प्रदान कुछ अधिक उत्साह के साथ होता रहता है।

सबेरे मैंने अपने उपन्यास के सत्रहवें अध्याय में हाथ लगाया ही था कि इतने में मिनी ने आकर कहना आरम्भ कर दिया—"बाबू जी ! रामदयाल दरबान कल 'काक' को कौआ कहता था। वह कुछ जानता ही नहीं, न बाबू जी ?"

विश्व की भाषाओं की विभिन्नता के विषय में मेरे कुछ बताने से पहले ही उसने दूसरा प्रसंग छेड़ दिया—"बाबू जी ! भोला कहता था आकाश मुंह से पानी फेंकता है, इसी से बरसा होती है। अच्छा बाबू जी, भोला झूठ-मूठ कहता है न ? खाली बक-बक किया करता है, दिन-रात बकता रहता है।"

इस विषय में मेरी राय की तनिक भी राह न देख करके, चट से धीमे स्वर में एक जटिल प्रश्न कर बैठी, बाबू जी, मां तुम्हारी कौन लगती है ?"

मन-ही-मन में मैंने कहा साली और फिर बोला—"मिनी, तू जा, भोला के साथ खेल, मुझे अभी काम है, अच्छा।"

तब उसने मेरी मेज के पार्श्व में पैरों के पास बैठकर अपने दोनों घुटने और हाथों को हिला-हिलाकर बड़ी शीघ्रता से मुंह चलाकर 'अटकन-बटकन दही चटाके' कहना आरम्भ कर दिया। जबकि मेरे उपन्यास के अध्याय में प्रतापसिंह उस समय कंचन माला को लेकर रात्रि के प्रगाढ़ अन्धकार में बन्दीगृह के ऊंचे झरोखे से नीचे कलकल करती हुई सरिता में कूद रहे थे।

मेरा घर सड़क के किनारे पर था, सहसा मिनी अपने अटकन-बटकन को छोड़कर कमरे की खिड़की के पास दौड़ गई, और जोर-जोर से चिल्लाने लगी,

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

"काबुल वाला, ओ काबुल बाला।"

मैले-कुचैले ढीले कपड़े पहने, सिर पर कुलाह रखे, उस पर साफा बांधे कन्धे पर सूखे फलों की मैली झोली लटकाये, हाथ में चमन के अंगूरों की कुछ पिटारियां लिये, एक लम्बा-तगड़ा-सा काबुली मन्द चाल से सड़क पर जा रहा था। उसे देखकर मेरी छोटी बेटी के हृदय में कैसे भाव उदय हुए वह बताना असम्भव है। उसने जोरों से पुकारना शुरू किया। मैंने सोचा, अभी झोली कंधे पर डाले, सर पर एक मुसीबत आ खड़ी होगी और मेरा सत्रहवां अध्याय आज अधूरा रह जायेगा।

किन्तु मिनी के चिल्लाने पर ज्यों ही काबुली ने हंसते हुए उसकी ओर मुंह फेरा और घर की ओर बढ़ने लगा; त्यों ही मिनी भय खाकर भीतर भाग गई। फिर उसका पता ही नहीं लगा कि कहां छिप गई ? उसके छोटे से मन में वह अन्धविश्वास बैठ गया था कि उस मैली-कुचैली झोली के अन्दर ढूंढ़ने पर उस जैसी और भी जीती-जागती बच्ची निकल सकती हैं।

इधर काबुली ने आकर मुसकराते हुए मुझे हाथ उठाकर अभिवादन किया और खड़ा हो गया। मैंने सोचा, वास्तव में प्रतापसिंह और कंचन माला की दशा अत्यन्त संकटापन्न है, फिर भी घर में बुलाकर इससे कुछ न खरीदना अच्छा न होगा।

कुछ सौदा खरीदा गया। उसके बाद मैं उससे इधर-उधर की बातें करने लगा। रहमत, रूस, अंग्रेज, सीमान्त रक्षा के बारे में गप-शप होने लगी।

अन्त में उठकर जाते हुए उसने अपनी मिली-जुली भाषा में पूछा—"बाबू जी, आपकी बच्ची कहां गई ?"

मैंने मिनी के मन से व्यर्थ का भय दूर करने के अभिप्राय से उसे भीतर से बुलवा लिया। वह मुझसे बिलकुल लगकर काबुली के मुख और झोली की ओर सन्देहात्मक दृष्टि डालती हुई खड़ी रही। काबुली ने झोली में से किसमिस और खुबानी निकालकर देनी चाहीं, पर उसने न लीं, और दुगुने सन्देह के साथ मेरे घुटनों से लिपट गई। उसका पहला परिचय इस प्रकार हुआ।

इस घटना के कुछ दिन बाद एक दिन सवेरे मैं किसी आवश्यक कार्यवश बाहर जा रहा था ? देखूं तो मेरी बिटिया दरवाजे के पास बैंच पर बैठी हुई काबुली से हंस-हंसकर बातें कर रही है और काबुली उसके पैरों के समीप बैठा-बैठा मुसकराता हुआ, उन्हें ध्यान से सुन रहा है और बीच-बीच में अपनी राय मिली-जुली भाषा में व्यक्त करता जाता है। मिनी को अपने पांच वर्ष के जीवन में, बाबूजी के सिवा, ऐसा धैर्य वाला श्रोता शायद ही कभी मिला हो। देखा तो, उसका फिराक का अग्रभाग बादाम-किसमिस से भरा हुआ है। मैंने काबुली से कहा—"इसे यह सब क्यों

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

दे दिया ? अब कभी मत देना ?" कहकर कुर्ते की जेब में से एक अठन्नी निकालकर उसे दी। उसने बिना किसी हिचक के अठन्नी लेकर अपनी झोली में रख ली ?

कुछ देर बाद, घर लौटकर देखता हूं तो उस अठन्नी ने बड़ा भारी उपद्रव खड़ा कर दिया है।

मिनी की मां एक सफेद चमकीला गोलाकार पदार्थ हाथ में लिए डांट-डपटकर मिनी से पूछ रही थी—"तूने यह अठन्नी पाई कहां से, बता ?"

मिनी ने कहा—"काबुल वाले ने दी है।"

"काबुल वाले से तूने अठन्नी ली कैसे, बता ?"

मिनी ने रोने का उपक्रम करते हुए कहा—"मैंने मांगी नहीं थी, उसने आप ही दी है।"

मैंने जाकर मिनी की उस अकस्मात मुसीबत से रक्षा की, और उसे बाहर ले आया।

मालूम हुआ कि काबुली के साथ मिनी की यह दूसरी ही भेंट थी, सो बात नहीं। इस दौरान में वह रोज आता रहा है और पिस्ता-बादाम की रिश्वत दे-देकर मिनी के छोटे से हृदय पर बहुत अधिकार कर लिया है।

देखा कि इस नई मित्रता में बंधी हुई बातें और हंसी ही प्रचलित है जैसे मेरी बिटिया, रहमत को देखते ही, हंसती हुई पूछती—"काबुल वाला ओ काबुल वाला, तुम्हारी झोली के भीतर क्या है ? काबुली जिसका नाम रहमत था, एक अनावश्यक चन्द्र-बिन्दु जोड़ कर मुसकराता हुआ उत्तर देता—"हां बिटिया उसके परिहास का रहस्य क्या है, यह तो नहीं कहा जा सकता; फिर भी इन नये मित्रों को इससे तनिक विशेष खेल-सा प्रतीत होता है और जोड़ के प्रभात में एक सयाने और एक बच्ची की सरल हंसी सुनकर मुझे भी बड़ा अच्छा लगता।

उन दोनों मित्रों में और भी एक-आध बात प्रचलित थी। रहमत मिनी से कहता—"तुम ससुराल कभी नहीं जाना, अच्छा ?"

हमारे देश की लड़कियां जन्म से ही 'ससुराल' शब्द से परिचित रहती हैं; किन्तु हम लोग तनिक कुछ नई रोशनी के होने के कारण तनिक-सी बच्ची को ससुराल के विषय में विशेष ज्ञानी नहीं बना सके थे, अतः रहमत का अनुरोध वह स्पष्ट रूप से नहीं समझ पाती थी; इस पर भी किसी बात का उत्तर दिये बिना चुप रहना उसके स्वभाव के बिल्कुल ही विरुद्ध था। उल्टे वह रहमत से ही पूछती—"तुम ससुराल जाओगे ?"

रहमत काल्पनिक श्वसुर के लिए अपना जबरदस्त घूंसा तानकर कहता—"हम

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

ससुर को मारेगा।''

सुनकर मिनी 'ससुर' नामक किसी अनजाने जीव की दुरावस्था की कल्पना करके खूब हंसती।

देखते-देखते जाड़े की सुहावनी ऋतु आ गई। पूर्व युग में इसी समय राजा लोग दिग्विजय के लिए कूच करते थे। मैं कलकत्ता छोड़ कर कभी कहीं नहीं गया, शायद इसीलिए मेरा मन ब्रह्माण्ड में घूमा करता है। यानी, मैं अपने घर में ही चिर प्रवासी हूं, बाहरी ब्रह्माण्ड के लिए मेरा मन सर्वदा आतुर रहता है। किसी विदेश का नाम आगे आते ही मेरा मन वहीं की उड़ान लगाने लगता है। इसी प्रकार किसी विदेशी को देखते ही तत्काल मेरा मन सरिता-पर्वत-बीहड़ वन के बीच में एक कुटीर का दृश्य देखने लगता है और एक उल्लासपूर्ण स्वतंत्र जीवन-यात्रा की बात कल्पना में जाग उठती है।

इधर देखा तो मैं ऐसी प्रकृति का प्राणी हूं, जिसका अपना घर छोड़ कर बाहर निकलने में सिर कटता है। यही कारण है कि सवेरे के समय अपने छोटे से कमरे में मेज के सामने बैठकर उस काबुली से गप-शप लड़ा कर बहुत कुछ भ्रमण का काम निकाल लिया करता हूं। मेरे सामने काबुल का पूरा चित्र खिंच जाता। दोनों ओर ऊबड़-खाबड़, लाल-लाल ऊंचे दुर्गम पर्वत हैं और रेगिस्तानी मार्ग, उन पर लदे हुए ऊंटों की कतार जा रही है। ऊंचे-ऊंचे साफे बांधे हुए सौदागर और यात्री कुछ ऊंट की सवारी पर हैं तो कुछ पैदल ही जा रहे हैं। किन्हीं के हाथों में बरछा है, तो कोई बाबा आदम के जमाने की पुरानी बन्दूक थामे हुए है। बादलों की भयानक गर्जन के स्वर में काबुली लोग अपनी मिली-जुली भाषा में अपने देश की बातें कर रहे हैं।

मिनी की मां बड़ी वहमी तबीयत की है। राह में किसी प्रकार का शोर-गुल हुआ नहीं कि उसने समझ लिया कि संसार भर के सारे मस्त शराबी हमारे ही घर की ओर दौड़े आ रहे हैं ? उसके विचारों में यह दुनिया इस छोर से उस छोर तक चोर-डकैत, मस्त शराबी, सांप, बाघ, रोगों, मलेरिया, तिलचट्टे और अंग्रेजों से भरी पड़ी है। इतने दिन हुए इस दुनिया में हरते हुए भी उसके मन का यह रोग दूर नहीं हुआ।

रहमत काबुली की ओर से भी वह पूरी तरह निश्चिंत नहीं थी। उस पर विशेष नजर रखने के लिए मुझसे बार-बार अनुरोध करती रहती। जब मैं उसके शक को परिहास के आवरण से ढकना चाहता तो मुझसे एक साथ कई प्रश्न पूछ बैठती—''क्या कभी किसी का लड़का नहीं चुराया गया ? क्या काबुल में गुलाम नहीं बिकते ? क्या

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

एक लम्बे-तगड़े काबुली के लिए एक छोटे बच्चे को उठा ले जाना असम्भव है ?" इत्यादि।

मुझे मानना पड़ता कि यह बात नितान्त असम्भव हो सो बात नहीं पर भरोसे के काबिल नहीं। भरोसा करने की शक्ति सब में समान नहीं होती, अतः मिनी की मां के मन में भय ही रह गया लेकिन केवल इसी लिए बिना किसी दोष के रहमत को अपने घर में आने से मना न कर सका।

हर वर्ष रहमत माघ मास में लगभग अपने देश लौट जाता है। इस समय वह अपने व्यापारियों से रुपया-पैसा वसूल करने में तल्लीन रहता है। उसे घर-घर, दुकान-दुकान घूमना पड़ता है, लेकिन फिर भी मिनी से उसकी भेंट एक बार अवश्य हो जाती है। देखने में तो ऐसा प्रतीत होता है कि दोनों के मध्य किसी षड्यंत्र का श्रीगणेश हो रहा हो। जिस दिन वह सवेरे नहीं आ पाता, उसे दिन देखू तो वह संध्या को हाजिर है। अन्धेरे में घर के कोने में उस ढीले-ढीले जामा-पाजामा पहने, झोली वाले लम्बे-तगड़े आदमी को देखकर सचमुच ही मन में अचानक भय-सा पैदा हो जाता है।

लेकिन, जब देखता हूं कि मिनी 'ओ काबुलवाले' पुकारती हुई हंसती-हंसती दौड़ी आती है और दो भिन्न-भिन्न आयु के असम मित्रों में वही पुराना हास-परिहास चलने लगता है, तब मेरा सारा हृदय खुशी से नाच उठता है।

एक दिन सवेरे मैं अपने छोटे कमरे में बैठा हुआ नई पुस्तक के प्रूफ देख रहा था। जाड़ा, विदा होने से पूर्व, आज दो-तीन दिन खूब जोरों से अपना प्रकोप दिखा रहा है। जिधर देखो, उधर उस जाड़े की ही चर्चा है। ऐसे जाड़े-पाले में खिड़की में से सवेरे की धूप मेज के नीचे मेरे पैरों पर आ पड़ी। उसकी गर्मी मुझे अच्छी प्रतीत होने लगी। लगभग आठ बजे का समय होगा। सिर से मफलर लपेटे ऊषा चरण सवेरे की सैर करके घर की ओर लौट रहे थे। ठीक इस समय राह में एक बड़े जोर का शोर सुनाई दिया।

देखूं तो अपने उस रहमत को दो सिपाही बांधे लिये जा रहे हैं। उनके पीछे बहुत से तमाशाही बच्चों का झुंड चला आ रहा है। रहमत के ढीले-ढाले कुरते पर खून के दाग हैं और एक सिपाही के हाथ में खून से लथपथ छुरा। मैंने द्वार से बाहर निकलकर सिपाही को रोक लिया, पूछा—"क्या बात है ?"

कुछ सिपाही से और कुछ रहमत से सुना कि हमारे एक पड़ोसी ने रहमत से रामपुरी चादर खरीदी थी। उसके कुछ रुपये उसकी ओर बाकी थे, जिन्हें देने से उसने साफ इन्कार कर दिया। बस इसी पर दोनों में बात बढ़ गई और रहमत ने

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

छुरा निकालकर घोंप दिया।

रहमत उस झूठे बेईमान आदमी के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार के अपशब्द सुना रहा था। इतने में "काबुल वाला ! ओ काबुल वाला !" पुकारती हुई मिनी घर से निकल आई।

रहमत का चेहरा क्षण-भर में कौतुक हास्य से चमक उठा। उसके कंधे पर आज झोली नहीं थी। अतः झोली के बारे में दोनों मित्रों की अभ्यस्त आलोचना न चल सकी। मिनी ने आते के साथ ही उससे पूछा—"तुम ससुराल जाओगे।"

रहमत ने प्रफुल्लित मन से कहा—"हां, वहीं तो जा रहा हूं।"

रहमत ताड़ गया कि उसका यह जवाब मिनी के चेहरे पर हंसी न ला सकेगा और तब उसने हाथ दिखाकर कहा—"ससुर को मारता, पर क्या करूं, हाथ बंधे हुए हैं।"

छुरा चलाने के जुर्म में रहमत को कई वर्ष का कारावास मिला।

रहमत का ध्यान धीरे-धीरे मन से बिल्कुल उतर गया। हम लोग अब अपने घर में बैठकर सदा के अभ्यस्त होने के कारण, नित्य के काम-धन्धों में उलझे हुए दिन बिता रहे थे। तब एक स्वाधीन पर्वतों पर घूमने वाला इन्सान कारागार की प्राचीरों के अन्दर कैसे वर्ष पर वर्ष काट रहा होगा, यह बात हमारे मन में कभी उठी ही नहीं।

और चंचल मिनी का आचरण तो और भी लज्जाप्रद था। यह बात उसके पिता को भी माननी पड़ेगी। उसने सहज ही अपने पुराने मित्र को भूलकर पहले तो नबी सईस के साथ मित्रता जोड़ी, फिर क्रमशः जैसे-जैसे उसकी वयोवृद्धि होने लगी वैसे-वैसे सखा के बदले एक के बाद एक उसकी सखियां जुटने लगीं और तो क्या, अब वह अपने बाबूजी के लिखने के कमरे में भी दिखाई नहीं देती। मेरा तो एक तरह से उसके साथ नाता ही टूट गया है।

कितने ही वर्ष बीत गये ? वर्षों बाद आज फिर एक शरद् ऋतु आई है। मिनी की सगाई की बात पक्की हो गई। पूजा की छुट्टियों में उसका विवाह हो जायेगा। कैलाशवासिनी के साथ-साथ अबकी बार हमारे घर की आनन्दमयी मिनी भी मां-बाप के घर में अन्धेरा करके ससुराल चली जायेगी।

सवेरे दिवाकर बड़ी सज-धज के साथ निकले। वर्षों के बाद शरद्-ऋतु की यह नई धवल धूप सोने में सुहागे का क़ाम दे रही है। कलकत्ता की संकरी गलियों में परस्पर सटे हुए पुराने लोना लगे गन्दे घरों के ऊपर भी इस धूप की आभा ने एक प्रकार का अनोखा सौन्दर्य बिखेर दिया है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हमारे घर पर दिवाकर के आगमन से पूर्व ही शहनाई बज रही है। मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा है कि जैसे यह मेरे हृदय की धड़कनों में से रो-रोकर बज रही हो। उसकी करुण भैरवी रागिनी मानो मेरी विच्छेद पीड़ा को जाड़े की धूप के साथ सारे ब्रह्माण्ड में फैला रही है। मेरी मिनी का आज विवाह है।

सवेरे से घर बवंडर बना हुआ है। हर समय आने-जाने वालों का तांता बंधा हुआ है। आंगन में बांसों का मंडप बनाया जा रहा है। हरेक कमरे और बरामदे में झाड़-फानूस लटकाये जा रहे हैं, और उनकी टक-टक की आवाज मेरे कमरे में आ रही है। 'चलो रे', 'जल्दी करो', 'इधर आओ' की तो कोई गिनती ही नहीं है।

मैं अपने लिखने-पढ़ने के कमरे में बैठा हुआ हिसाब लिख रहा था। इतने में रहमत आया और अभिवादन करके खड़ा हो गया।

पहले तो मैं उसे पहचान न सका। उसके पास न तो झोली थी और न पहले जैसे लम्बे-लम्बे बाल और न चेहरे पर पहले जैसी दिव्य ज्योति ही थी। अन्त में उसकी मुसकान देखकर पहचान सका कि वह रहमत है।

मैंने पूछा—"क्यों रहमत, कब आये ?"

उसने कहा—"कल शाम को जेल से छूटा हूं।"

सुनते ही उसके शब्द मेरे कानों में खट से बज उठे। किसी खूनी को मैंने कभी आंखों से नहीं देखा था, उसे देखकर मेरा सारा मन एकाएक सिकुड़-सा गया ? मेरी यही इच्छा होने लगी कि आज के इस शुभ दिन में वह इंसान यहां से टल जाये तो अच्छा हो।

मैंने उससे कहा—"आज हमारे घर में कुछ आवश्यक काम है, सो आज मैं उसमें लगा हुआ हूं। आज तुम जाओ, फिर आना।"

मेरी बात सुनकर वह उसी क्षण जाने को तैयार हो गया। पर द्वार के पास आकर कुछ इधर-उधर देखकर बोला—"क्या, बच्ची को तनिक नहीं देख सकता ?"

शायद उसे यही विश्वास था कि मिनी अब तक वैसी ही बच्ची बनी है। उसने सोचा हो कि मिनी अब भी पहले की तरह 'काबुल वाला, ओ काबुल वाला' पुकारती हुई दौड़ी चली आयेगी। उन दोनों के पहले हास-परिहास में किसी प्रकार की रुकावट न होगी ? यहां तक कि पहले की मित्रता की याद करके वह एक पेटी अंगूर और एक कागज के दोने में थोड़ी-सी किसमिस और बादाम, शायद अपने देश के किसी आदमी से मांग-तांगकर लेता आया था ? उसकी पहले की मैली-कुचैली झोली आज उसके पास न थी।

मैंने कहा—"आज घर में बहुत काम है। सो किसी से भेंट न हो सकेगी ?"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मेरा उत्तर सुनकर वह कुछ उदास-सा हो गया। उसी मुद्रा में उसने एक बार मेरे मुख की ओर स्थिर दृष्टि से देखा। फिर अभिवादन करके दरवाजे के बाहर निकल गया।

मेरे हृदय में न जाने कैसी एक वेदना-सी उठी। मैं सोच ही रहा था कि उसे बुलाऊं, इतने में देखा तो वह स्वयं ही आ रहा है।

वह पास आकर बोला—"ये अंगूर और कुछ किसमिस, बादाम बच्ची के लिए लाया था, उसको दे दीजिएगा।"

मैंने उसके हाथ से सामान लेकर पैसे देने चाहे, लेकिन उसने मेरे हाथ को थामते हुए कहा—"आपकी बहुत मेहरबानी है बाबू साहब, हमेशा याद रहेगी, पैसा रहने दीजिए।" तनिक रुककर फिर बोला—"बाबू साहब ! आपकी जैसी मेरी भी देश में एक बच्ची है। मैं उसकी याद कर-कर आपकी बच्ची के लिए थोड़ी-सी मेवा हाथ में ले आया करता हूं। मैं यह सौदा बेचने नहीं आता।"

कहते हुए उसने ढीले-ढाले कुरते के अन्दर हाथ डालकर छाती के पास से एक मैला-कुचैला मुड़ा हुआ कागज का टुकड़ा निकाला, और बड़े जतन से उसकी चारों तह खोलकर दोनों हाथों से उसे फैलाकर मेरी मेज पर रख दिया।

देखा कि कागज के उस टुकड़े पर एक नन्हे से हाथ के छोटे से पंजे की छाप है। फोटो नहीं, तेल चित्र नहीं हाथ में थोड़ी सी कालिख लगाकर, कागज के ऊपर उसी का निशान ले लिया गया है। अपनी बेटी के इस स्मृति-पत्र को छाती से लगाकर, रहमत हर वर्ष कलकत्ता की गली-कूचों में सौदा बेचने के लिए आता है और तब वह कालिख चित्र मानो उसकी बच्ची के हाथ का कोमल स्पर्श, उसके बिछड़े हुए विशाल वक्षःस्थल में अमृत उंड़ेलता रहता है।

देखकर मेरी आंखें भर आईं और फिर मैं इस बात को बिल्कुल ही भूल गया कि वह एक मामूली काबुली मेवा वाला है, मैं एक उच्चवंश का रईस हूं। तब मुझे ऐसा लगने लगा कि जो वह है, वही मैं हूं। वह भी एक बाप है और मैं भी। उसकी पर्वतवासिनी छोटी बच्ची की निशानी मेरी ही मिनी की याद दिलाती है। मैंने तत्काल ही मिनी को बाहर बुलवाया; हालांकि इस पर अन्दर घर में आपत्ति की गई, पर मैंने उस पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया। विवाह के वस्त्रों और अलंकारों में लिपटी हुई बेचारी मिनी मारे लज्जा के सिकुड़ी हुई-सी मेरे पास आकर खड़ी हो गई।

उस अवस्था में देखकर रहमत काबुली पहले तो सकपका गया। उससे पहले जैसी बातचीत न करते बना। बाद में हंसते हुए बोल—"लल्ली ! सास के घर जा रही है क्या ?"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मिनी अब सास का अर्थ समझने लगी थी, अतः अब उससे पहले की तरह उत्तर देते न बना। रहमत की बात सुनकर मारे लज्जा के उसके कपोल लाल-सुर्ख हो उठे। उसने मुंह को फेर लिया। मुझे उस दिन की याद आई, जबकि रहमत के साथ मिनी का प्रथम परिचय हुआ था। मन में एक पीड़ा की लहर दौड़ गई।

मिनी के चले जाने के बाद, एक गहरी सांस लेकर रहमत फर्श पर बैठ गया। शायद उसकी समझ में यह बात एकाएक साफ हो गई कि उसकी बेटी भी इतने दिनों में बड़ी हो गई होगी, और उसके साथ भी उसे अब फिर से नई जान-पहचान करनी पड़ेगी। सम्भवतः वह उसे पहली जैसी नहीं पायेगा। इन आठ वर्षों में उसका क्या हुआ होगा, कौन जाने ? सवेरे के समय शरद् की स्निग्ध सूर्य किरणों में शहनाई बजने लगी और रहमत कलकत्ता की एक गली के भीतर बैठा हुआ अफगानिस्तान के मेरु-पर्वत का दृश्य देखने लगा।

मैंने एक नोट निकालकर उसके हाथ में दिया और कहा, "रहमत, तुम देश चले जाओ, अपनी लड़की के पास। तुम दोनों के मिलन-सुख से मेरी मिनी सुख पायेगी।"

रहमत को रुपये देने के बाद विवाह के हिसाब में से मुझे उत्सव-समारोह के दो-एक अंग छांटकर काट देने पड़े। जैसी मन में थी, वैसी रोशनी नहीं करा सका, अंग्रेजी बाजा भी नहीं आया, घर में औरतें बड़ी बिगड़ने लगीं, सब-कुछ हुआ, फिर भी मेरा विचार है, कि आज एक अपूर्व ज्योत्स्ना से हमारा शुभ समारोह उज्जवल हो उठा।

●

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अनाथ

गांव की किसी एक अभागिनी के अत्याचारी पति के तिरस्कृत कर्मों की पूरी व्याख्या करने के बाद पड़ोसिन तारामती ने अपनी राय संक्षेप में प्रकट करते हुए कहा—"आग लगे ऐसे पति के मुंह में।"

सुनकर जयगोपाल बाबू की पत्नी शशिकला को बहुत बुरा लगा और ठेस भी पहुंची। उसने जबान से तो कुछ नहीं कहा, पर अन्दर-ही-अन्दर सोचने लगी कि पति जाति के मुख में सिगरेट सिगार की आग के सिवा और किसी तरह की आग लगाना या कल्पना करना कम-से-कम नारी जाति के लिए कभी किसी भी अवस्था में शोभा नहीं देता ?

शशिकला को गुम-सुम बैठा देखकर कठोरहृदया तारामती का उत्साह दूना हो गया, वह बोली—"ऐसे खसम से तो जन्म-जन्म की रांड भली।"

शशिकला गम्भीर हो गई। वह सोचने लगी, पति की ओर से किसी दोष की कल्पना भी नहीं कर सकती, जिससे उनके प्रति ऐसा कठोर भाव जागृत हो जाये। विचारते-विचारते उसके कोमल हृदय का सारा प्रतिफल अपने प्रवासी पति की ओर उच्छ्वासित होकर दौड़ने लगा। पर जहां उसके पति शयन किया करते थे, उस स्थान पर दोनों बांहें फैलाकर वह औंधी पड़ी रही और बारम्बार तकिए को छाती से लगाकर चूमने लगी, तकिए में पति के सिर के तेल की सुगन्ध को वह महसूस करने लगी और फिर द्वार बन्द करके बक्स में से पति का एक बहुत पुराना चित्र और स्मृति-पत्र निकालकर बैठ गई। उस दिन की निस्तब्ध दोपहरी, उसकी इसी प्रकार कमरे में एकान्त-चिन्ता, पुरानी स्मृति और व्यथा के आंसुओं में बीत गई।

शशिकला और जयगोपाल बाबू का दाम्पत्य जीवन कोई नया हो, सो बात नहीं है। बचपन में शादी हुई थी और इस दौरान में कई बाल-बच्चे भी हो चुके थे। दोनों ने बहुत दिनों तक एक साथ रहकर साधारण रूप में दिन काटे। किसी भी ओर से इन दोनों के अपरिमित स्नेह को देखने कभी कोई नहीं आया ? लगभग सोलह वर्ष की एक लम्बी अवधि बिताने के बाद उसके पति को महज काम-धाम ढूंढ़ने के लिए अचानक परदेश जाना पड़ा और विच्छेद ने शशि के मन में एक प्रकार का प्रेम का तूफ़ान खड़ा कर दिया। विरह-बंधन में जितनी खिंचाई होने लगी, कोमल हृदय की

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

फांसी उतनी ही कड़ी होने लगी। इस ढीली अवस्था में जब उसका अस्तित्व भी मालूम नहीं पड़ा, तब उसकी पीड़ा अन्दर से टीसें मारने लगी। इसी से, इतने दिन बाद, इतनी आयु में बच्चों की मां बनकर शशिकला आज बसन्त की दुपहरिया में निर्जन घर में विरह-शैया पर पड़ी नव-वधू का-सा सुख-स्वप्न देखने लगी। जो स्नेह अज्ञात रूप जीवन के आगे से बहा चला गया है सहसा आज उसी के भीतर से जगाकर मन-ही-मन बहाव से विपरीत तैर कर पीछे की ओर बहुत दूर पहुंचना चाहती है। जहां स्वर्णपुरी में कुंज वनों की भरमार है, और स्नेह की उन्माद अवस्था किन्तु उस अतीत के स्वर्णिम सुख में पहुंचने का अब उपाय क्या है ? फिर स्थान कहां है ? सोचने लगी, अबकी बार जो वह पति को पास पाएगी तब जीवन की इन शेष घड़ियों को और बसन्त की आभा को निष्फल नहीं होने देगी। कितने ही दिवस, कितनी ही बार उसने छोटी-मोटी बातों पर वाद-विवाद करके इतना ही नहीं, उन बातों पर कलह कर-करके पति को परेशान कर डाला है। आज अतृप्त मन ने भी एकान्त इच्छा से संकल्प किया कि भविष्य में कदापि संघर्ष न करेगी, कभी भी उनकी इच्छा के विरुद्ध नहीं चलेगी, उनकी आज्ञा को पूरी तरह पालेगी, सब काम उनकी तबीयत के अनुसार किया करेगी, स्नेह-युक्त विनम्र हृदय से अपने पति का बुरा-भला व्यवहार सब चुपचाप सह लिया करेगी; कारण पति सर्वस्व है, पति प्रियतम है, पति देवता हे।

बहुत दिनों तक शशिकला अपने माता-पिता की एकमात्र लाडली बेटी रही है। उन दिनों जयगोपाल बाबू वास्तव में मामूली नौकरी किया करते थे, फिर भी भविष्य के लिए उसे किसी प्रकार की चिन्ता न थी। गांव में जाकर पूर्ण वैभव के साथ रहने के लिए उसके श्वसुर के पास पर्याप्त मात्रा में चल-अचल सम्पत्ति थी।

इसी बीच, बिल्कुल ही असमय में शशिकला के वृद्ध पिता कालीप्रसन्न के यहां पुत्र ने जन्म लिया। सत्य कहने में क्या है ? भाई के इस जन्म से शशिकला को बहुत दुःख हुआ और जयगोपाल बाबू भी इस नन्हे साले को पाकर विशेष प्रसन्न नहीं हुए।

अधिक आयु में बच्चा होने के कारण उस पर माता-पिता के लाड़-प्यार का कोई ठिकाना न रहा। उस नवजात छोटे दूध-पीते निद्रातुर साले ने अपनी अज्ञानता में न जाने कैसे अपने कोमल हाथों की छोटी-छोटी मुट्ठियों में जयगोपाल बाबू की सारी आशाएं पीसकर जब चकनाचूर कर दीं तब वह आसाम के किसी छोटे बगीचे में नौकरी करने के लिए चल दिया ?

सबने कहा सुना कि पास में ही कहीं छोटा-मोटा काम-धन्धा खोज करके यहीं रहो तो अच्छा हो, किन्तु चाहे गुस्से के कारण से हो या गैरों की नौकरी करने में

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

शीघ्र ही अमीर बनने की धुन से हो, उसने किसी की बात पर ध्यान नहीं दिया। शशि को बच्चों के साथ उसके मायके में छोड़ कर वह आसाम चला गया। विवाह के उपरान्त इस दम्पत्ति में यह पहला विच्छेद था।

पति के चले जाने से, शशि को दुधमुंहे भाई पर बड़ा क्रोध आया। जो मन की पीड़ा को स्पष्ट रूप से कह नहीं सकता, उसी को क्रोध अधिक आता है। छोटा-सा नवजात शिशु मां के स्तनों को चूमता और आंख मींच कर निश्चिन्तता से सोता, और उसकी बड़ी बहन अपने बच्चों के लिए गर्म दूध, ठण्डा भात स्कूल जाने की देर इत्यादि अनेक कारणों से रात-दिन रूठकर मुंह फुलाये रहती और सारे परिवार को परेशान करती।

थोड़े दिन बाद ही बच्चे की मां का स्वर्गवास हो गया। मरते समय मां अपने गोद के बच्चे को लड़की के हाथ सौंप गई।

अब तो बहुत ही शीघ्र मातृहीन शिशु ने अपनी कठोरहृदया दीदी का हृदय जीत लिया। हा-हा, ही-ही करता हुआ वह शिशु जब अपनी दीदी के ऊपर जा पड़ता; और अपने बिना दांत के छोटे से मुख में उसका मुंह, नाक, कान सब कुछ ले जाना चाहता, अपनी छोटी-सी मुट्ठी में उसका जूड़ा पकड़कर जब खींचता और किसी कीमत पर भी हाथों में आई वस्तु को छोड़ने के लिए तैयार न होता, दिवाकर के उदय होने से पहले ही उठ कर जब वह गिरता-पड़ता हुआ अपनी दीदी को कोमल स्पर्श से पुलकित करता, किलकारियां मार-मारकर शोर मचाना आरम्भ कर देता, और जब वह क्रमशः दी....दी....दीदी पुकार-पुकार कर बारम्बार उसका ध्यान बंटाने लगा और जब उसने काम-काज और फुरसत के समय, उस पर उपद्रव करने आरम्भ कर दिए, तब शशि से स्थिर नहीं रहा गया। उसने उस छोटे से स्वतन्त्र प्रेमी अत्याचारी के आगे पूरे तौर पर आत्मसमर्पण कर लिया। बच्चे की मां नहीं थी, इसी से शायद उस पर उसकी संरक्षकता का अधिक भार आ पड़ा।

2

शिशु का नाम हुआ नीलमणि। जब वह दो वर्ष का हुआ तब उसके पिता असाध्य रोगी हो गये। बहुत ही शीघ्र चले आने के लिए जयगोपाल बाबू को लिखा गया। जयगोपाल बाबू जब मुश्किल से उस सूचना को पाकर ससुराल पहुंचे, जब श्वसुर कालीप्रसन्न मौत की घड़ियां गिन रहे थे।

मरने से पूर्व कालीप्रसन्न ने अपने एकमात्र नाबालिग पुत्र नीलमणि का सारा

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

भार दामाद जयगोपाल बाबू पर छोड़ दिया और अपनी अचल सम्पत्ति का एक चौथाई भाग अपनी बेटी शशिकला के नाम कर दिया।

इसलिए चल-अचल सम्पत्ति की सुरक्षा के लिए जयगोपाल बाबू को आसाम की नौकरी छोड़कर ससुराल चले आना पड़ा।

बहुत दिनों के उपरान्त पति-पत्नी में मिलन हुआ। किसी जड़-पदार्थ के टूट जाने पर, उनके जोड़ों को मिलाकर किसी प्रकार उसे जोड़ा जा सकता है, किन्तु दो मानवी हृदयों को, जहां से फट जाते हैं, विरह की लम्बी अवधि बीत जाने पर फिर वहां ठीक पहले जैसा जोड़ नहीं मिलता ? कारण हृदय संजीव पदार्थ है; क्षणों में उसकी परिणति होती है और क्षण में ही परिवर्तन।

इस नये मिलन पर शशि के मन में अबकी बार नये ही भावों का श्रीगणेश हुआ। मानो अपने पति से उसका पुनः विवाह हुआ हो। पहले दाम्पत्य में पुरानी आदतों के कारण जो एक जड़ता-सी आ गई थी, विरह के आकर्षक से वह एकदम टूट गई, और अपने पति को मानो उसने पहले की अपेक्षा कहीं अधिक पूर्णता के साथ पा लिया। मन-ही-मन में उसने संकल्प किया कि चाहे कैसे ही दिन बीतें, वह पति के प्रति उद्दीप्त स्नेह की उज्ज्वलता को तनिक भी म्लान न होने देगी।

किन्तु इस नये मिलन में जयगोपाल बाबू के मन की दशा कुछ और ही हो गई। इससे पूर्व जब दोनों अविच्छेद रूप से एक साथ रहा करते थे, जब पत्नी के साथ उसके पूरे स्वार्थ और विभिन्न कार्यों में एकता का सम्बन्ध था, जब पत्नी के साथ उसके जीवन का एक नित्य सत्य हो रहा था और जब वह उसे पृथक् करके कुछ करना चाहते थे तो दैनिक चर्या की राह में चलते-चलते अवश्य उनका पांव अकस्मात गहरे गर्त में पड़ जाता। उदाहरणतः कहा जा सकता है कि परदेश जाकर पहले-पहल वह भारी मुसीबत का शिकार हो गये। वहां उन्हें ऐसा प्रतीत होने लगा, मानो अकस्मात उन्हें किसी ने गहरे जल में धक्का दे दिया है। लेकिन क्रमशः उनके उस विच्छेद में नये कार्य की थेकली लगा दी गई।

केवल इतना ही नहीं; अपितु पहले जो उनके दिन व्यर्थ आलस्य में कट जाया करते थे, उधर दो वर्ष से अपनी आर्थिक अवस्था सुधारने की कोशिश के रूप में उनके मन में एक प्रकार की जबरदस्त क्रांति का उदय हुआ। उनके मन के सम्मुख मालदार बनने की एकनिष्ठ इच्छा के सिवा और कोई चीज नहीं थी। इस नये उन्माद की तीव्रता के आगे पिछला जीवन उनको बिल्कुल ही सारहीन-सा दृष्टिगत होने लगा।

नारी जाति की प्रकृति में खास परिवर्तन ले आता है स्नेह, और पुरुष जाति

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

की प्रकृति में कोई खास परिवर्तन होता है, तो उसकी जड़ में रहती है कोई-न-कोई दुष्ट-प्रकृत्ति।

जयगोपाल बाबू दो वर्ष पश्चात् आकर पत्नी से मिले तो उन्हें हू-ब-हू पहली-सी पत्नी नहीं मिली। उनकी पत्नी शशि के जीवन में उनके नवजात साले ने एक नई ही परिधि स्थित कर दी है, जो पहले से ही कहीं अधिक विस्तृत और संकीर्णता से कोसों दूर है। शशि के मन के इस भाव से वह बिल्कुल ही अनभिज्ञ थे और न इससे उनका मेल ही बैठता था। शशि अपने इस नवजात शिशु के स्नेह में से पति को भाग देने का बहुत यत्न करती, पर उसमें इसे सफलता मिली या नहीं, कहना कठिन है।

शशि नीलमणि को गोदी में उठाकर हंसती हुई पति के सामने आती और उनकी गोदी में देने की चेष्टा करती, किन्तु नीलमणि पूरी ताकत के साथ दीदी के गले से चिपट जाता और अपने सम्बन्ध की तनिक भी परवाह न करके दीदी के कंधे से मुंह को छिपाने का प्रयत्न करता।

शशि की इच्छा थी कि उसके इस छोटे से भाई को मन बहलाने की जितनी ही प्रकार की विद्या आती है, सबकी सब बहनोई के आगे प्रकट हो जाये। लेकिन न तो बहनोई ने ही इस विषय में कोई आग्रह दिखाया और न साले ने ही कोई दिलचस्पी दिखाई। जयगोपाल बाबू की समझ में यह बिल्कुल न आया कि इस दुबले-पतले चौड़े माथे वाले मनहूस सूरत काले-कलूटे बच्चे में ऐसा कौन-सा आकर्षण है, जिसके लिए उस पर प्यार की इतनी फिजूलखर्ची की जा रही है।

प्यार की सूक्ष्म से सूक्ष्म बातें नारी-जाति चट से समझ जाती है। शशि तुरन्त ही समझ गई कि जयगोपाल बाबू को नीलमणि के प्रति कोई खास रुचि नहीं है। और वह शायद मन से उसे चाहते भी नहीं हैं। तब से वह अपने भाई को बड़ी सर्तकता से पति की दृष्टि से बचाकर रखने लगी। जहां तक हो सकता, जयगोपाल की विराग दृष्टि उस पर नहीं पड़ने पाती।

और इस प्रकार वह बच्चा उस अकेली का एकमात्र स्नेह का आधार बन गया। उसकी वह इस प्रकार देखभाल रखने लगी, जैसे वह उसका बड़े यतन से इकट्ठा किया हुआ गुप्त धन है। सभी जानते हैं कि स्नेह जितना ही गुप्त और जितना ही एकान्त का होता, उतना ही तेज हुआ करता है।

नीलमणि जब कभी रोता तो जयगोपाल बाबू को बहुत ही झुंझलाहट आती। अतः शशि झट से उसे छाती से लगाकर खूब प्यार कर-करके हंसाने का प्रयत्न करती; खासकर रात को उसके रोने से यदि पति की नींद उचटने की सम्भावना होती

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

और पति यदि उस रोते हुए शिशु के प्रति हिंसात्मक भाव से क्रोध या घृणा जाहिर करता हुआ तीव्र स्वर में चिल्ला उठता, तब शशि मानो अपराधिनी-सी संकुचित और अस्थिर हो जाती और उसी क्षण उसे गोदी में लेकर दूर जाकर प्यार के स्वर में कहती—"सोजा मेरा राजा बाबू, सोजा' वह सो जाता।

बच्चों-बच्चों में बहुधा किसी-न-किसी बात पर झगड़ा हो ही जाता है ? शुरू-शुरू में ऐसे अवसरों पर शशि अपने भाई का पक्ष लिया करती थी; कारण उसकी मां नहीं है। जब न्यायाधीश के साथ-साथ न्याय में भी अन्तर आने लगा तब हमेशा ही निर्दोष नीलमणि को कड़ा-से-कड़ा दण्ड भुगतना पड़ता। यह अन्याय शशि के हृदय में तीर के समान चुभ जाता और इसके लिए वह दण्डित भाई को अलग ले जाकर, उसे मिठाई देकर, खिलौने देकर, गाल चूम करके, दिलासा देने का प्रयत्न किया करती।

परिणाम यह देखने में आता हैं कि शशि नीलमणि को जितना ही अधिक चाहती, जयगोपाल बाबू उतना ही उस पर जलते-भुनते रहते और वह जितना ही नीलमणि से घृणा करते, गुस्सा करते शशि उतना ही उसे अधिक प्यार करती।

जयगोपाल बाबू उन इंसानों में से हैं जो कि अपनी पत्नी के साथ कठोर व्यवहार नहीं करते और शशि भी उन स्त्रियों में से है जो स्निग्ध स्नेह के साथ चुपचाप पति की बराबर सेवा किया करती है। किन्तु अब केवल नीलमणि को लेकर अन्दर-ही-अन्दर एक गुठली-सी पकने लगी जो उस दम्पत्ति के लिए व्यथा दे रही है।

इस प्रकार के नीरव द्वन्द्व का गोपनीय आघात-प्रतिघात प्रकट संघर्ष की अपेक्षा कहीं अधिक कष्टदायक होता है, यह बात उन समवयस्कों से छिपाना कठिन है जो कि विवाहित दुनिया की सैर कर चुके हों।

3

नीलमणि की सारी देह में केवल सिर ही सबसे बड़ा था। देखने में ऐसा प्रतीत होता जैसे विधाता ने एक खोखले पतले बांस में फूंक मारकर ऊपर के हिस्से पर एक हंड़िया बना दी है। डॉक्टर भी अक्सर भय प्रकट करते हुए कहा करते कि लड़का उस ढांचे के समान ही निकम्मा साबित हो सकता है। बहुत दिनों तक उसे बात करना और चलना नहीं आया। उसके उदासीन गम्भीर चेहरे को देखकर ऐसा प्रतीत होता कि उसके मात-पिता अपनी वृद्धावस्था की सारी चिन्ताओं का भार, इसी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

नन्हे-से बच्चे के माथे पर लाद गये हैं।

दीदी के यतन और सेवा से नीलमणि ने अपने भय का समय पार करके छठे वर्ष में पदार्पण किया।

कार्तिक में भइया-दूज के दिन शशि ने नीनमणि को नये-नये, बढ़िया वस्त्र पहनाये, खूब सजधज के साथ बाबू बनाया और उसके विशाल माथे पर टीका करने के लिए थाली सजाई। भइया को पटड़े पर बिठाकर अंगूठे में रोली लगाकर टीका लगा ही रही थी कि इतने में पूर्वोक्त मुंहफट पड़ोसिन तारा आ पहुंची और आते के साथ ही बात-ही-बात में शशि के साथ संघर्ष आरम्भ कर दिया।

वह कहने लगी—"हाय, हाय ! छिपे-छिपे भइया का सत्यानाश करके ठाट-बाट से लोक दिखाऊ टीका करने से क्या फायदा ?"

सुनकर शशि पर एक साथ आश्चर्य, क्रोध और वेदना की दामिनी-सी टूट पड़ी। अन्त में उसे सुनना पड़ा कि वे दोनों औरत-मर्द मिलकर सलाह करके नाबालिग नीलमणि की अचल सम्पत्ति को मालगुजारी-वसूली में नीलाम करवाकर पति के फुफेरे भाई के नाम खरीदने की साजिश कर रहे हैं।

शशि ने सुनकर कोसना शुरू किया—"जो लोग इतनी बड़ी झूठी बदनामी कर रहे हैं, भगवान करे उनकी जीभ जल जाये।" और अश्रु बहाती हुई सीधी वह पति के पास पहुंची तथा उनसे सब बात कह सुनाई।

जयगोपाल बाबू ने कहा—"आजकल के जमाने में किसी का भरोसा नहीं किया जा सकता। उपेन्द्र मेरा सगा फुफेरा भाई है, उस पर सारी अचल सम्पत्ति का भार डालकर मैं निश्चिंत था। उसने कब मालगुजारी नहीं भरी और कब नीलाम में हासिलपुर खरीद लिया, मुझे कुछ पता ही नहीं लगा।"

शशि ने आश्चर्य के साथ पूछा—"तुम नालिश नहीं करोगे ?"

जयगोपाल बाबू ने कहा—"भाई के नाम नालिश कैसे करूं और फिर नालिश करने से कुछ फल भी नहीं निकलेगा, गांठ से और रुपये-पैसे की बरबादी होगी ?"

पति की बात पर भरोसा करना शशि का कर्त्तव्य है किन्तु वह किसी भी तरह भरोसा न कर सकी ? तब फिर उसकी अपनी सुख की घर-गृहस्थी और स्नेह का दाम्पत्य जीवन सब-कुछ सहसा भयानक रूप में उसके समक्ष आ खड़ा हुआ। जिस घर-द्वार को वह अपना आश्रय समझ रही थी, अचानक देखा कि उसके लिए वह एक निष्ठुर, फांसी बन गया है, जिसने चारों ओर से उन दोनों बहिन-भाई को घेर रखा है। वह अकेली अबला है, असहाय नीलमणि को कैसे बचाये, उसकी कुछ समझ में नहीं आता। जैसे-जैसे वह सोचने लगी वैसे-वैसे भय और घृणा से संकट

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

में पड़े हुए अबोध भाई पर उसका प्यार बढ़ता ही गया। उसका हृदय ममता और आंखें अश्रुओं से भर आईं। वह सोचने लगी यदि उसे उपाय मालूम होता तो वह लाट साहब के दरबार में अपनी अर्जी दिलवाती और वहां से भी कुछ न होता तो महारानी विक्टोरिया के पास खत भेजकर अपने भाई की जायदाद अवश्य बचा लेती और महारानी साहिबा नीलमणि की वार्षिक सात सौ अट्ठावन रुपये लाभ की जायदाद हासिलपुर कदापि नहीं बिकने देती।

इस प्रकार शशि जबकि सीधा महारानी विक्टोरिया के दरबार में न्याय कराके अपने फुफेरे देवर को ठींक करने का उपाय सोच रही थी, तब सहसा नीलमणि को तीव्र ज्वर चढ़ आया; और ऐसा दौरा पड़ने लगा कि हाथ-पांव तन गये और बारम्बार बेहोशी बढ़ने लगी।

जयगोपाल ने गांव के एक देशी काले डॉक्टर को बुलवाया। शशि ने अच्छे डॉक्टर के लिए प्रार्थना की तो जयगोपाल बाबू ने उत्तर दिया—"क्यों ? मोतीलाल क्या बुरा डॉक्टर है ?"

शशि जब उनके पांवों पर गिर गई, अपनी सौगंध खिलाकर भयभीत हिरनी की तरह निहारने लगी, तब जयगोपाल बाबू ने कहा—"अच्छा, शहर से डॉक्टर बुलवाता हूं, ठहरो।"

शशि नीलमणि को छाती से चिपकाये पड़ी रही। नीलमणि भी एक पल के लिए भी उसे आंखों से ओझल नहीं होने देता; भय खाता कि उसे धोखा देकर दीदी उसकी कहीं चली जाये और इसलिए वह सदा उससे चिपटा रहता; यहां तक कि सो जाने पर भी पल्लू कदापि नहीं छोड़ता।

सारा दिन इसी प्रकार बीत गया। सन्ध्या के बाद दीया-बत्ती के समय जयगोपाल बाबू ने आकर कहा—"शहर का डॉक्टर नहीं मिला, वह दूर कहीं मरीज देखने गया है।" और इसके साथ यह भी कहा—"मुकदमे के कारण मुझे अभी इसी समय बाहर जाना पड़ रहा है। मैंने मोतीलाल से कह दिया है, दोनों वक्त आकर, अच्छी प्रकार से देखभाल किया करेंगे।"

रात को नीलमणि अंटसंट बकने लगा। भोर होते ही शशि और कुछ भी न सोचकर खुद रोगी भाई को लेकर नाव में बैठ कलकत्ता के लिए चल दी।

कलकत्ता जाकर देखा कि डॉक्टर घर पर ही हैं; कहीं बाहर नहीं गये हैं। भले घर की स्त्री समझकर डॉक्टर ने झटपट उसके लिए ठहरने का प्रबन्ध कर लिया और उसकी मदद के लिए एक अधेड़ विधवा को नियुक्त कर दिया। नीलमणि का इलाज चलने लगा।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

दूसरे ही दिन जयगोपाल बाबू भी कलकत्ता आ धमके। मारे गुस्से के आग-बबूला होकर उसने शशि को तत्काल ही घर लौटने का हुक्म दिया।

शशि ने कहा—"मुझे यदि तुम काट भी डालो, तब भी मैं अभी घर नहीं लौटने की। तुम सब मिलकर मेरे नीलमणि को मार डालना चाहते हो। उसके बाप नहीं, मां नहीं, मेरे सिवा उसका है ही कौन ? मैं उसे बचाऊंगी, बचाऊंगी, अवश्य बचाऊंगी।"

जयगोपाल बाबू भावावेश में आकर बोले—"तो तुम यहीं रहो, मेरे घर अब कदापि मत आना।"

शशि ने उसी क्षण तपाक से कहा—"तुम्हारा घर कहां से आया ?" घर तो मेरे भाई का है।"

जयगोपाल बाबू बोले—"अच्छा देखा जाएगा।"

कुछ दिनों तक इस घटना को लेकर मोहल्ले के लोगों में चुहलबाजियां चलती रहीं, अनेक वाद-विवाद होते रहे। तभी पड़ोसिन तारा ने कहा—"अरे ! खसम के साथ लड़ना ही हो तो घर पर रहकर लड़ो न, जितना लड़ना हो। घर छोड़कर बाहर लड़ने-झगड़ने की क्या जरूरत, कुछ भी हो, आखिर है तो अपना घरवाला ही ?"

हाथ में जो कुछ जमा-पूंजी थी सब खर्च करके, आभूषण आदि जो कुछ भी थे सब बेचकर किसी प्रकार शशि ने अपने नाबालिग भाई को मौत के मुंह से निकाल लिया ? और तब उसे पता लगा कि दुआर-गांव में उन लोगों की जो बड़ी भारी खेती की जमीन थी और उस पर उनकी पक्की हवेली भी थी, जिसकी वार्षिक आय लगभग डेढ़ सहस्र थी। वह भी जमींदार के साथ मिलकर जयगोपाल बाबू ने अपने नाम करा ली है। अब सारी अचल सम्पत्ति उसके पति की है, भाई का उसमें कुछ भी हक नहीं रहा है।

रोग से छुटकारा मिलने पर नीलमणि ने करुण स्वर में कहा—"दीदी ! घर चलो।" वहां अपने साथियों से खेलने के लिए उसका जी मचल रहा है। इसी से प्रेरित होकर वह बार-बार कहने लगा—"दीदी ! अपने उसी घर में चलो न।"

सुनकर शशि रोने लगी, बोली—"हम लोगों का अब घर कहां है ?"

लेकिन, केवल रोने से ही फल क्या ? अब दीदी के सिवा इस दुनिया में उसके भाई का है ही कौन ? यह सोचकर शशि ने आंखें पोंछ डालीं और साहस बटोर कर डिप्टी-मजिस्ट्रेट तारिणी बाबू के घर जाकर, उसकी पत्नी की शरण ली।

मजिस्ट्रेट साहब जयगोपाल बाबू को भली-भांति जानते थे। भले घर की बहू-बेटी घर से निकलकर जमीन-जायदाद के लिए पति से झगड़ना चाहती है, इस

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

बात पर वे शशि पर गुस्सा हुए। उसे बातों में फुसलाये रख कर उसी समय उन्होंने जयगोपाल बाबू को पत्र लिखा। जयगोपाल बाबू साले सहित शशि को जबरदस्ती नाव पर बैठाकर गांव ले गया।

इस दम्पत्ति का द्वितीय विच्छेद के बाद, फिर वह द्वितीय मिलन हुआ। जन्म-जन्म का साथ सृष्टिकर्ता का विधान जो ठहरा।

बहुत दिनों बाद घर लौटकर पुराने साथियों को पाकर नीलमणि बहुत खुश हुआ आनन्दपूर्वक घूमने-फिरने लगा। उसकी निश्चिंत खुशी को देखकर भीतर-ही-भीतर शशि की छाती फटने लगी।

4

शरद् ऋतु आई। मजिस्ट्रेट साहब गांवों में छानबीन करने दौरे पर निकले और शिकार करने के लिए, जंगल से सटे हुए एक गांव में तम्बू तन गये। गांव के मार्ग में साहब के साथ नीलमणि की भेंट हुई। उसके सभी साथी साहब को देखकर दूर हट गये। सहाब निरीक्षण करता रहा। न जाने साहब को उससे कुछ दिलचस्पी हुई, उसने पास बुलाकर पूछा—"तुम स्कूल में पढ़ते हो ?"

बालक ने चुपचाप खड़े रहकर सिर हिला दिया—"हां।"

साहब ने पुनः पूछा—"कौन-सी पुस्तक पढ़ते हो ?"

नीलमणि 'पुस्तक' शब्द का मतलब न समझ सका, अतः साहब के मुंह की ओर देखता रहा।

घर पहुंचकर नीलमणि ने साहब के साथ अपने इस परिचय की बात खूब उत्साह के साथ दीदी को बताई।

दोपहर को अचकन, पाजामा, पगड़ी आदि बांधकर जयगोपाल बाबू साहब का अभिवादन करने के लिए पहुंचे। साहब उस समय तम्बू के बाहर खुली छाया में कैम्पमेज लगाये बैठे थे। सिपाही वगैरा की चारों ओर धूम मची हुई थी। उन्होंने जयगोपाल बाबू को चौकी पर बैठाकर गांव के हालचाल पूछे। जयगोपाल बाबू सर्वसाधारण गांव वालों के सामने जो इस प्रकार बड़प्पन का स्थान घेरे बैठे हैं, इसके लिए वह मन-ही-मन फूला नहीं समा रहा है उसके मन में बार-बार यह विचार उठ रहे थे कि इस समय चक्रवर्ती और नन्दी घराने का कोई आकर देख जाता तो, कितना अच्छा होता ?

इतने में नीलमणि को साथ लिये अवगुण्ठन ताने एक स्त्री सीधी साहब के

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सामने आकर खड़ी हो गई, बोली—"साहब, आपके हाथ में मैं इस अनाथ भाई को सौंप रही हूं, आप इसकी रक्षा कीजिए।"

साहब पूर्व परिचित गम्भीर प्रकृति वाले बालक को देखकर उसके साथ वाली स्त्री को भले घर की बहू-बेटी समझ कर, उसी क्षण उठ के खड़े हो गये, बोले—"आप तम्बू में आइये।"

"मुझे जो कुछ कहना है, वह यहीं कहूंगी।"

जयगोपाल बाबू का चेहरा फीका पड़ गया और घबराहट के मारे ऐसा हो गया, मानो अंगारे पर अचानक उसका पांव पड़ गया हो। गांव के लोग तमाशा देखने के लिए खिसक-खिसक कर पास आने की चेष्टा करने लगे। तभी साहब ने बेंत उठाया और सब भाग खड़े हुए।

तब फिर शशिकला ने अपने अनाथ भाई का हाथ थामते हुए उस अनाथ बच्चे का सारा इतिहास शुरू से आखिर तक कह सुनाया। जयगोपाल बाबू ने बीच-बीच में रुकावट डालने की चेष्टा की, पर साहब ने गरज कर उसे जहां का तहां बैठा दिया। "चुप रहो।" और बेंत के संकेत से उसे चौकी से उठकर सामने खड़ा होने का हुक्म दिया।

जयगोपाल बाबू शशि को मन-ही-मन कोसता हुआ सामने खड़ा रहा और नीलमणि अपनी दीदी से बिल्कुल चिपटकर मुंह बनाये चुपचाप खड़ा सुनता रहा।

शशि की बात सुन लेने पर साहब ने जयगोपाल बाबू से कई प्रश्न पूछे और उनका उत्तर पाकर, बहुत देर तक चुप रहकर शशि को सम्बोधित करके बोले—"बेटी ! यह मामला मेरी कचहरी में नहीं चल सकता, पर तुम बेफिक्र रहो, इस विषय में मुझे जो कुछ करना होगा, अवश्य करूंगा। तुम इस अनाथ भाई को लेकर बेधड़क घर जा सकती हो।"

शशि ने कहा—"साहब ! जब तक इस अनाथ को अपना मकान नहीं मिल सकता तब तक इसे लेकर घर जाने का साहस मैं नहीं कर सकती। अब, यदि आप इसे अपने पास नहीं रखते तो कोई और भी इस अनाथ की रक्षा नहीं कर सकता ?"

साहब ने पूछा—"तुम कहां जाओगी ?"

शशि ने उत्तर दिया—"मैं अपने पति के घर लौट जाऊंगी, मेरी कुछ फिक्र नहीं है।" साहब मुस्कराया और ताबीज बंधे और दुबले-पतले, गम्भीर स्वभाव वाले काले रंग के उस दुखी अनाथ बालक को अपने पास रखने को तैयार हो गया।

इसके उपरान्त शशि जब विदा होने लगी, तब बालक ने उसकी धोती का छोर पकड़ लिया।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

साहब ने कहा—"बेटा ! तुम डरो मत, आओ, मेरे पास आओ।"

अवगुण्ठन के भीतर अश्रुओं से झरना बहाते और पोंछते हुए अनाथ की दीदी ने कहा—"मेरा राजा भैया है न, जा, जा, साहब के पास जा—तेरी दीदी तुझसे फिर मिलेगी, अच्छा।"

इतना कहकर उसने नीलमणि को उठा छाती से लगा लिया और माथे पर, पीठ पर हाथ फेरकर किसी प्रकार उसके पतले हाथों से अपनी धोती का छोर छुड़ाया और बड़ी तेजी से वहां से चल दी। साहब ने तुरन्त ही बाएं हाथ से उस अनाथ बालक को रोक लिया और बालक—"दीदी ! दीदी !" चिल्लाता हुआ जोर-जोर से रोने लगा। शशि ने एक बार मुड़कर, दूर से अपना दाहिना हाथ उठाकर, अपनी ओर से उसे चुप होने के लिए सान्त्वना दी और अपने टूक-टूक हुए हृदय को लेकर और भी तेजी से आगे निकल गई।

फिर बहुत दिनों तक उस पुरानी हवेली में पति-पत्नी का मिलन हुआ। सृष्टिकर्ता का विधान जो ठहरा।

लेकिन यह मिलन अधिक दिन तक न रह सका। कारण, इसके कुछ ही दिन बाद, एक दिन भोर होते ही गांव वालों ने सुना कि रात को जयगोपाल बाबू की स्त्री हैजे से मर गई और रात ही को उसका अन्तिम संस्कार हो गया।

विदा के समय शशि अपने अनाथ भाई को वचन दे आई थी कि उसकी दीदी उससे फिर मिलेगी, पता नहीं उस वचन को वह निभा सकी अथवा नहीं।

●

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अवगुंठन

महामाया और राजीव लोचन दोनों सरिता के तट पर एक प्राचीन शिवालय के खंडहरों में मिले। महामाया ने मुख से कुछ न कहकर अपनी स्वाभाविक गम्भीर दृष्टि से तनिक कुछ तिरस्कृत अवस्था में राजीव की ओर देखा, जिसका अर्थ था कि जिस बिरते पर तुम आज बेसमय मुझे यहां बुला ले आये हो ? मैं अब तक तुम्हारी सभी बातों का समर्थन करती आई हूं, इसी से तुम्हारा इतना साहस बढ़ गया।

राजीव लोचन तो वैसे ही महामाया से सदैव त्रस्त रहता है, उस पर यह चितवन ! बेचारा कांप उठा। साहस बटोकर कुछ कहना चाहता था; किन्तु उसकी आशाओं पर उसी क्षण पानी फिर गया और अब इस भेंट का शीघ्रता से कोई-न-कोई कारण बिना बताये भी उसका छुटकारा नहीं हो सकता। अतः वह शीघ्रता से कह बैठा—"मैं चाहता हूं कि यहां से कहीं भाग चलें और वहां जाकर दोनों विवाह कर लें।" राजीव जिन विचारों को प्रकट करना चाहता था, विचार तो उसने ठीक वही प्रगट किए; किन्तु जो भूमिका वह बनाकर लाया था, वह न जाने कहां गुम हो गई ? उसके विचार बिल्कुल रसहीन और निरर्थक सिद्ध हुए सो तो ठीक है ही; लेकिन सुनने में भी भद्दे और अजीब-से लगे। वह स्वयं ही सुनकर भौचक्का-सा रह गया। और भी दो-चार बात जोड़कर उसे तनिक नरम बना देने की शक्ति उसमें न रही। शिवालय के खंडहरों में सरिता के तट पर इस जलती हुई दुपहरिया में महामाया को बुलाकर उस मूर्ख ने केवल इतना ही कहा—"चलो, हम कहीं चलकर विवाह कर लें।"

महामाया कुलीनों के घर की अविवाहिता कन्या है। अवस्था है चालीस वर्ष की। जैसी बड़ी अवस्था है, वैसा ही सौन्दर्य। शरद् की धूप के समान पक्के सोने के रंग की प्रतिमा-सी लगती है, उस धूप जैसी ही दीप्त और नीरव उसकी दृष्टि है दिव्यलोक जैसी उन्मुक्त और निर्भीक। उसके पिता नहीं हैं, केवल बड़ा भाई है। उसका नाम है भवानी चरण। भाई-बहन का स्वभाव एक-सा ही है। मुख से कहता नहीं, पर तेज ऐसा है कि दोपहर के सूर्य की तरह चुपके से जला सब कुछ देते हैं। खासकर भवानी चरण से लोग अकारण ही भय खाया करते हैं।

राजीव लोचन परदेसी है। यहां की रेशम की कोठी का बड़ा साहब उसे अपने

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

साथ ले आया था। राजीव के पिता इसी साहब की कोठी में काम करते थे। उसके स्वर्गवासी हो जाने पर साहब ने उसके नाबालिग लड़के के लालन-पालन का सारा भार अपने ऊपर ले लिया और बाल्यकाल से ही उसे वह अपनी इस वामनहारी की कोठी में ले आया। लड़के के साथ केवल उसकी स्नेह करने वाली बुआ थी। राजीव अपनी बुआ के साथ भवानी चरण के पड़ोस में रहा करता था। महामाया उसकी बाल-सहचरी थी और राजीव की बुआ के साथ उसका सुदृढ़ स्नेह बन्धन था।

राजीव की अवस्था क्रमशः सोलह, सत्रह, अठारह, यहां तक कि उन्नीस वर्ष की हो गई; फिर भी बुआ के अनुरोध करने पर भी वह विवाह नहीं करना चाहता था। साहब उसकी इस सुबुद्धि का परिचय पाकर बहुत ही प्रसन्न हुआ। उसने सोचा कि लड़के ने उन्हीं को अपना आदर्श बना लिया है। साहब भी अविवाहित थे।

इस बीच में बुआ भी स्वर्गवासिनी बनी।

इधर ताकत से अधिक व्यय किए बिना महामाया के लिए अनुरूप और योग्य पात्र मिलना कठिन हो रहा था और उसकी कुमारी अवस्था भी क्रमशः बढ़ती ही जा रही थी।

पाठकगणों को यह बताने की आवश्यकता नहीं कि प्रणय-बन्धन में बांधना जिस देवता का काम है, वे यद्यपि इन दोनों के प्रति अब तक बराबर लापरवाही ही दिखा रहे थे; लेकिन प्रणय-बन्धन का बोझ जिस पर है उसने अब तक अपना समय व्यर्थ नहीं किया। वृद्ध प्रजा-वती जिस समय झोंके ले रहे थे। नवयुवक कन्दर्प उस समय पूर्णतया सावधान था।

कामदेव का प्रभाव भिन्न-भिन्न प्रकार से पड़ा करता है। उनके प्रभाव में आकर राजीव अपने मन की दो बातें कहने के लिए पर्याप्त अवसर ढूंढ़ रहा था, पर महामाया उसे अवसर ही नहीं देती थी।

वास्तव में उसकी निस्तब्ध गम्भीर चितवन राजीव के व्यथित हृदय में एक प्रकार का भय पैदा कर देती थी।

आज सैकड़ों बार शपथ लेने के बाद राजीव उसे इस शिवालय के खंडहरों में ला सका। इसी से उसने सोचा कि जो कुछ उसे कहना है, आज सब-कुछ कह-सुन लेगा, इसके बाद या तो जिन्दगी भर सुख में रहेगा और नहीं तो आत्महत्या कर लेगा, जीवन के एक संकटमय दिन में राजीव ने केवल इतना ही कहा—"चलो, विवाह कर लें" और उसके उपरान्त पाठ भूल हुए छात्र के समान सकपकाकर चुप रह गया।

महामाया को मानो यह आशा ही न थी कि राजीव उसके सन्मुख ऐसा प्रस्ताव

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

रख देगा। इससे देर तक वह चुप खड़ी रही।

दोपहरी की बहुत-सी अनिर्दिष्ट करुण ध्वनियां होती हैं, वे सबकी-सब इस सन्नाटे में फूट निकलीं। वायु से शिवालय का आशा हिलता हुआ टूटा द्वार बीच-बीच में बहुत ही क्षीण स्वर में धीरे-धीरे खुलने और बन्द होने लगा। कभी शिवालय के झरोखे में बैठा हुआ कपोत गुटुरगूं-गुटुरगूं करता तो कभी सूखे पल्लवों के ऊपर से सरासर करती हुई गिरगिट निकल जाती तो कभी सहसा मैदान की ओर से वायु का एक जोर का झोंका आता और उससे सब पेड़ों के पत्ते बार-बार आर्त्तनाद कर उठते; बीच-बीच में सहसा नदी का जल जागृत हो जाता और टूटे घाट की सीढ़ियों पर छल-छल, छपक-छपक चोट करने लगता। इस सब अकस्मात उदासी में डूबे हुए अलस शब्दों के बीच बहुत दूरी पर, एक वृक्ष के नीचे किसी गडरिये की बांस की बांसुरी में से मैदानी राग निकल रहा है। राजीव को महामाया के मुख की ओर देखने की हिम्मत नहीं हुई। वह शिवालय की भीत के सहारे स्वप्न की-सी अवस्था में चुपचाप खड़ा-खड़ा सरिता के निर्मल जल की ओर निहारता रहा।

कुछ देर के पश्चात् मुंह फेरकर राजीव ने फिर एक बार भिक्षुक की तरह महामाया के मुख की ओर देखा। महामाया ने उसका आशय समझा, सिर हिलाते हुए कहा—"नहीं, ऐसा नहीं हो सकता।"

महामाया का सिर जैसे ही हिला, वैसे ही राजीव की आशा भी उसी क्षण पृथ्वी पर मूर्छित होकर गिर पड़ी। कारण, राजीव यह भलीभांति जानता था कि महामाया का सिर महामाया के निजी मतानुसार ही हिलता है और किसी की ताकत नहीं कि उसे अपने मत से विचलित कर सके ? अपने कुल का शक्तियुक्त अभिमान-स्रोत महामाया के वंश में न जाने किस काल से बहता चला आ रहा है ? भला आज वह राजीव जैसे अकुलीन ब्राह्मण के साथ विवाह करने के लिए तैयार हो सकती है ? प्यार करना और बात है और विवाह के सूत्र में बंधना और बात। कुछ भी हो महामाया समझ गई है कि उसके अपने ही विचार-व्यवहार के कारण राजीव का घमण्ड यहां तक चढ़ गया है और उसी क्षण वहां से चलने के लिए उद्यत हो गई।

राजीव ने समय एवं परिस्थिती से अवगत होते हुए कहा—"कल ही यहां से चला जा रहा हूं।"

महामाया ने पहले तो विचार किया कि अब उसे ऐसा भाव दिखाना चाहिए कि जहां चाहे रहो, इससे उसे क्या मतलब ? पर दिखा न सकी। पग बढ़ाना चाहा, पर बढ़ा नहीं सकी—उसने शान्त मुद्रा में पूछा—"क्यों ?"

राजीव ने कहा—"हमारे साहब की यहां से सोनपुर के लिए बदली हो गई

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

है, वे जा रहे हैं, सो मुझे भी साथ लेते जायेंगे।"

महामाया का बहुत देर तक मुख न खुल सका। वह सोचती रही, दोनों के जीवन की गति दो ओर है, किसी भी इन्सान को सदैव के लिए नजरबन्द नहीं किया जा सकता। अतः उसने शान्त ओष्ठों को तनिक खोलकर कहा—"अच्छा।"

उसका यह 'अच्छा' कुछ-कुछ गहरी उसास-सी सुनाई दी और इतना ही कह के यह जाने के लिए तैयार हो गई। इतने में राजीव ने चौंककर कहा—"भवानी बाबू।"

महामाया ने देखा, भवानीचरण शिवालय की ओर आ रहे हैं। समझ गई कि उन्हें सब पता लग गया है। राजीव ने महामाया पर अकस्मात मुसीबत आते हुए देखकर, शिवालय की टूटी हुई दीवार फांदकर भागने का प्रयत्न किया; किन्तु महामाया ने हाथ पकड़ कर उसे रोक लिया। भवानीचरण शिवालय के खंडहरों में पहुंचे और सिर्फ एक बार चुपचाप दोनों की ओर स्थिर दृष्टि से देखा।

महामाया ने राजीव की ओर देखते हुए अविचलित स्वर में कहा—"राजीव मैं तुम्हारे घर ही आऊंगी। तुम मेरी राह देखना।"

भवानीचरण चुपचाप शिवालय से बाहर आ गये। महामाया भी चुपचाप उनका अनुकरण करने लगी और राजीव चकित-सा होकर वहीं खड़ा रहा; मानो उसे फांसी का दण्ड सुनाया गया हो।

2

उसी दिन रात को भवानीचरण ने विशेष रेशमी साड़ी लेकर महामाया को दी और बोले—"इसे पहन आओ।"

महामाया उसे पहन आई। उसके बाद बोले—"अब, मेरे साथ चलो।" आज तक भवानीचरण की आज्ञा तो दूर रही, संकेत तक का भी किसी ने उल्लंघन नहीं किया था ? महामाया ने भी नहीं।

उसी रात्रि को दोनों सरिता के तट पर श्मशान भूमि की ओर चल दिये। श्मशान भूमि अधिक दूर नहीं थी। वहां गंगा यात्री के घर में एक बूढ़ा ब्राह्मण अंतिम घड़ियां गिन रहा था। उसकी खटिया के पास दोनों पहुंच कर खड़े हो गये। घर के एक कोने में पुरोहित ब्राह्मण भी मौजूद था। भवानीचरण ने उससे संकेत में कुछ कहा। वह शीघ्र ही शुभानुष्ठान की तैयारियां करके पास आ खड़ा हुआ। महामाया समझ गई कि इस मृत्यु को आलिंगन करने वाले इन्सान के साथ उसका विवाह

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

होगा। उसने रत्ती भर भी विरोध नहीं किया। समीप में ही जलती हुई दो चिताओं के प्रकाश में उस अन्धेरे से घर में मृत्यु की यंत्रणा की आर्त्त-ध्वनि के साथ अस्पष्ट मन्त्रोच्चारण मिलाकर महामाया का पाणिग्रहण संस्कार करा दिया गया।

जिस दिन विवाह हुआ उसके दूसरे दिन ही महामाया विध्वा हो गई। इस दुर्घटना से महामाया को तिल मात्र भी शोक न हुआ और राजीव भी अचानक महामाया के विवाह की सूचना पाकर जैसा दुखी हुआ था, वैधव्य की सूचना से वैसा न हुआ, बल्कि उसे कुछ खुशी ही हुई।

पहले उसने सोचा कि साहब को सूचित कर दे और उसकी सहायता से इस अमानुषिक अत्याचार पर किसी प्रकार प्रतिबन्ध लगा दिया जाये ? तभी विचार आया कि साहब तो सोनपुर जा चुका है। राजीव को भी वह साथ ले जाना चाहता था, पर वह एक मास का अवकाश लेकर यहीं रह गया है।

महामाया ने उसे वचन दिया है—"तुम मेरी राह देखना। उसकी वह किसी प्रकार भी उपेक्षा नहीं कर सकता ? इतने में बड़े जोर की आंधी के साथ मूसलाधार वर्षा होने लगी। आंधी क्या थी, भंयकर तूफान था, राजीव को ऐसा महसूस होने लगा मानों अभी उसके सिर पर मकान ही टूट पड़ेगा। जब उसने देखा कि उसके अन्तःकरण के समान बाह्य-प्रकृति में भी एक प्रकार की प्रलय-सी उठ खड़ी हुई है, तब उसे कुछ-कुछ शान्ति-सी मिली। उसे ऐसा प्रतीत होने लगा कि मानो स्वयं प्रकृति ही आकाश-पाताल एक करके, उससे कहीं अधिक शक्ति का प्रयोग करके उसका काम पूरा कर रही है।

इसी समय बाहर से किसी ने द्वार पर जोर से धक्का मारा, राजीव ने शीघ्रता के साथ द्वार खोला। घर में भीगे वस्त्र पहने हुए एक स्त्री ने प्रवेश किया। चेहरे पर उसके लम्बा अवगुंठन पड़ा हुआ था। राजीव ने उसी क्षण पहचान लिया, यह तो महामाया है। उसने आवेश-भरे स्वर में पूछा—"महामाया ! तुम चिता से उठ आई हो ?"

महामाया ने कहा—"हां ! मैंने तुम्हें वचन दिया था कि मैं तुम्हारे घर आऊंगी ? उसी वचन को पालने के लिए आई हूं; लेकिन राजीव, मैं अब ठीक पहले की तरह नहीं हूं। मेरा सब-कुछ बदल गया है; लेकिन अपने मन में मैं महामाया हूं। अब भी बोलो और यदि वचन दो कि कभी भी तुम मेरा अवगुंठन न हटाओगे, मेरा मुख न निहारोगे तो मैं जीवन-भर तुम्हारे साथ रह सकती हूं।"

मृत्यु के चंगुल से वापस मिल जाना ही बहुत है, उस समय और सब बातें तुच्छ मालूम देती हैं। राजीव ने शीघ्रता से कहा—"तुम जैसे चाहो वैसे रहना। मुझे

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

छोड़ जाओगी तो मैं नहीं रह सकता।"

महामाया ने कहा—"तो अभी चलो। तुम्हारा साहब जहां गया है, वहीं ले चलो मुझे।"

घर में जो कुछ था, सब कुछ छोड़-छाड़कर राजीव महामाया को लेकर उसी प्रकृति के प्रकोप में निकल पड़ा। ऐसा बवंडर चल रहा था कि खड़ा होना मुश्किल था, उसके वेग से कंकड़ियां उड़-उड़कर बन्दूक के छर्रों के समान शरीर में चुभने लगीं। दोनों इस भय से कहीं सिर पर वृक्ष न गिर पड़े, सड़क छोड़कर विस्तृत मैदान में होकर रास्ता पार करने लगे ? बवंडर का जोर पीछे से धकेलने लगा, मानो यह इन्हें इस दुनिया से छीन कर प्रलय की ओर उड़ाये लिए जा रहा हो।

3

पाठक इस कथा को कोरी कवि-कल्पना ही न समझें। जिस दिनों यहां सती की प्रथा प्रचलित थी, उन्हीं दिनों ऐसी घटनाएं कभी-कभी हो जाया करती थीं।

महामाया के हाथ-पैर बांधकर यथासमय चिता में रखकर उसमें आग लगा दी गई थी। आग भी खूब जोरों से जल उठी थी। लेकिन उसी समय बहुत जोर का बवंडर उठा और मूसलाधार वर्षा पड़ने लगी। जो दाह-संस्कार करने आये थे वे शीघ्रता से 'गंगायात्री' वाली कोठरी में जा छिपे और भीतर से द्वार बन्द कर लिया। सभी समझते हैं कि ऐसे आंधी, पानी में चिता बुझने में समय नहीं लगता। इसी बीच में उसके हाथों में बंधा कपड़ा जलकर भस्म हो गया और हाथ खुल गये। असह्य दाह-पीड़ा में मुख से वह कुछ कह न सकी, तुरन्त उठकर बैठ गई और पैर की रस्सी खोल डाली। उसके बाद कई स्थानों से जली हुई साड़ी से देह को छिपाये हुए लगभग नंगी-सी चिता से उठकर पहले वह अपने घर आई। घर में कोई था नहीं ? सब श्मशान में थे। दीपक जलाकर एक धोती पहनकर महामाया ने एक बार दर्पण में अपना चेहरा देखा और दर्पण जमीन पर दे पटका। फिर कुछ देर खड़ी-खड़ी सोचती रही। उसके बाद चेहरे पर लम्बा अवगुंठन किया और राजीव के घर की ओर चल दी। इसके बाद जो कुछ हुआ, सो पाठकों को मालूम ही है।

महामाया अब राजीव के पास ही रहती है; लेकिन राजीव के जीवन में सुख-शान्ति नहीं, दोनों के बीच, केवल अवगुंठन का व्यवधान है।

लेकिन वह अवगुंठन मौन के समान चिर-स्थायी नहीं, अपितु मृत्यु से भी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

बढ़कर पीड़ा उत्पादक है। इसलिए कि निराशा मृत्यु की विरह पीड़ा को धीरे-धीरे अचिंतन रूप प्रदान कर देती है; किन्तु इस अवगुंठन के पृथक रूप ने एक जीती-जागती आशा को प्रतिदिन प्रतिपल व्यथित एवं पीड़ित कर रखा है।

एक तो पहले ही महामाया की शान्त प्रकृति है, उस पर उसके इस अवगुंठन के भीतर नीरवता दुगुनी असह्य-सी प्रतीत होने लगी। राजीव अब ऐसे रहने लगा, जैसे उसे मृत्यु की चलती-फिरती पुतली ने घेर लिया हो। वह पुतली उसके जीवन को आलिंगन करके नित्यप्रति उसे क्षीण करती जा रही है। राजीव पहले जिस महामाया नाम से परिचित था उसे तो उसने खो दिया। अब तो वह केवल उसकी सुन्दर बाल्य-स्मृति पर ही जीवन को अवलम्बित करके इस दुनिया में रह सकता है, परन्तु उसमें भी अवगुंठन युक्त पुतली सदैव उसके पार्श्व में रहकर बाधा पहुंचाती रहती है। वह सोचता है, इंसान इंसान में स्वभाव से ही काफी अन्तर है और खास कर महामाया तो महाभारत के कर्ण के समान स्वाभाविक कवच धनी है। वह अपने स्वभाव के इर्द-गिर्द एक प्रकार का आवरण लेकर जन्मी है। उपरान्त बीच में, फिर मानो वह पुनर्जन्म लेकर और एक आवरण लेकर आई है। रात-दिन साथ रहती हुई भी वह इतनी दूर चली गई है कि मानो राजीव से उस दूरी को पार नहीं किया जाता, मानो वह केवल एक माया की रेखा के बाहर बैठकर अतृप्त तृषित मन से इस सूक्ष्म एवं अटल रहस्य से अवगत होने का प्रयत्न कर रहा है, जैसे तारागण प्रत्येक निशा में नींद रहित निर्निमेष नत नयनों से अन्धकार यामिनी के रहस्य से अवगत होने के निष्फल प्रयास में रात्रि बिना दिया करते हैं। इस प्रकार ये दोनों चिर-परिचित संगरहित साथी भिन्न-भिन्न जीव के रूप में बहुत काल तक साथ बने रहे।

एक दिन, बरसात कें मौसम में, शुक्ल पक्ष की दशमी की रात्रि को बादल फटे और निशिकर ने दर्शन दिये। निशिकर की ज्योत्स्ना से यामिनी सोती हुई पृथ्वी के सिराहने बैठी जागरण कर रही थी। उस यामिनी को देखने बिस्तरे से उठकर राजीव भी झरोखे से पास जा बैठा। बरखा और गर्मी के संगम से थके हुए उपवन में से एक प्रकार की सुगन्ध और झींगुरों की झिन्न-झिन्न की ध्वनि कमरे में आकर उसके मनोराज्य में एक प्रकार की अराजकता व्याप्त कर रही थी। राजीव देख रहा था बगीचे में अंधकार में खड़े हुए वृक्षों के उस पार शान्त स्थिर सरोवर मंजे हुए स्वच्छ रजत-थाल के समान चमक रहा है। इंसान ऐसे समय में स्पष्ट तौर पर कुछ भी सोच सकता है या नहीं, बताना कठिन है। पर हां, इतना अश्वय कहा जा सकता है कि उसका सम्पूर्ण हृदय सिकी एक दिशा की ओर प्रवाहित हुआ है, गन्ध-युक्त

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

उपवन के समान ही एक सुगन्ध से पूर्ण अच्छ्वास छोड़ता रहता है। पता नहीं राजीव ने क्या-क्या विचारा ? उसे प्रतीत हुआ कि मानो आज उसके पहले के सब नियम टूट गये हैं। आज इस बरसात की रात ने उसके समक्ष अपना मेघों का अवगुंठन हटा डाला है और आज की ये यामिनी पहले की उस महामाया के समान निस्तब्ध शून्य और सुगम्भीर हो गई है। होते-होते अकस्मात ऐसा हुआ कि राजीव का ध्यान जीती-जागती पुतली की ओर प्लावित हो गया। स्वान चलिक के समान चलकर राजीव ने महामाया के कमरे में प्रवेश किया। महामाया उस समय निद्रा लोक की सैर कर रही थी।

राजीव उसकी शैया के पास जाकर खड़ा हो गया। मुंह झुकाकर देखा, महामया के अवगुंठन-से हीन चेहरे पर चन्द्रज्योत्स्ना आ पड़ी है, लेकिन ! हाय ! यह क्या ? वह चिरपरिचित पुरुष के समान खिला हुआ चेहरा कहां गया ? चिताग्नि की शिखा अपनी विकराल लहराती हुई जिह्वा से महामाया के बायें कपोल का थोड़ा-सा सौन्दर्य चाटकर वहां सदैव के लिए अपनी राक्षसी भूख का अमिट चिन्ह छोड़ गई है।

शायद राजीव चौंक पड़ा हो। शायद एक अव्यक्त ध्वनि भी उसके कंठ से मुखरित हो गई होगी। महामाया तत्काल आश्चर्य चकितावस्था में जाग उठी। देखा, सामने राजीव खड़ा है। उसी क्षण वह अवगुंठन खींचकर शैया छोड़कर एकदम उठ खड़ी हुई। राजीव ताड़ गया कि अब उसके सिर पर दामिनी टूटना चाहती है। वह फर्श पर गिर पड़ा; और महामाया के चरणों को स्पर्श कर बोला—"मुझे क्षमा करो, महामाया मुझे क्षमा कर दो।"

महमाया कुछ उत्तर न देकर, एक पल के लिए भी पीछे की ओर न हटकर, घर से बाहर निकल गई। राजीव के घर फिर वह कभी नहीं लौटी। उसका कहीं भी पता न चला। इस क्षमाहीन चिर-गमन की क्रोधाग्नि राजीव के सम्पूर्ण जीवन पर सदैव के लिए सुदीर्घ दग्ध-चिन्ह छोड़ गई।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पोस्टमास्टर

पहले-पहल काम शुरू करते ही पोस्टमास्टर को उलापुर गांव आना पड़ा। गांव बहुत साधारण था। पास ही एक नील-कोठी थी। इसीलिए कोठी के स्वामी ने बड़ी कोशिश करके यह नया पोस्टऑफिस खुलवाया था।

हमारे पोस्टमास्टर कलकत्ता के थे। पानी से निकलकर सूखे में डाल देने से मछली की जो दशा होती है, वही दशा इस बड़े गांव में आकर इन पोस्टमास्टर की हुई। एक अन्धेरी आठचला (फूस के अठपहलू छप्पर से ढका बड़ा घर।) में उनका ऑफिस था। उसके पास ही काई से घिरा एक तालाव था, जिसके चारों ओर जंगल था। कोठी में गुमाश्ते वगैरह जितने भी कर्मचारी थे उन्हें अक्सर फुरसत नहीं रहती थी, न वे शिष्टजनों से मिलने-जुलने के योग्य ही थे।

खास तौर से कलकत्ता के बाबू ठीक तरह से मिलना-जुलना नहीं जानते। नई जगह में पहुंचकर वे या तो उद्धत हो जाते हैं या अप्रतिभ। इसलिए स्थानीय लोगों से उनका मेल-जोल नहीं हो पाता। इधर काम भी ज्यादा नहीं था। कभी-कभी एकाध कविता लिखने की कोशिश करते। उनमें इस प्रकार के भाव व्यक्त करते—दिन-भर तरु-पल्लवों का कम्पन और आकाश के बादल देखते-देखते जीवन बड़े सुख से कट जाता है। लेकिन अन्तर्यामी जानते हैं कि यदि अलिफलैला का कोई दैत्य आकर एक ही रात में तरु-पल्लव-समेत इन सारे पेड़-पौधों को काटकर पक्का रास्ता तैयार कर देता और पंक्तिबद्ध अट्टालिकाओं द्वारा बादलों को दृष्टि से ओझल कर देता तो यह मृतप्राय भद्र वंशधर नवीन जीवन-लाभ कर लेता।

पोस्टमास्टर को बहुत कम तनख्वाह मिलती थी। अपने हाथों बनाकर खाना पड़ता और गांव की एक मातृ-पितृ-हीन अनाथ बालिका उनका काम-काज कर देती थी। उसको थोड़ा-बहुत खाना मिल जाता। लड़की का नाम था रतन। उम्र बारह-तेरह। उसके विवाह की कोई विशेष सम्भावना नहीं दिखाई देती थी।

शाम को जब गांव की गोशाला से कुंडलाकार धुआं उठता, झाड़ियों में झींगुर बोलते, दूर के गांव में पियक्कड़ बाउरों का दल ढोल-करताल बजाकर ऊँचे स्वर में गीत छेड़ देता—जब अन्दर बरामदे में अकेले बैठे-बैठे वृक्षों का कम्पन देखकर कवि-हृदय में भी ईषत् हत्कंप होने लगता तब कमरे के कोने में एक टिमटिमाता

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हुआ दिया जलाकर पोस्टमास्टर आवाज लगाते—'रतन'।

रतन दरवाजे पर बैठी इस आवाज की प्रतीक्षा करती रहती। लेकिन पहली आवाज पर ही अन्दर न आती। वहीं से कहती, "क्या है बाबू, किस लिए बुला रहे हो ?"

पोस्टमास्टर—"तू क्या कर रही है।"

रतन—"बस चूल्हा जलाने ही जा रही हूं, रसोईघर में।"

पोस्टमास्टर—"तेरा रसाई का काम पीछे हो जायगा। पहले हुक्का भर ला !"

थोड़ी देर में अपने गाल फुलाए चिलम में फूंक मारती-मारती रतन भीतर आती। उसके हाथ से हुक्का लेकर पोस्टमास्टर चट से पूछ बैठते, "अच्छा रतन, तुझे अपनी मां की याद है ?"

बड़ी लम्बी बातें हैं, बहुत-सी याद हैं, बहुत-सी याद भी नहीं। मां की अपेक्षा पिता उसको अधिक प्यार करते थे। पिता की उसे थोड़ी-थोड़ी याद है। दिन-भर मेहनत करके उसके पिता शाम को घर लौटते। भाग्य से उन्हीं में से दो-एक शामों की याद उसके मन में चित्र के समान अंकित है। उन्हीं की बात करते-करते धीरे-धीरे रतन पोस्टमास्टर के पास ही जमीन पर बैठ जाती। उसे ध्यान आता, उसका एक भाई था। बहुत दिन पहले बरसात में एक दिन एंक तालाब के किनारे दोनों ने मिलकर पेड़ की टूटी हुई टहनी की बंसी बनाकर झूठ-मूठ मछली पकड़ने का खेल खेला था। अनेक महत्त्वपूर्ण घटनाओं की अपेक्षा इसी बात की याद उसे अधिक आती। इस तरह बातें करते-करते कभी-कभी काफी रात हो जाती। तब आलस के मारे पोस्टमास्टर को खाना बनाने की इच्छा न होती। सवेरे ही बासी तरकारी रहती और रतन झटपट चूल्हा जलाकर कुछ रोटियां सेक लेती। उन्हीं से दोनों के रात्रि-भोजन का काम चल जाता। कभी-कभी शाम को उस बृहत् आठचला के एक कोने में ऑफिस की काठ की कुर्सी पर बैठे-बैठे पोस्टमास्टर भी अपने घर की बात चलाते—छोटे भाई की बात, मां और दीदी की बात, प्रवास में एकान्त कमरे में बैठकर जिन लोगों के लिए हृदय कातर हो उठता उनकी बात। जो बातें उनके मन में बार-बार उदय होती रहतीं, पर जो नील-कोठी के गुमाश्तों के सामने किसी भी तरह नहीं उठाई जा सकती थीं, उन्हीं बातों को उस अनपढ़ नन्हीं बालिका से कहते उन्हें बिलकुल संकोच न लगता। अन्त में ऐसा हुआ कि बालिका बातचीत करते समय उनके घर वालों को चिरपरिचितों के समान खुद भी मां, दादा, दीदी कहने लगी। यहं तक कि अपने नन्हें-से हृदय-पट पर उसने उनकी काल्पनिक मूर्ति भी चित्रित कर ली थी।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

एक दिन बरसात की दोपहर में बादल छंट गये थे और हल्का-सा ताप लिये सुकोमल हवा चल रही थी। धूप में नहाई घास से और पेड़-पौधों से एक प्रकार की गन्ध निकल रही थी; ऐसा लगता था कि मानो क्लान्त धरती का उष्ण निःश्वास अंगों को छू रहा हो और न जाने कहां का एक हठी पक्षी दोपहर-भर प्रकृति के दरबार में लगातार एक लय से अत्यन्त करुण स्वर में अपनी नालिश दुहरा रहा था। उस दिन पोस्टमास्टर के हाथ खाली थे। वर्षा से धुले लहलहाते चिकने मृदुल तरु-पल्लव और धूप में चमकते पराजित वर्षा के भग्नावशिष्ट स्तूपाकार बादल सचमुच देखने योग्य थे।

पोस्टमास्टर उन्हें देखते जाते और सोचते जाते कि इस समय यदि कोई आत्मीय अपने पास होता, हृदय के साथ एकान्त संलग्न कोई स्नेह की प्रतिमा मानव-मूर्ति। धीरे-धीरे उन्हें ऐसा लगा मानो वह पक्षी भी बार-बार यही कह रहा हो और मानो उस निर्जन में तरु-छाया में डूबी दोपहर के पल्लव-मर्मर का भी कुछ ऐसा ही अर्थ हो। न तो कोई विश्वास कर सकता, न जान पाता, लेकिन उस छोटे-से गांव के सामन्य वेतन-भोगी उस सब-पोस्टमास्टर के मन में छुट्टी के लम्बे दिनों में गम्भीर सुनसान दोपहर में इसी प्रकार के भाव उदय होते रहते।

पोस्टमास्टर ने एक दीर्घ निःश्वास लिया और फिर आवाज लगाई, "रतन !"

रतन उस समय अमरूद के पेड़ के नीचे पैर फैलाए कच्चा अमरूद खा रही थी। वह मालिक की आवाज सुनते ही तुरन्त दौड़ी हुई आई और हांफती-हांफती बोली, "भैयाजी, बुला रहे थे ?"

पोस्टमास्टर ने कहा, "मैं तुझे थोड़ा-थोड़ा करके पढ़ना सिखाऊंगा।" और फिर दोपहर-भर उसके साथ 'छोटा अ', 'बड़ा अ' करते रहे। इस तरह कुछ दिनों में संयुक्त अक्षर भी पार कर लिए।

सावन का महीना था। लगातार वर्षा हो रही थी। गढ्ढे, नाले, तालाब सब पानी से भर गए थे। रात-दिन मेंढ़क की टर्र-टर्र और वर्षा की आवाज। गांव के रास्तों में चलना-फिरना लगभग बन्द हो गया था। हाट के लिए नाव में चढ़कर जाना पड़ता।

एक दिन सवेरे से ही बादल खूब घिरे हुए थे। पोस्टमास्टर की शिष्या बड़ी देर से दरवाजे के पास बैठी प्रतीक्षा कर रही थी, लेकिन और दिनों की तरह जब यथासमय उसकी बुलाहट न हुई तो वह खुद किताबों का थैला लिये धीरे-धीरे भीतर आई। देखा, पोस्टमास्टर अपनी खटिया पर लेटे हुए हैं। यह सोचकर कि वे आराम कर रहे हैं, वह चुपचाप फिर बाहर जाने लगी। तभी अचानक सुनाई पड़ा, 'रतन !'

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

झटपट लौटकर भीतर जाकर उसने कहा, "भैयाजो, सो रहे थे ?"

पोस्टमास्टर ने कातर स्वर में कहा, "तबियत ठीक नहीं मालूम होती। जरा मेरे माथे पर हाथ रखकर तो देख !"

घोर वर्षा के समय प्रवास में इस तरह बिलकुल अकेले रहने पर रोग से पीड़ित शरीर को कुछ सेवा पाने की इच्छा होती है। तप्त ललाट पर शंख की चूड़ियां पहने कोमल हाथ याद आने लगते हैं। ऐसे कठिन प्रवास में रोग की पीड़ा में यह सोचने की इच्छा होती है कि पास ही स्नेहमयी नारी के रूप में माता और दीदी बैठी हैं; और प्रवासी के मन की यह अभिलाषा व्यर्थ नहीं गई। बालिका रतन बालिका न रही। उसने फौरन माता का पद ग्रहण कर लिया। वह जाकर वैद्य को बुला लाई, यथासमय गोली खिलाई, सारी रात सिरहाने बैठी रही, अपने हाथों पथ्य तैयार किया और सैकड़ों बार पूछती रही, "भैयाजी, कुछ आराम है क्या ?"

बहुत दिनों बाद पोस्टमास्टर जब रोग-शैया छोड़कर उठे तो उनका शरीर दुर्बल हो गया था। उन्होंने मन में तय किया, अब और नहीं। जैसे भी हो अब यहां से बदली करानी चाहिए। अपनी अस्वस्थता का उल्लेख करते हुए उन्होंने उसी समय अधिकारियों के पास बदली के लिए कलकत्ता दरख्वास्त भेज दी।

रोगी की सेवा से छुट्टी पाकर रतन ने दरवाजे के बाहर फिर अपने स्थान पर अधिकार जमा लिया। लेकिन अब पहले की तरह उसकी बुलाहट नहीं होती थी। वह बीच-बीच में झांककर देखती—पोस्टमास्टर बड़े ही अनमने भाव से या तो कुर्सी पर बैठे रहते या खाट पर लेटे रहते। जिस समय इधर रतन बुलाहट की प्रतीक्षा में रहती, वे अधीर होकर अपनी दरख्वास्त के उत्तर की प्रतीक्षा करते रहते। दरवाजे के बाहर बैठी रतन ने हजारों बार अपना पुराना पाठ दुहराया। बाद में यदि किसी दिन सहसा उसकी बुलाहट हुई तो उस दिन कहीं उसका संयुक्त अक्षरों का ज्ञान गड़बड़ न हो जाय इसकी उसे आशंका थी। आखिर लगभग एक सप्ताह के बाद एक दिन शाम को उसकी पुकार हुई। कांपते हृदय से उसने भीतर प्रवेश किया और पूछा, "भैयाजी, मुझे बुलाया था?"

पोस्टमास्टर ने कहा, "रतन, मैं कल ही चला जाऊंगा।"

रतन—"कहां चले जाओगे भैयाजी !"

पोस्टमास्टर—"घर जाऊंगा।"

रतन—"फिर कब लौटोगे ?"

पोस्टमास्टर—"अब नहीं लौटूंगा।"

रतन ने और कोई बात नहीं पूछी। पोस्टमास्टार ने स्वयं ही उसे बताया कि

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

उन्होंने बदली के लिए दरख्वास्त दी थी, पर दरख्वास्त नामंजूर हो गई इसलिए वे इस्तीफा देकर घर चले जा रहे हैं। बहुत देर तक दोनों में से किसी ने और कोई बात नहीं की। दीया टिमटिमाता रहा और घर के जीर्ण छप्पर को भेदकर वर्षा का पानी मिट्टी के सकोरे में टप-टप करता टपकता रहा।

बड़ी देर के बाद रतन धीरे-धीरे उठकर रसोईघर में रोटियां बनाने चली गई। पर आज और दिनों की तरह उसके हाथ जल्दी-जल्दी नहीं चल रहे थे। शायद उसके मन में रह-रहकर तरह-तरह की आशंकाएं उठ रही थीं। जब पोस्टमास्टर भोजन कर चुके तब उसने पूछा, "भैयाजी, मुझे अपने घर ले चलोगे ?"

पोस्टमास्टर ने हंसकर कहा, "वाह, यह कैसे हो सकता है !" किन कारणों से यह बात सम्भव न थी, बालिका को यह समझाना उन्होंने आवश्यक नहीं समझा।

रात-भर जागते और स्वप्न देखते हुए बालिका के कानों में पोस्टमास्टर के हंसी-मिश्रित स्वर गूंजते रहे : 'वाह, यह कैसे हो सकता है।'

सवेरे उठकर पोस्टमास्टर ने देखा कि उनके नहाने के लिए पानी पहले से ही रख दिया गया है। कलकत्ता की अपनी आदत के अनुसार वे ताजे पानी से ही स्नान करते थे। न जाने क्यों बालिका यह नहीं पूछ सकी थी कि वे सवेरे किस समय यात्रा करेंगे। बाद में कहीं तड़के ही जरूरत न पड़ जाय, यह सोचकर रतन उतनी रात में ही नदी से उनके नहाने के लिए पानी भरकर ले आई थी। स्नान समाप्त होते ही रतन की पुकार हुई। रतन ने चुपचाप भीतर प्रवेश किया और आदेश की प्रतीक्षा में मौन भाव से एक बार अपने मालिक की ओर देखा।

मालिक ने कहा, "रतन, मेरी जगह जो सज्जन आयेंगे मैं उन्हें कह जाऊंगा। वे मेरी ही तरह तेरी देख-भाल करेंगे। मेरे जाने से तुझे कोई चिन्ता करने की जरूरत नहीं है।" इसमें कोई सन्देह नहीं कि ये बातें अत्यन्त स्नेहपूर्ण और दयार्द्र हृदय से निकली थीं, किन्तु नारी के हृदय को कौन समझ सकता है ! रतन इसके पहले बहुत बार अपने मालिक के हाथों अपना तिरस्कार चुपचाप सहन कर चुकी थी, लेकिन इस कोमल बात को वह सहन न कर पाई। उसका हृदय एकाएक उमड़ आया और उसने रोते-रोते कहा, "नहीं-नहीं। तुम्हें किसी से कुछ कहने की जरूरत नहीं है, मैं रहना नहीं चाहती।"

पोस्टमास्टर ने रतन का ऐसा व्यवहार पहले कभी नहीं देखा था, इसलिए वे अवाक् रह गए।

नया पोस्टमास्टर आया। उसको सारा चार्ज सौंप देने के बाद पुराने पोस्टमास्टर चलने को तैयार हुए। चलते-चलते रतन को बुलाकर बोले, "रतन, तुझे मैं कभी कुछ

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

न दे सका, आज जाते समय कुछ दिये जा रहा हूं, इससे कुछ दिन तेरा काम चल जायगा।"

तनख्वाह में जो रुपये मिले थे उनमें से राह-खर्च के लिए कुछ बचा लेने के बाद उन्होंने बाकी रुपये जेब से निकाले। यह देखकर रतन धूल में लोटकर उनके पैरों से लिपटकर बोली, "भैयाजी, मैं तुम्हारे पैरों पड़ती हूं, मेरे लिए किसी को कोई चिन्ता करने की जरूरत नहीं।" और यह कहते-कहते वह तुरन्त वहां से भाग गई।

भूतपूर्व पोस्टमास्टर दीर्घ निःश्वास लेकर हाथ में कारपेट का बैग लटकाए, कन्धे पर छाता रखे, कुली के सिर पर नीली-सफेद धारियों से चित्रित टीन की पेटी रखवाकर धीरे-धीरे नाव की ओर चल दिए।

जब वे नौका पर सवार हो गए और नाव चल पड़ी, वर्षा से उमड़ी नदी धरती की छलछलाती अश्रु-धारा के समान चारों ओर छलछल करने लगी, तब वे अपने हृदय में एक तीव्र व्यथा अनुभव करने लगे। एक साधारण ग्रामीण बालिका के करुण मुख का चित्र मानो विश्व-व्यापी बृहत् अव्यक्त मर्म-व्यथा प्रकट करने लग गया।

एक बार बड़े जोर से उनकी इच्छा हुई कि लौट जायं और जगत् की गोद से वंचित उस अनाथिनी को साथ ले आयं। लेकिन तब तक पाल में हवा भर गई थी, वर्षा का प्रवाह और भी तेज हो गया था। गांव को पार कर चुकने के बाद नदी-किनारे का श्मशान दिखाई दे रहा था और नदी की धारा के साथ बढ़ते हुए पथिक के उदास हृदय में यह सत्य उदित हो रहा था—'जीवन में न जाने कितना वियोग है, कितना मरण है, लौटने से क्या लाभ ! संसार में कौन किसका है !'

लेकिन रतन के हृदय में किसी भी सत्य का उदय नहीं हुआ। वह उस पोस्ट ऑफिस के चारों ओर चुपचाप आंसू बहाती चक्कर काटती रही। शायद उसके मन में हल्की-सी आशा जीवित थी कि हो सकता है, भैयाजी लौट आयं। आशा के इसी बन्धन से बंधी वह किसी भी तरह दूर नहीं जा पा रही थी।

हाय रे बुद्धिहीन मानव-हृदय ! तेरी भ्रान्ति किसी भी तरह नहीं मिटती। युक्ति-शास्त्र का तर्क बड़ी देर बाद मस्तिष्क में प्रवेश करता है। प्रबल-से-प्रबल प्रमाण पर भी अविश्वास करके मिथ्या आशा को अपनी दोनों बांहों से जकड़ कर तू भरसक छाती पर चिपकाए रहता है। अन्त में एक दिन सारी नाड़ियां काटकर, हृदय का सारा रक्त चूसकर वह निकल भागती है। तब होश आते ही मन किसी दूसरी भ्रान्ति के जाल में बंध जाने के लिए व्याकुल हो उठता है।

●

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

एक रात

सुरबाला के संग एक ही पाठशाला में पढ़ा हूं, और बउ-बउ* खेला हूं। उसके घर जाने पर सुरबाला की मां मेरा बड़ा दुलार करतीं और हम दोनों को साथ बिठाकर आपस में कहतीं, 'वाह, कितनी सुन्दर जोड़ी है।'

छोटा था, किन्तु बात का अभिप्राय प्रायः समझ लेता था। सुरबाला पर अन्य सर्वसाधारण की अपेक्षा मेरा कुछ विशेष अधिकार था, यह धारणा मेरे मन में बद्धमूल हो गई थी। इस अधिकार-मद से मत्त होकर उस पर मैं शासन और अत्याचार न करता होऊं, ऐसी बात न थी। वह भी सहष्णुभाव से हर तरह मेरी फरमाइश पूरी करती और दंड वहन करती। मुहल्ले में उसके रूप की प्रशंसा थी, किन्तु बर्बर बालक की दृष्टि में उस सौन्दर्य का कोई महत्त्व नहीं था—मैं तो बस यही जानता था कि सुरबाला ने अपने पिता के घर में मेरा प्रभुत्व स्वीकार करने के लिए ही जन्म लिया है, इसीलिए वह विशेष रूप से मेरी अवहेलना की पात्री है।

मेरे पिता चौधरी जमींदार के नायब थे। उनकी इच्छा थी, मेरे काम करने योग्य होते ही मुझे जमींदारी-सरिश्ते का काम सिखाकर कहीं गुमाश्तागिरी दिला दें। किन्तु, मैं मन-ही-मन इसका विरोधी था। हमारे मुहल्ले के नीलरतन जिस तरह भागकर कलकत्ता में पढ़ना-लिखना सीखकर कलक्टर साहब के नाजिर हो गए थे उसी तरह मेरे जीवन का लक्ष्य भी अत्युच्च था—'कलक्टर का नाजिर न बन सका तो जजी अदालत का हेड क्लर्क हो जाऊंगा,' मैंने मन-ही-मन निश्चय कर लिया था।

मैं हमेशा देखता कि मेरे पिता इन अदालतजीवियों का बहुत सम्मान करते थे—अनेक अवसरों पर मछली-तरकारी, रुपये-पैसे से उनकी पूजार्चना करनी पड़ती, यह बात भी मैं बाल्यावस्था से ही जानता था; इसलिए मैंने अदालत के छोटे कर्मचारी, यहां तक कि हरकारों को भी अपने हृदय में बड़े सम्मान का स्थान दे रखा था। ये हमारे बंगाल के पूज्य देवता थे, तेतीस कोटि देवताओं के छोटे-छोटे नवीन संस्करण। कार्य-सिद्धि-लाभ के सम्बन्ध में स्वयं सिद्धिदाता गणेश की अपेक्षा इनके प्रति लोगों में आन्तरिक निर्भरता कहीं अधिक थी, अतएव पहले गणेश को जो कुछ प्राप्त होता था वह आजकल इन्हें मिलता था।

नीलरतन के दृष्टांत से उत्साहित होकर मैं एक दिन विशेष सुविधा पाकर

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कलकत्ता भाग गया। पहले तो गांव के एक परिचित व्यक्ति के घर ठहरा, उसके बाद पढ़ाई के लिए पिता से भी थोड़ी-बहुत सहायता मिलने लग गई। पढ़ना-लिखना नियमपूर्वक चलने लगा।

इसके अतिरिक्त मैं सभा-समितियों में भी योग देता। देश के लिए प्राण-विसर्जन करने को तत्काल आवश्यकता है, इस विषय में मुझे कोई सन्देह न था। किन्तु, यह दुस्साध्य कार्य किस प्रकार किया जा सकता है, यह मैं नहीं जानता था; न इसका कोई दृष्टांत ही दिखाई पड़ता था। पर इससे मेरे उत्साह में कोई कमी नहीं आई। हम देहाती थे, कम उम्र में ही प्रौढ़ बुद्धि रखने वाले कलकत्ता वालों की तरह हर चीज का मजाक उड़ाना हमने नहीं सीखा था; इसलिए हम लोगों की निष्ठा अत्यन्त दृढ़ थी। हमारी सभा के कार्यकर्ता व्याख्यान देते, और हम लोग चन्दे की किताब लेकर भूखे-प्यासे दोपहर की धूप में दर-दर भीख मांगते फिरते, किनारे खड़े होकर विज्ञापन बांटते, सभा-स्थल में जाकर बेंच-कुर्सी लगाते, दलपति के बारे में किसी के कुछ कहने पर कमर बांधकर मार-पीट करने पर उतारू हो जाते। शहर के लड़के हमारे ये लक्षण देखकर हमें गंवार कहते।

आया तो था नाजिर सरिश्तेदार बनने, पर मैजिनी, गैरीबाल्डी बनने की तैयारी करने लग गया।

इसी समय मेरे पिता और सुरबाला के पिता ने एकमत होकर सुरबाला के साथ मेरा विवाह कर देने का निश्चय किया।

मैं पन्द्रह वर्ष की अवस्था में कलकत्ता भाग आया था, उस सयम सुरबाला की अवस्था आठ वर्ष थी; अब मैं अठारह वर्ष का था। पिता के अनुसार मेरे विवाह की आयु धीरे-धीरे निकली जा रही थी। पर मैंने मन-ही-मन यह प्रतिज्ञा कर ली थी कि आजीवन अविवाहित रहकर स्वदेश के लिए मर मिटूंगा। मैंने पिता से कहा, 'पढ़ाई पूरी किये बिना मैं विवाह नहीं कर सकता।'

दो-चार महीने के बाद ही खबर मिली कि वकील रामलोचन बाबू के साथ सुरबाला का विवाह हो रहा है। मैं तो पतित भारत की चंदा-वसूली के काम में व्यस्त था, मुझे यह समाचार अत्यन्त तुच्छ मालूम पड़ा।

एन्ट्रेंस पास कर लिया था, फर्स्ट ईयर आर्ट्स में जाने का विचार था कि तभी पिता की मृत्यु हो गई। परिवार में मैं अकेला नहीं था; माता थीं और दो बहनें। अतएव कॉलेज छोड़कर काम की तलाश में निकलना पड़ा। बहुत कोशिशों के बाद नोआखाली डिवीजन के एक छोटे-से शहर के एन्ट्रेंस स्कूल में असिस्टेंट मास्टर का पद मिला।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सोचा, 'मेरे उपयुक्त काम मिल गया। उपदेश तथा उत्साह प्रदान करके प्रत्येक विद्यार्थी को भावी भारत का सेनापति बना दूंगा।'

काम आरम्भ कर दिया। देखा, भारतवर्ष के भविष्य की अपेक्षा आसन्न इम्तहान की चिन्ता कहीं ज्यादा की जाती थी। छात्रों को ग्रामर और एलजेबरा के बाहर की कोई बात बताते ही हेडमास्टर नाराज हो जाते। दो-तीन महीने में मेरा उत्साह ठंडा पड़ गया।

हमारे-जैसे प्रतिभाहीन लोग घर में बैठकर तो अनेक प्रकार की कल्पनाएं करते रहते हैं, पर अन्त में कर्म-क्षेत्र में उतरते ही कन्धे पर हल का बोझ ढोते हुए पीछे से पूंछ मरोड़ी जाने पर भी सिर झुकाएं सहिष्णु भाव से प्रतिदिन खेत गोड़ने का काम कर सन्ध्या को भरपेट चारा पाकर ही सन्तुष्ट रहते हैं; फिर कूद-फांद करने का उत्साह नहीं बचता।

आग लगने के डर से एक-न-एक मास्टर को स्कूल में ही रहना पड़ता। मैं अकेला था, इसलिए यह भार मेरे ही ऊपर आ पड़ा। स्कूल के बड़े आठचला से सटी हुई झोंपड़ी में मैं रहता।

स्कूल बस्ती से कुछ दूर एक बड़ी पुष्करिणी के किनारे था। चारों ओर सुपारी, नारियल और मदार के पेड़ तथा स्कूल से लगे आपस में सटे हुए नीम के दो पुराने विशाल पेड़ छाया देते रहते।

अभी तक मैंने एक बात का उल्लेख नहीं किया, ने मैंने उसे इस योग्य ही समझा। यहां के सरकारी वकील रामलोचन राय का घर हमारे स्कूल के पास ही था। और उनके साथ उनकी स्त्री मेरी बाल्य-सखी सुरबाला थी, यह मैं जानता था।

रामलोचन बाबू के साथ मेरा परिचय हुआ। सुरबाला के साथ मेरा बचपन में परिचय था यह रामलोचन बाबू जानते थे या नहीं, मैं नहीं जानता। मैंने भी नया परिचय होने के कारण उस विषय में कुछ कहना उचित न समझा। यही नहीं सुरबाला किसी समय मेरे जीवन के साथ किसी रूप में जुड़ी हुई थी, यह बात मेरे मन में ठीक तरह से उठी ही नहीं।

एक दिन छुट्टी के रोज रामलोचन बाबू से भेंट करने उनके घर गया था। याद नहीं किस विषय पर बातचीत हो रही थी, शायद वर्तमान भारतवर्ष की दुरवस्था के सम्बन्ध में। यह बात न थी कि वे इसके लिए विशेष चिंतित और उदास थे, किन्तु विषय ऐसा था कि हुक्का पीते-पीते उस पर एक डेढ़ घंटे तक यों ही शौकिया दुःख प्रकट किया जा सकता था।

तभी बगल के कमरे से चूड़ियों की हल्की-सी खनखनाहट, साड़ी की

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सरसराहट और पैरों की भी कुछ आहट सुनाई पड़ी। मैं अच्छी तरह समझ गया कि जंगले की संघ में कोई कुतूहलपूर्ण आंखें मुझे देख रही थी।

मुझे तत्काल वे आंखें याद हो आईं—विश्वास, सरलता और बालसुलभ प्रीति से छलछलाती दो बड़ी-बड़ी आंखें, काली-काली पुतलियां, घनी काली पलकें और स्थिर स्निग्ध दृष्टि। सहसा मेरे हृत्पिंड को मानो किसी ने अपनी कड़ी मुट्ठी में भींच लिया। वेदना से मेरा अन्तर झनझना उठा।

लौटकर घर आ गया, किन्तु वह व्यथा बनी रही। पढ़ना-लिखना, जो भी करता किसी तरह मन का भार दूर न हो पाता, मन सहसा एक भारी बोझ के समान हृदय की शिराओं को पकड़कर झूलने लग गया।

सन्ध्या समय मैं कुछ शान्त-चित्त होकर सोचने लगा कि आखिर ऐसा हुआ क्यों। उत्तर में मन बोल उठा, 'तुम्हारी वह सुरबाला कहां गई ?'

मैंने प्रत्युत्तर दिया, 'मैंने तो उसे स्वेच्छा से ही छोड़ दिया था। वह क्या चिरकाल तक मेरे लिए बैठी रहती।'

मन के भीतर से कोई बोला, 'उस समय जिसे चाहते ही पा सकते थे अब उसे सिर पटककर मर जाने पर भी एक बार देखने तक का अधिकार तुम्हें नहीं मिल सकता। बाल्यावस्था की वह सुरबाला तुम्हारे कितने ही निकट क्यों न रहे, चाहे तुम उसकी चूड़ियों की खनक सुनते रहो, उसके बालों की सुगन्ध की महक पाते रहो, किन्तु तुम्हारे बीच में एक दीवार बराबर बनी रहेगी।'

मैंने कहा, 'जाने भी दो, सुरबाला मेरी कौन है।'

उत्तर मिला, 'आज सुरबाला तुम्हारी कोई नहीं है, लेकिन सुरबाला तुम्हारी क्या नहीं हो सकती थी ?'

सच बात है, सुरबाला मेरी क्या नहीं हो सकती थी। जो मेरी सबसे अधिक अंतरंग, सबसे निकटवर्त्तिनी, मेरे जीवन के समस्त सुख-दुःख की समभागिनी हो सकती थी—वह अब इतनी दूर, इतनी पराई हो गई है कि आज उसको देखना भी निषिद्ध है, उससे बात करना अपराध है, उसके विषय में सोचना पाप है; और यह रामलोचन न जाने कहां से आ धमका, बस दो-एक रटे-रटाए मन्त्र पढ़कर सुरबाला को पलक मारते ही एक झपट्टे में धरती के और सब लोगों से छीन ले गया।

मैं मानव-समाज में किसी नई नीति का प्रचार करने नहीं बैठा हूं, न समाज-भंग करने आया हूं, बन्धन तोड़ना भी नहीं चाहता। मैं तो बस अपने मन का प्रकृत भाव व्यक्त कर रहा हूं। हमारे मन में जो भाव उदित होते हैं, वे क्या सबके-सब तर्कसंगत होते हैं। रामलोचन के घर की दीवार की आड़ में जो सुरबाला

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

विराजमान थी वह रामलोचन की भी अपेक्षा मेरी अधिक थी, यह बात मैं किसी भी प्रकार मन से नहीं निकाल पाता था। इस प्रकार का विचार नितान्त असंगत और अन्याय युक्त था, यह स्वीकार करता हूं, किन्तु अस्वाभाविक नही था।

तब से और किसी भी काम में मन एकाग्र नहीं कर सका। दोपहर के समय क्लास में जब छात्र गुनगुनाते रहते, बाहर सन्नाटा छाया रहता, हल्की उत्तप्त वायु नीम की पुष्प-मंजरियों की सुगन्ध वहन कर लाती, तब इच्छा होती—क्या इच्छा होती नहीं जानता—बस, इतना कह सकता हूं कि भारतवर्ष के इन समस्त भावी आशास्पदों के व्याकरण की झूलों का संशोधन करते हुए जीवन-यापन करने की इच्छा न होती।

स्कूल की छुट्टी हो जाने पर अपने बड़े कमरे में अकेले मन न लगता, किन्तु किसी सज्जन के मिलने आने पर भी असह्य लगता। सन्ध्या समय पुष्करिणी के किनारे सुपारी-नारियल के वृक्षों की अर्थहीन मर्मर ध्वनि सुनते-सुनते सोचता, 'मनुष्य-समाज एक जटिल भ्रम-जाल है। ठीक समय पर ठीक काम करना किसी को नहीं सूझता, बाद में अनुपयुक्त समय पर अनुचित वासना लेकर अस्थिर होकर मर जाता है।'

'तुम्हारे जैसा आदमी सुरबाला का पति होकर वृद्धावस्था पर्यंत बड़े सुख से रह सकता था; तुम होने तो चले थे गैरीबाल्डी, और अन्त में हुए एक देहाती स्कूल के असिस्टेंट मास्टर ! और रामलोचन राय वकील, जिसे विशेष रूप से सुरबाला का ही पति होना कोई खास आवश्यक नहीं था; विवाह के एक मुहूर्त्त पहले तक जिसके लिए जैसी सुरबाला थी वैसी ही भवशंकरी, अब निश्चिन्त होकर विवाह करके सरकारी वकील बनकर अच्छा खासा रोजगार करने लगा। जिस दिन दूध में धुएं की बू आती, वह सुरबाला को डांट देता और जिस दिन उसका मन प्रसन्न रहता उस दिन सुरबाला के लिए गहने बनवा देता। अपनी मोटी थलथल देह पर अचकन डाटे वह परम सन्तुष्ट रहता; वह कभी भी तालाब के किनारे बैठकर आकाश के तारों की ओर देखता हुआ आहें भरते हुए सन्ध्या नहीं बिताता था।'

एक बड़े मुकदमे में रामलोचन कुछ दिन के लिए बाहर गया था। अपने स्कूल-भवन में मैं जिस तरह अकेला था, कदाचित् उस दिन सुरबाला भी अपने घर में उसी तरह अकेली थी।

मुझे याद है, उस दिन सोमवार था। सवेरे से ही आकाश में बादल छाए थे। दस बजे से टप्-टप् करके वर्षा शुरू हो गई थी। आकाश की दशा देखकर हेडमास्टर ने जल्दी छुट्टी कर दी। काले-काले मेघ-खंड जैसे किसी विराट् आयोजन के लिए सारे

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

दिन आकाश-भर में गमनागमन करते घूम रहे थे। दूसरे दिन तीसरे पहर से मूसलाधार वृष्टि होनी शुरू हुई और साथ-साथ आंधी चलने लगी। ज्यों-ज्यों रात होने लगी वर्षा और आंधी का वेग भी बढ़ने लगा। पहले पुरवैया चल रही थी, फिर उत्तर तथा उत्तरपूर्व की ओर से हवा बहने लगी।

उस रात सोने का प्रयत्न करना व्यर्थ था। खयाल आया, 'इस दुर्योग के समय सुरबाला घर में अकेली है !' हमारा स्कूल-भवन उसके घर की अपेक्षा कहीं अधिक मजबूत था, कई बार मन में आया, 'उसे स्कूल-भवन में बुला लाऊं और मैं पुष्करिणी के किनारे रात्रि बिता लूं।' किन्तु किसी भी तरह निश्चय नहीं कर पाया।

रात एक-डेढ़ पहर गई होगी कि सहसा बाढ़ आने की आवाज सुनाई पड़ी। समुद्र बढ़ा चला आ रहा था। घर से बाहर निकला। सुरबाला के घर की ओर चला। रास्ते में अपनी पुष्करिणी का किनारा पड़ा—वहां तक आते-आते पानी मेरे घुटनों तक पहुंच गया था। मैं ज्यों ही किनारे पर जाकर खड़ा हुआ त्यों ही एक और तरंग आ पहुंची।

हमारे तालाब के किनारे का एक हिस्सा लगभग दस-ग्यारह हाथ ऊँचा था। जिस समय मैं किनारे पर चढ़ा उसी समय विपरीत दिशा से एक और व्यक्ति भी चढ़ा। व्यक्ति कौन था यह सिर से लेकर पैर तक मेरी सम्पूर्ण अन्तरात्मा समझ गई थी। और उसने भी मुझे पहचान लिया था इसमें मुझे सन्देह नहीं।

और तो सब-कुछ जलमग्न हो गया था, केवल पांच-छह हाथ के उस द्वीप पर हम दोनों प्राणी आकर खड़े हुए थे।

प्रलय काल था, आकाश में तारों का प्रकाश नहीं था और धरती के सब प्रदीप बुझ गए थे—उस समय कोई बात करने में भी हानि नहीं थी—किन्तु एक भी शब्द न निकला। एक-दूसरे से कुशल-प्रश्न भी नहीं किया।

दोनों केवल अन्धकार की ओर ताकते रहे। पैरों के नीचे गाढ़ कृष्णवर्णी उन्मत्त मृत्यु-स्रोत गर्जन करता हुआ बढ़ चला।

आज समस्त विश्व छोड़कर सुरबाला मेरे पास आकर खड़ी थी। मुझे छोड़कर आज सुरबाला का कोई नहीं था। कब के बीते हुए उस शैशव-काल में सुरबाला किसी जन्मान्तर के बाद किसी प्राचीन रहस्यान्धकार पर उतरती हुई इस सूर्य चन्द्रालोकित जनाकीर्ण पृथ्वी के ऊपर मेरी ही बगल में आकर खड़ी हुई थी; और आज कितने दिनों के बाद उसी आलोकमय जनपूर्ण जगत् को छोड़कर इस भयंकर जन-शून्य प्रलयान्धकार में एकाकिनी सुरबाला मेरे ही निकट आकर उपस्थित हुई। जन्म-स्रोत ने उस नवकलिका को मेरे पास लाकर फेंक दिया था, मृत्यु-स्रोत से उस

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

विकसित पुष्प को भी मेरे पास ला फेंका—इस समय केवल एक और लहर के आते ही धरती के इस प्रदेश से, विच्छेद के इस वृन्त से छटकर हम दोनों एक हो जाते।

वह लहर न आवे। पति-पुत्र, घर-धन-जन को लेकर सुरबाला चिरकाल सुख से रहे। मैंने इसी रात में महाप्रलय के किनारे खड़े होकर अनन्त आनन्द का स्वाद पा लिया।

रात प्रायः समाप्त होने को आई—आंधी थम गई, पानी उतर गया—सुरबाला बिना कुछ कहे घर चली गई, मैं भी बिना कुछ कहे अपने घर चला आया। मैंने सोचा, 'मैं नाजिर भी नहीं हुआ, सरिश्तेदार भी नहीं हुआ, गैरीबाल्डी भी नहीं हुआ, मैं एक टूटे-फूटे स्कूल का असिस्टेंट मास्टर रह गया, मेरे इस सम्पूर्ण जीवन में केवल क्षण-भर के लिए एक अनन्त रात्रि का उदय हुआ था—मेरे सुदीर्घ जीवन के सारे दिन-रातों के केवल वही एक रात मेरे तुच्छ जीवन की एक-मात्र चरम सार्थकता थी।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जीवित और मृत

1

रानीहाट के जमींदार बाबू शारदाशंकर के परिवार की विधवा बहू के पितृकुल में कोई नहीं था; एक-एक करके सब मर गए। पति-कुल में भी सचमुच अपना कहने योग्य कोई न था, पति भी नहीं, पुत्र भी नहीं। जेठ का एक लड़का था, शारदाशंकर का छोटा पुत्र, वही उसकी आंखो का तारा था। उसके जन्म के बाद उसकी माता बहुत दिनों तक कठिन रोग से पीड़ित रहीं, इसलिए उसकी विधवा काकी कादम्बिनी ने ही उसका पालन-पोषण किया। पराये लड़के का पालन-पोषण करने पर उसके प्रति स्नेह का आकर्षण मानो और भी अधिक हो जाता है, क्योंकि उस पर कोई अधिकार नहीं होता, न उस पर कोई सामाजिक दावा रहता है; बस केवल स्नेह का अधिकार रहता है। किन्तु अकेला स्नेह समाज के सामने अपने अधिकार को तर्क द्वारा प्रमाणित नहीं कर पाता, और वह करना भी नहीं चाहता, केवल अनिश्चित प्राण-धन को दुगुनी व्याकुलता से प्यार करने लगता है। विधवा की सारी रुद्ध प्रीति से इस बालक को सींचकर श्रावण की एक रात में अकस्मात् कादम्बिनी की मृत्यु हो गई। न जाने किस कारण सहसा उसका हृत्स्पंदन स्तब्ध हो गया—बाकी सारे संसार में समय की गति चलती रही, केवल स्नेह-कातर छोटे-से कोमल वृक्ष के भीतर समय की घड़ी की कल चिरकाल के लिए बन्द हो गई।

कहीं पुलिस का उपद्रव न हो इस डर के बिना विशेष आडम्बर में जमींदार के चार ब्राह्मण कर्मचारी मृत देह को तुरन्त दाह-संस्कार के लिए ले गए।

रानीहाट का श्मशान बस्ती से बहुत दूर था। पोखर के किनारे एक झोंपड़ी थी और उनके निकट ही एक विशाल वट वृक्ष था; विस्तृत मैदान में और कहीं कुछ न था। पहले यहां होकर नदी बहती थी, इस समय नदी बिलकुल सूख गई थी। उसी शुष्क जल-धारा के एक अंश को खोदकर श्मशान के पोखर का निर्माण कर लिया गया था। वर्तमान निवासी उस पोखर को ही पुण्य-स्रोतस्विनी का प्रतिनिधिस्वरूप मानते थे।

मृत देह को झोंपड़ी में रखकर चारों जने चिता के लिए लकड़ी आने की प्रतीक्षा में बैठे रहे। समय इतना लम्बा मालूम होने लगा कि अधीर होकर उनमें से

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

निताई और गुरुचरण तो यह देखने के लिए चल दिए कि लकड़ी आने में इतनी देर क्यों हो रही है; और विधु तथा वनमाली मृत देह की रक्षा करते बैठे रहे।

सावन की अन्धेरी रात थी। सघन बादल छाए हुए थे, आकाश में एक भी तारा नहीं दीखता था। अन्धेरी झोंपड़ी में दोनों चुपचाप बैठे रहे। एक की चादर में दियासलाई और बत्ती बंधी हुई थी। वर्षा ऋतु की दियासलाई बहुत प्रयत्न करने पर भी न जली—जो लालटेन साथ थी वह भी बुझ गई।

बहुत देर तक चुप बैठे रहने के बाद एक ने कहा, "भाई, एक चिलम तम्बाकू का प्रबन्ध होता तो बड़ी सुविधा होती। जल्दी-जल्दी में कुछ भी न ला सके।"

दूसरे ने कहा, "मैं झट से एक सपाटे में सब कुछ इकट्ठा करके ला सकता हूं।"

वनमाली के भागने के अभिप्राय को ताड़कर विधु ने कहा, "भैया री ! और मैं क्या यहां अकेला बैठा रहूंगा।"

बातचीत फिर बन्द हो गई। पांच मिनट एक घंटे के समान लगने लगे। जो आदमी लकड़ी लेने गए थे उनको ये लोग मन-ही-मन गाली देने लगे—'वे कहीं खूब आराम से बैठे बातें करते हुए हुक्का पी रहे होंगे,' धीरे-धीरे यह सन्देह उनके मन में दृढ़ होने लगा।

कहीं कोई आहट नही—केवल पोखर के किनारे में झिल्लियों और मेढ़कों की अविरल पुकार सुनाई पड़ रही थी। इतने में प्रतीत हुआ जैसे खाट कुछ हिली जैसे मृत देह ने करवट बदली।

विधु और वनमाली राम नाम जपते-जपते कांपने लगे। हठात् झोंपड़ी में दीर्घ निःश्वास लेने की आवाज सुनाई पड़ी। विधु और वनमाली पलक मारते ही झोंपड़ी से झपटकर बाहर निकले और गांव की ओर दौड़े।

लगभग डेढ़ कोस रास्ता पार करने पर उन्होंने देखा उनके बाकी दो साथी हाथ में लालटेन लिये चले आ रहे हैं। वे वास्तव में हुक्का पीने ही गए थे, लकड़ी का उन्हें कोई पता न था, तो भी उन्होंने समाचार दिया कि पेड़ काटकर लकड़ी चीरी जा रही है—जल्दी ही पहुंच जायगी। तब विधु और वनमाली ने झोंपड़ी की सारी घटना का वर्णन किया। निताई और गुरुचरण ने अविश्वास करते हुए उसे उड़ा दिया, और कर्तव्य त्यागकर भाग आने के लिए उन दोनों पर अत्यन्त क्रुद्ध हुए और डांटने-फटकारने लगे।

अविलम्ब चारों व्यक्ति उस झोंपड़ी में आकर उपस्थित हुए। भीतर घुसकर देखा मृत देह नहीं है, खाट सूनी पड़ी है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

वे परस्पर एक-दूसरे का मुंह देखते रह गए। शायद शृंगाल ले गए हों ? किन्तु आच्छादन वस्त्र तक नहीं था। खोजते-खोजते बाहर आकर देखा, झोंपड़ी के द्वार के पास थोड़ी-सी कीचड़ जमी थी, उस पर किसी स्त्री के नन्हें पैरों के ताजे चिन्ह थे।

शारदाशंकर सहज आदमी नहीं थे, उनसे भूत की यह कहानी कहने पर सहसा कोई शुभ फल मिलेगा, ऐसी सम्भावना न थी। इसलिए चारों व्यक्तियों ने खूब सलाह करके निश्चय किया कि यही खबर देना ठीक होगा कि दाह-कार्य पूरा कर दिया गया है।

भोर में जो लोग लकड़ी लेकर आए उन्हें खबर मिली कि देर होती देखकर पहले ही कार्य सम्पन्न कर दिया गया, झोंपड़ी में लकड़ी मौजूद थीं। इस विषय में किसी को भी सहज ही सन्देह उत्पन्न नहीं हो सकता—क्योंकि मृत देह ऐसी बहुमूल्य सम्पत्ति नहीं है, जिसे धोखा देकर कोई चुरा ले जाय।

2

सभी जानते हैं, जीवन का जब कोई लक्षण नहीं मिलता तब भी कई बार जीवन प्रच्छन्न रूप में बना रहता है, और समय अनुकूल होने पर मृतवत् देह में फिर से उसका कार्य आरम्भ होता है। कादम्बिनी भी मरी नहीं थी—सहसा न जाने किस कारण से उसके जीवन की गति बन्द हो गई थी।

जब उसकी चेतना लौटी तो उसने देखा, चारों ओर निबिड़ अन्धकार था। हमेशा की आदत के अनुसार जहां सोती थी, उसे लगा यह वह जगह नहीं है। एक बार पुकारा 'दादी'—अन्धेरी झोंपड़ी में किसी ने उत्तर न दिया। वह भयभीत होकर उठ बैठी, उसे उस मृत्युशैया की बात याद आई। एकाएक छाती में हुई पीड़ा—सांस रुकने की बात। उसकी बड़ी जिठानी कमरे के कोने में बैठी चूल्हे पर बच्चे के लिए दूध गरम कर रही थी—कादम्बिनी खड़ी न रह सकी और पछाड़ खाकर बिछौने पर गिर पड़ी—रुंधे गले से पुकारा 'दीदी, एक बार बच्चे को ले आओ, मेरा मन न जाने कैसा हो रहा है।' उसके बाद सब-कुछ काला पड़ गया—जैसे लिखी हुई पुस्तिका पर दवात की पूरी स्याही उलट गई हो। कादम्बिनी की सारी स्मृति एवं चेतना, विश्व-ग्रन्थ के समस्त अक्षर एकमुहूर्त में एकाकार हो गए। बच्चे ने उसको अन्तिम बार अपने उस मीठे प्यार-भरे स्वर में 'काकी'—कहकर पुकारा था या नहीं, उसकी अनन्त अज्ञात मरण-यात्रा के पथ के लिए चिर-परिचित पृथ्वी से यह अन्तिम स्नेह

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पाथेय-मात्र इकट्ठा करके लाया गया था या नहीं, विधवा को यह भी याद नहीं आ रहा था।

पहले तो लगा, यम-लोक कदाचित् इसी प्रकार चीन-निर्जन और चिरान्धकारपूर्ण है। वहां कुछ भी देखने को नहीं है, सुनने को नहीं है, काम करने को नहीं है। केवल सदा इसी प्रकार जागते हुए बैठे रहना पड़ेगा।

उसके पश्चात् जब मुक्त द्वार से एकाएक वर्षा-काल की ठंडी हवा का झोंका आया और कानों में वर्षा के मेंढ़कों की पुकार पड़ी, तब क्षण-भर में उस लघु जीवन की आशैशव वर्षा की समस्त स्मृति घनीभूत होकर उसके मन में उदित हुई और वह पृथ्वी के निकट स्पर्श का अनुभव कर सकी। एक बार बिजली चमकी; सामने के पोखर, वट वृक्ष, विस्तृत मैदान, और सुदूर की तरुश्रेणी पर अचानक उसकी दृष्टि पड़ी। उसे याद आया कि पुण्य तिथियों के अवसर पर बीच-बीच में आकर उसने इस पोखर में स्नान किया था और यह भी याद आया कि उस समय श्मशान में मृत देह को देखकर मृत्यु कैसी भयानक प्रतीत होती थी।

पहले तो मन में आया कि घर लौटना चाहिए। किन्तु साथ ही सोचा, 'मैं तो जीवित नहीं हूं, मुझे वे घर में क्यों घुसने देंगे। वहां तो अमंगल माना जायगा। जीव-जगत् से तो मैं निर्वासित होकर आई हूं—मैं अपनी ही प्रेतात्मा हूं।'

यदि यह सही नहीं है तो इस अर्धरात्रि में शारदाशंकर के सुरक्षित अन्तःपुर से इस दुर्गम श्मशान में आई कैसे। यदि उसकी अन्त्येष्टि क्रिया अभी समाप्त नहीं हुई है तो दाह क्रिया करने वाले आदमी कहां गए। उसे शारदाशंकर के आलोकित घर में अपनी मृत्यु के अन्तिम क्षण याद आए और उसके बाद ही इस बहुदूरवर्ती जन-शून्य अंधेरे श्मशान में अपने को अकेली देखकर उसने अनुभव किया, 'मैं इस पृथ्वी के जन-समाज की अब कोई नहीं—मैं अति भीषण, अकल्याणकारिणी; मैं अपनी ही प्रेतात्मा हूं।'

मन में यह बात आते ही लगा, जैसे उसके चारों ओर से विश्व-नियमों के समस्त बन्धन टूट गए हैं। जैसे उसमें अद्भुत शक्ति हो, उसे असीम स्वाधीनता हो—वह जहां चाहे जा सकती है, जो चाहे कर सकती है। इस अभूतपूर्व नूतन विचार के आविर्भाव से वह उन्मत्त की भांति प्रबल वायु के झोंके के समान झोंपड़ी से बाहर निकलकर अन्धकारपूर्ण श्मशान को रौंदती हुई चल पड़ी—मन में लज्जा, भय, चिन्ता का लेश-मात्र न रहा।

चलते-चलते पैर थकने लग गए, देह दुर्बल लगने लगी; एक मैदान पार करते न करते दूसरा आ जाता था। बीच-बीच में धान के खेत पार करने पड़ते या फिर

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कहीं-कहीं घुटनों तक पानी भरा मिलता। जब भोर का प्रकाश कुछ-कुछ दिखाई देने लगा तव जाकर थोड़ी दूर पर बस्ती के बांस के झाड़ों से दो-एक पक्षियों की चहचहाहट सुनाई दी।

तब उसे ने जाने कैसा भय लगने लगा। जगत् और जीते-जीगते लोगों के साथ इस समय उसका कैसा नया सम्पर्क स्थापित हो गया था यह वह तनिक भी नहीं जानती थी। जब तक मैदान में थी, श्मशान में थी, श्रावण-रजनी के अन्धेरे में थी, तब तक वह जैसे निर्भय थी, जैसे अपने राज्य में थी। दिन के प्रकाश में लोगों की बस्ती उसे अत्यन्त भयंकर स्थान लगने लगी। मनुष्य भूत से डरता है, भूत भी मनुष्य से डरता है; मृत्यु-नदी के अलग-अलग किनारे पर उनका वास है।

3

कपड़ों में कीचड़ लपेटे, अद्‌भुत भावों में डुबी और रात्रि-जागरण के कारण पागल के समान कादम्बिनी के चेहरे की जो दशा हो गई थी उसे देखकर यह सम्भव था कि लोग डर जाते और लड़के शायद दूर भागकर उस पर ढेले फेंकने लगते। सौभाग्य से उसे सबसे पहले इस अवस्था में एक सज्जन पथिक ने देखा।

उसने आकर कहा, "बेटी, तुम भले परिवार की वधू लगती हो, तुम भला इस अवस्था में अकेली कहां जा रही हो ?"

पहले तो कादम्बिनी कोई उत्तर न देकर ताकती रह गई। सहसा कुछ भी न सोच पाई। वह संसार में है, यह भद्र कुलवधू-जैसी दीखती है, गांव के रास्ते में पथिक उससे प्रश्न पूछ रहा है, ये सारी बातें उसे कल्पनातीत लगीं।

पथिक ने उससे फिर कहा, "चलो, बेटी, मैं तुम्हें घर पहुंचा दूं—तुम्हारा घर कहां है, मुझे बतओ !"

कादम्बिनी सोचने लगी। ससुराल लौटने की बात मन में भी न ला सकती थी, पिता का घर था नहीं—तभी उसे बचपन की सहेली याद आई।

यद्यति सहेली योगमाया का साथ बचपन में ही छूट गया था फिर भी कभी-कभी चिट्ठी-पत्री आती-जाती रहती थी। कभी-कभी बाकायदा प्रेम-कलह छिड़ जाता। कादम्बिनी जताना चाहती थी कि उसी का स्नेह प्रबल है; योगमाया जताना चाहती थी कि कादम्बिनी उसके स्नेह का यथोचित प्रतिदान नहीं देती। यदि किसी सुयोग से वे एक बार मिल सकें तो फिर वे क्षण-भर के लिए भी एक-दूसरे की आंख

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

की ओट न करेंगी, इस विषय में उन दोनों में से किसी को भी सन्देह न था।

कादम्बिनी ने उस सज्जन से कहा, "निशिन्दापुर में श्रीपतिचरण बाबू के घर जाना है।" पथिक कलकत्ता जा रहे थे : निशिन्दापुर पास तो नहीं था, पर फिर भी उनके मार्ग में पड़ता था। उन्होंने स्वयं बन्दोबस्त करके कादम्बिनी को श्रीपतिचरण बाबू के घर पहुंचा दिया।

दोनों सखियों का मिलन हुआ। पहले पहचानने में कुछ देर हुई, फिर दोनों के नेत्रों के सामने बचपन का चित्र धीरे-धीरे परिस्फुट हो उठा।

योगमाया ने कहा, "वाह-वाह, मेरा भाग्य कितना अच्छा है ! फिर से तुम्हारे दर्शन कर सकूंगी, इसकी तो मैं कल्पना भी न कर सकती थी। लेकिन बहन, तुम आईं कैसे ? क्या तुम्हारी ससुराल के लोगों ने तुम्हें छोड़ दिया।"

कादम्बिनी चुप लगा गई। अन्त में बोली, "बहन, ससुराल की बात मुझसे मत पूछो ! मुझे दासी की भांति घर के एक कोने में जगह दे दो, मैं तुम लोगों का काम-काज कर दिया करूंगी।"

योगमाया बोली, "वाह री, यह खूब कही; दासी की तरह क्यों रहोगी। तुम मेरी सहेली हो, तुम मेरी...." इत्यादि।

इसी समय श्रीपति ने कमरे में प्रवेश किया। कादम्बिनी कुछ देर उनके मुंह की ओर ताकती रही, फिर धीरे-धीरे कमरे से बाहर निकल गई—सिर पर पल्ला ठीक कर लेने का या किसी प्रकार के संकोच या संभ्रम का कोई लक्षण नहीं दिखाई पड़ा।

बाद में श्रीपति कहीं उसी की सहेली के विरुद्ध कुछ सोच न बैठे, इसी सम्भावना से विकल होकर योगमाया ने अनेक प्रकार से उनको समझाना शुरू किया। किन्तु समझाना इतना कम पड़ा और श्रीपति ने योगमाया के सारे प्रस्तावों का इतनी आसानी से अनुमोदन किया कि योगमाया मन-ही-मन विशेष सन्तुष्ट न हो सकी।

कादम्बिनी सहेली के घर आ तो गई, पर सहेली के साथ हिल-मिल न सकी—बीच में मृत्यु की दीवार थी। अपने बारे में निरन्तर कोई सन्देह एवं चेतना बनी रहने पर दूसरे के साथ घुला-मिला नहीं जा सकता। कादम्बिनी योगमाया के मुंह की ओर देखती और न जाने क्या सोचती—सोचती, 'अपने पति और अपनी घर-गृहस्थी लिए वह मानो बहुत दूर किसी दूसरे ही लोक में हो। स्नेह-माया और समस्त कर्तव्य लिए हुए वह मानो धरती की निवासिनी हो, और मैं मानों कोई शून्य छाया। वह जैसे अस्तित्व के देश में हो, और मैं जैसे किसी अनन्त में।'

योगमाया को भी न जाने कैसा-कैसा लगा, कुछ भी समझ न पाई। स्त्री की

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जाति रहस्य नहीं सह सकती; क्योंकि अनिश्चित को लेकर कवित्व किया जा सकता है, वीरत्व प्रदर्शित किया जा सकता है, पांडित्य दिखाया जा सकता है, किन्तु घर-गृहस्थी नहीं चलाई जा सकती। इस कारण स्त्री जाति जिसको समझ नहीं सकती, या तो वह उसके अस्तित्व का विलोप करके उसके साथ कोई सम्पर्क ही नहीं रखती या फिर उसको अपने हाथ से नया रूप देकर उससे अपने व्यवहार के योग्य कोई वस्तु गढ़ लेती है—यदि दोनों में से एक भी न कर पाए, तो फिर वह उस पर भीषण क्रोध करती रहती है।

कादम्बिनी जितनी ही दुर्बोध होने लगी, योगमाया उस पर उतनी ही क्रोधित होने लगी। उसने सोचा, 'सिर पर यह क्या मुसीबत आ पड़ी।'

तिस पर एक और भी आफत थी। कादम्बिनी स्वयं अपने से डरती थी। वह स्वयं अपने सामीप्य से किसी भी प्रकार नहीं भाग पाती थी। जो भूत से डरते हैं उन्हें अपने पिछाड़ी का डर सताया करता है—जहां दृष्टि नहीं जा पाती, वहीं का भय लगता है। लेकिन कादम्बिनी को अपने से ही सबसे अधिक डर लगता था, बाहर का उसे कोई भय नहीं था।

इसीलिए निर्जन दोपहरी में वह कभी-कभी कमरे में अकेली चीख उठती और सन्ध्या समय दिये के उजाले में अपनी छाया देखकर उसका शरीर थर-थर करने लग जाता।

उसका यह डर देखकर घर के सभी जनों के मन में न जाने कैसा भय समा गया। नौकर-चाकर, दास-दासियां, यहां तक कि योगमाया को भी जब-तब जहां-तहां भूत दिखाई पड़ने लगा।

एक दिन ऐसा हुआ कि अचानक आधी रात को कादम्बिनी रोती हुए सोने के कमरे से बाहर निकली और योगमाया के कमरे के द्वार पर आकर बोली, "दीदी, दीदी, तुम्हारे पैरों पड़ती हूं ! मुझे अकेली मत छोड़ा करो !"

योगमाया को एक और डर लगा, तो दूसरी ओर क्रोध भी आया। उसकी इच्छा हुई कादम्बिनी को इसी क्षण निकाल दे। श्रीपति ने दयापूर्वक जैसे-तैसे उसको शान्त करके पास के कमरे में स्थान दिया।

दूसरे दिन असमय श्रीपति को अन्तःपुर में तलब किया गया। योगमाया ने उनको अचानक डांटना-फटकारना आरम्भ किया, "क्यों जी, तुम कैसे आदमी हो। एक औरत अपनी ससुराल छोड़कर तुम्हारे घर में आकर डट गई है, महीना होने को आया, फिर भी टलने का नाम नहीं लेती, और तुम्हारे मुंह से विरोध का एक शब्द भी नहीं सुनाई पड़ा। तुम्हारे मन में क्या है साफ-साफ कहो न ! पुरुषों की

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

की ओट न करेंगी, इस विषय में उन दोनों में से किसी को भी सन्देह न था।

कादम्बिनी ने उस सज्जन से कहा, "निशिन्दापुर में श्रीपतिचरण बाबू के घर जाना है।" पथिक कलकत्ता जा रहे थे : निशिन्दापुर पास तो नहीं था, पर फिर भी उनके मार्ग में पड़ता था। उन्होंने स्वयं बन्दोबस्त करके कादम्बिनी को श्रीपतिचरण बाबू के घर पहुंचा दिया।

दोनों सखियों का मिलन हुआ। पहले पहचानने में कुछ देर हुई, फिर दोनों के नेत्रों के सामने बचपन का चित्र धीरे-धीरे परिस्फुट हो उठा।

योगमाया ने कहा, "वाह-वाह, मेरा भाग्य कितना अच्छा है ! फिर से तुम्हारे दर्शन कर सकूंगी, इसकी तो मैं कल्पना भी न कर सकती थी। लेकिन बहन, तुम आईं कैसे ? क्या तुम्हारी ससुराल के लोगों ने तुम्हें छोड़ दिया।"

कादम्बिनी चुप लगा गई। अन्त में बोली, "बहन, ससुराल की बात मुझसे मत पूछो ! मुझे दासी की भांति घर के एक कोने में जगह दे दो, मैं तुम लोगों का काम-काज कर दिया करूंगी।"

योगमाया बोली, "वाह री, यह खूब कही; दासी की तरह क्यों रहोगी। तुम मेरी सहेली हो, तुम मेरी...." इत्यादि।

इसी समय श्रीपति ने कमरे में प्रवेश किया। कादम्बिनी कुछ देर उनके मुंह की ओर ताकती रही, फिर धीरे-धीरे कमरे से बाहर निकल गई—सिर पर पल्ला ठीक कर लेने का या किसी प्रकार के संकोच या संभ्रम का कोई लक्षण नहीं दिखाई पड़ा।

बाद में श्रीपति कहीं उसी की सहेली के विरुद्ध कुछ सोच न बैठे, इसी सम्भावना से विकल होकर योगमाया ने अनेक प्रकार से उनको समझाना शुरू किया। किन्तु समझाना इतना कम पड़ा और श्रीपति ने योगमाया के सारे प्रस्तावों का इतनी आसानी से अनुमोदन किया कि योगमाया मन-ही-मन विशेष सन्तुष्ट न हो सकी।

कादम्बिनी सहेली के घर आ तो गई, पर सहेली के साथ हिल-मिल न सकी—बीच में मृत्यु की दीवार थी। अपने बारे में निरन्तर कोई सन्देह एवं चेतना बनी रहने पर दूसरे के साथ घुला-मिला नहीं जा सकता। कादम्बिनी योगमाया के मुंह की ओर देखती और न जाने क्या सोचती—सोचती, 'अपने पति और अपनी घर-गृहस्थी लिए वह मानो बहुत दूर किसी दूसरे ही लोक में हो। स्नेह-माया और समस्त कर्तव्य लिए हुए वह मानो धरती की निवासिनी हो, और मैं मानों कोई शून्य छाया। वह जैसे अस्तित्व के देश में हो, और मैं जैसे किसी अनन्त में।'

योगमाया को भी न जाने कैसा-कैसा लगा, कुछ भी समझ न पाई। स्त्री की

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जाति रहस्य नहीं सह सकती; क्योंकि अनिश्चित को लेकर कवित्व किया जा सकता है, वीरत्व प्रदर्शित किया जा सकता है, पांडित्य दिखाया जा सकता है, किन्तु घर-गृहस्थी नहीं चलाई जा सकती। इस कारण स्त्री जाति जिसको समझ नहीं सकती, या तो वह उसके अस्तित्व का विलोप करके उसके साथ कोई सम्पर्क ही नहीं रखती या फिर उसको अपने हाथ से नया रूप देकर उससे अपने व्यवहार के योग्य कोई वस्तु गढ़ लेती है—यदि दोनों में से एक भी न कर पाए, तो फिर वह उस पर भीषण क्रोध करती रहती है।

कादम्बिनी जितनी ही दुर्बोध होने लगी, योगमाया उस पर उतनी ही क्रोधित होने लगी। उसने सोचा, 'सिर पर यह क्या मुसीबत आ पड़ी।'

तिस पर एक और भी आफत थी। कादम्बिनी स्वयं अपने से डरती थी। वह स्वयं अपने सामीप्य से किसी भी प्रकार नहीं भाग पाती थी। जो भूत से डरते हैं उन्हें अपने पिछाड़ी का डर सताया करता है—जहां दृष्टि नहीं जा पाती, वहीं का भय लगता है। लेकिन कादम्बिनी को अपने से ही सबसे अधिक डर लगता था, बाहर का उसे कोई भय नहीं था।

इसीलिए निर्जन दोपहरी में वह कभी-कभी कमरे में अकेली चीख उठती और सन्ध्या समय दिये के उजाले में अपनी छाया देखकर उसका शरीर थर-थर करने लग जाता।

उसका यह डर देखकर घर के सभी जनों के मन में न जाने कैसा भय समा गया। नौकर-चाकर, दास-दासियां, यहां तक कि योगमाया को भी जब-तब जहां-तहां भूत दिखाई पड़ने लगा।

एक दिन ऐसा हुआ कि अचानक आधी रात को कादम्बिनी रोती हुए सोने के कमरे से बाहर निकली और योगमाया के कमरे के द्वार पर आकर बोली, "दीदी, दीदी, तुम्हारे पैरों पड़ती हूं ! मुझे अकेली मत छोड़ा करो !"

योगमाया को एक और डर लगा, तो दूसरी ओर क्रोध भी आया। उसकी इच्छा हुई कादम्बिनी को इसी क्षण निकाल दे। श्रीपति ने दयापूर्वक जैसे-तैसे उसको शान्त करके पास के कमरे में स्थान दिया।

दूसरे दिन असमय श्रीपति को अन्तःपुर में तलब किया गया। योगमाया ने उनको अचानक डांटना-फटकारना आरम्भ किया, "क्यों जी, तुम कैसे आदमी हो। एक औरत अपनी ससुराल छोड़कर तुम्हारे घर में आकर डट गई है, महीना होने को आया, फिर भी टलने का नाम नहीं लेती, और तुम्हारे मुंह से विरोध का एक शब्द भी नहीं सुनाई पड़ा। तुम्हारे मन में क्या है साफ-साफ कहो न ! पुरुषों की

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तो जात ही ऐसी होती है।"

वास्तव में, साधारणतयः स्त्री जाति पर पुरुषों का एक तर्कहीन पक्षपात रहता है और इसके लिए स्त्रियां ही उनको अधिक अपराधी ठहराती हैं। निःसहाय किन्तु सुन्दर कादम्बिनी के प्रति उनकी करुणा यथोचित मात्रा से कुछ अधिक थी, इस बात के विरोध में श्रीपति योगमाया की देह छूकर सौगन्ध खाने को भी तैयार थे। फिर भी, उनके व्यवहार में उसका प्रमाण मिल ही जाता।

वे सोचते, 'इसकी ससुराल के लोग जरूर इस पुत्रहीना विधवा के प्रति अन्याय-अत्याचार करते होंगे, तभी तो किसी भी प्रकार सहन न कर सकने पर ही वहां से भागकर कादम्बिनी ने मेरा आश्रय लिया है। अब इसके मां या बाप कोई है ही नहीं तब इसे मैं कैसे त्याग दूं।' इसी कारण वे किसी प्रकार की खोज-खबर लेने की ओर से उदासीन थे और इस अप्रीतिकार विषय पर प्रश्न करके कादम्बिनी को व्यथित करने को भी उनकी इच्छा नहीं होती थी।

हारकर उनकी पत्नी उनके निष्क्रिय कर्तव्य-बुद्धि पर नाना प्रकार से आघात करने लगी। कादम्बिनी की ससुराल में समाचार भिजवाना उनके घर की शांति-रक्षा के लिए अत्यन्त आवश्यक है, यह वे अच्छी तरह समझ गए। अंत में उन्होंने निश्चय किया, अचानक चिट्ठी लिख भेजने का परिणाम शायद अच्छा न भी हो अतएव स्वयं रानीहाट जाकर पता लगाने के बाद अपना कर्तव्य तय करेंगे।

श्रीपति तो चले गए, इधर योगमाया ने आकर कादम्बिनी से कहा, "बहन, तुम्हारा यहां पर अब और टिके रहना अच्छा नहीं दिखता। लोग क्या कहेंगे।"

गम्भीरता से योगमाया के मुंह की ओर देखकर कादम्बिनी बोली, "लोगों से मुझे क्या लेना-देना है।"

योगमाया सुनकर अवाक् रह गई। जरा झल्लाकर बोली, "तुम्हें न हो, हमें तो लेना-देना है। हम पराए घर की बहू को क्या कहकर टिकाए रहें।"

कादम्बिनी ने कहा, "मेरी ससुराल है ही कहां।"

योगमाया ने सोचा, 'मर गए, न जाने क्यों कहती है, जलमुंही !'

कादम्बिनी धीरे-धीरे बोली, "मैं क्या कोई तुम लोगों की हूं। मैं क्या इस जगत् की हूं। तुम लोग हंसते हो, रोते हो, प्यार करते हो, सब अपने में मगन हो, मैं.... तो बस देखती रहती हूं। तुम लोग मनुष्य हो और मैं हूं छाया। समझ में नहीं आता भगवान् ने मुझे तुम लोगों के इस जगत् में क्यों ला रखा है। तुम लोगों को भी डर लगा रहता है कि कहीं मैं तुम लोगों के हंसी-खेल में अमंगल न ले आऊं—मैं भी नहीं समझ पाती कि तुम लोगों के साथ मेरा क्या संबंध है। किन्तु, ईश्वर ने जब

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हमारे लिए कोई दूसरा स्थान बनाया ही नहीं, तब चाहे बात-बात में बन्धन टूटता रहे फिर भी तुम्हीं लोगों के आस-पास चक्कर काटती रहती हूं।"

उसने ये बातें कुछ इस ढंग से देखते हुए कहीं कि योगमाया जैसे-तैसे मोटे तौर पर कुछ तो समझ पाई किन्तु असल बात वह नहीं समझी, जवाब भी न दे सकी। दुबारा प्रश्न भी न कर सकी। वह अत्यन्त भारग्रस्त होकर गंभीर भाव से चली गई।

4

जब रात के लगभग दस बज रहे थे तब श्रीपति रानीहाट होकर लौटे। मूसलाधार वर्षा से धरती डूबी जा रही थी। उसकी निरंतर झर-झर ध्वनि से ऐसा प्रतीत होता था कि यह वर्षा समाप्त नहीं होगी, आज रात-भर चलती रहेगी।

योगमाया ने पूछा, "क्या हुआ।"

रीपति ने कहा, "ढेरों बातें हैं, फिर होंगी।" कहकर उन्होंने कपड़े बदलकर भोजन किया और हुक्का पीकर सोने चले गए। मुद्रा अत्यन्त चिंतित थी।

योगमाया बहुत देर से कौतूहल दबाए थी, बिस्तर पर पहुंचते ही उसने पूछा, "क्या सुना आए, बताओ !"

श्रीपति ने कहा, "तुमने जरूर कोई भूल की है।"

सुनते ही योगमाया मन-ही-मन कुछ नाराज हुई। औरतें कभी भूल नहीं करतीं; यदि करें भी तो किसी बुद्धिमान पुरुष के लिए उसका उल्लेख करना उचित नहीं है। उसे अपने ही सिर पर ले लेना बुद्धिमानी है। योगमाया ने थोड़ा गर्म होकर कहा, "कैसी, सुनूं तो !"

श्रीपति ने कहा, "तुमने जिस स्त्री को अपने घर में स्थान दिया है वह तुम्हारी सखी कादम्बिनी नहीं है।"

ऐसी बात सुनकर सहज ही क्रोध आ सकता है—विशेष रूप से पति के मुंह से सुनने पर तो कहना ही क्या। योगमाया ने कहा, "अपनी सहेली को मैं नहीं पहचानती, तुमसे पहचान करवा लेनी होगी—खूब कही।"

श्रीपति ने समझाया, "यहां बात की खूबी को लेकर किसी प्रकार का तर्क नहीं हो रहा है, प्रमाण देखना होगा। योगमाया की सहेली कादम्बिनी मर गई है इसमें कोई सन्देह नहीं।"

योगमाया ने कहा, "लो, और सुनो ! तुम जरूर कोई गड़बड़ कर आए हो।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

न जाने कहां के-कहां पहुंचे और क्या-का-क्या सुन आए, भला कोई ठिकाना है ! तुम्हें खुद वहां जाने के लिए किसने कहा था, एक चिट्ठी लिख देते, सब बात साफ हो जाती।"

अपनी कर्म-कुशलता के प्रति स्त्री के ऐसे विश्वासाभाव से श्रीपति अत्यन्त खिन्न होकर विस्तारपूर्वक सब प्रमाणों का उल्लेख करने लगे, किन्तु कोई फल न हुआ। उभय पक्ष के हां-ना करते-करते आधी रात हो गई।

यद्यपि कादम्बिनी को उसी क्षण घर से बाहर निकाल देने के विषय में पति-पत्नी किसी में मतभेद न था—क्योंकि, श्रीपति का विश्वास था कि उनके अतिथि ने छद्म परिचय देकर उनकी स्त्री को इतने दिन तक धोखा दिया है, और योगमाया का विश्वास था कि वह कुल-त्यागिनी है—तथापित प्रस्तुत तर्क के सम्बन्ध में दोनों में से कोई भी हार मानने को तैयार न था।

धीरे-धीरे दोनों की आवाज चढ़ने लगी। वे भूल गए कि बगल के ही कमरे में कादम्बिनी सो रही है।

एक ने कहा, "अच्छी आफत में पड़ गए। मैं अपने कानों से सुन आया हूं।"

दूसरे ने दृढ़ स्वर में कहा, "तो क्या तुम्हारे कहने से ही मान लूं, मैं अपनी आंखों देख रही हूं।"

अन्त में योगमाया ने पूछा, 'अच्छा, कादम्बिनी कब मरी थी, बताओ तो !'

उसने सोचा कि कादम्बिनी की किसी चिट्ठी की तारीख से इस बात का विरोध दिखाकर श्रीपति के भ्रम को प्रमाणित कर देगी।

श्रीपति ने जिस तारीख की बात कही, दोनों ने हिसाब करके देखा कि वह तारीख जिस दिन संध्या-समय कादम्बिनी उनके घर आई थी, ठीक उसके पहले दिन पड़ती थी। सुनते ही योगमाया का हृदय सहसा कांप उठा, श्रीपति को भी न जाने कैसा लगने लगा।

इतने में उनके कमरे का द्वार खुला और चौमासे की हवा के एक झोंके से दिया भक् से बुझ गया। पलक मारते ही बाहर का अंधेरा ऊपर से नीचे तक सारे कमरे में भर गया। कादम्बिनी एकाएक कमरे के भीतर आ खड़ी हुई। उस समय ढाई पहर रात बीत चुकी थी, बाहर लगातार वर्षा हो रही थी।

कादम्बिनी ने कहा, "बहन, मैं तुम्हारी वही कादम्बिनी हूं, किन्तु अब मैं जीवित नहीं हूं। मैं मर चुकी हूं।"

योगमाया भय से चीख पड़ी श्रीपति की बोलती बन्द हो गई।

"लेकिन मैंने मरने के अलावा तुम लोगों की दृष्टि में और क्या अपराध किया

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

है ? मेरे लिए अगर न इस लोक में स्थान है, न परलोक में—तो फिर हाय ! मैं कहां जाऊं ?"

जोर से चीखकर वह मानो उस घोर वर्षा की रात में सोते हुए विधाता को जगाकर पूछ उठी, "हाय ! तो फिर मैं कहां जाऊं ?"

यह कहकर मूर्छित दम्पति को अंधेरे कमरे में छोड़कर कादम्बिनी विश्व में अपना स्थान खोजने निकल पड़ी।

5

कादम्बिनी किस प्रकार वापस रानीहाट पहुंची, यह कहना कठिन है। किन्तु पहले पहल वह किसी को भी दिखाई न पड़ी। उसने दिन-भर बिना खाए-पिए एक टूटे मन्दिर के खण्डहर में बिताया।

वर्षा ऋतु की अकाल संध्या जब अत्यन्त सघन हो गई और आसन्न दुर्योग की आशंका से गांव के लोगों ने घबराकर अपने-अपने घरों की शरण ली, तब कादम्बिनी बाहर निकली। ससुराल के दरवाजे पर पहुंचकर एक बार तो उसका हृदय कांप उठा, लेकिन जब वह लम्बा घूंघट निकालकर भीतर जाने लगी तो उसको दासी समझकर दरबानों ने कोई रोक-टोक न की। तभी बड़े जोर की वर्षा होने लगी, और हवा भी तेजी से चलने लगी।

उस समय घर की मालकिन शारदाशंकर की स्त्री अपनी विधवा ननद के साथ ताश खेल रही थी। नौकरानी रसोईघर में थी और बीमार मुन्ना ज्वर उतर जाने पर सोने के कमरे में बिछौने पर सो रहा था। कादम्बिनी सबकी आंख बचाकर उसी कमरे में प्रविष्ट हुई। वह क्या सोचकर ससुराल आई थी पता नहीं, वह स्वयं भी नहीं जानती थी, बस इतना जानती थी कि एक बार आकर मुन्ने को एक नजर देखने लेने की इच्छा थी। उसके बाद कहां जायेगी, क्या होगा, यह तो उसने सोचा भी नहीं था।

दिए के उजाले में उसने देखा, रुग्ण, क्षीणकाय मुन्ना मुट्ठी बांधे सोया है। देखते ही उसका उत्तप्त हृदय मानो तृषातुर हो उठा—उसकी सारी बलाएं लेकर उसको एक बार छाती से लगाए बिना क्या रहा जा सकता है; और, फिर उसे याद आया, 'मैं रही नहीं, अब इसको देखने वाला कौन है। इसकी मां को संगत अच्छी लगती है, गप-शप अच्छी लगती है, खेल-तमाशा अच्छा लगता है, इतने दिन तक इसका भार मुझे सौंपकर वे निश्चिन्त थीं, लड़के के पालन-पोषण का कोई झंझट उन्हें नहीं

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

उठाना पड़ा। आज कौन इसकी उस प्रकार देख-भाल करेगा !'

तभी मुन्ना अचानक करवट बदलकर अर्धनिद्रित अवस्था में बोल पड़ा, "काकी, पानी दो।" हाय ! मैं वारी ! मेरे लाल, अपनी काकी को तू अब भी नहीं भूला ? झटपट सुराही से पानी लेकर मुन्ने को छाती से चिपटाकर कादम्बिनी ने उसे पानी पिलाया।

जब तक वह नींद के झोंके में रहा, अपनी आदत के अनुसार काकी के हाथ से पानी पीने में मुन्ना को कोई आश्चर्य न हुआ। अन्त में कादम्बिनी ने जब अपनी बहुत दिनों की आकांक्षा पूरी करने के लिए उसका मुंह चूमकर उसे फिर लिटा दिया, तो उसकी नींद खुल गई और उसने काकी से लिपटकर पूछा, "काकी, तू मर गई थी ?"

काकी बोली, "हां, बेटा !"

"तू फिर मुन्ने के पास लौट आई है ? अब तो नहीं मरेगी ?"

उसका उत्तर देने के पहले ही हल्ला मच गया—नौकरानी कटोरी में साबूदाना लिये कमरे में घुसी थी, अकस्मात् कटोरी फेंककर 'मैया री !' पुकारती हुई वह पछाड़ खाकर गिर पड़ी।

उसकी चीख सुनकर मालकिन ताश फेंककर दौड़ी हुई आई। कमरे में घुसते ही उन्हें मानो काठ मार गया, न तो भाग ही सकीं, न मुंह से एक भी बात निकली।

ये सब बातें देखकर मुन्ने के मन में भी भय का संचार होने लगा—वह रोते-रोते बोला, "काकी, तू जा !"

बहुत दिनों बाद आज कादम्बिनी को अनुभव हुआ कि वह मरी नहीं है—वही पुराना घर-द्वार, वही सब-कुछ, वही मुन्ना, वही स्नेह, उसके लिए ज्यों-के-त्यों जीवित हैं, बीच में कोई विच्छेद, कोई व्यवधान उत्पन्न नहीं हुआ। सहेली के घर जाकर उसे अनुभव हुआ कि बाल्य-काल की वह सखी मर चुकी है, पर मुन्ने के कमरे में आकर उसने अनुभव किया कि मुन्ने की काकी तनिक भी नहीं मरी है।

उसने विकल होकर, "दीदी, मुझे देखकर तुम लोग डर क्यों रही हो। ये देखो, मैं तो आज भी उसी तरह तुम्हारी हूं।"

मालकिन ज्यादा देर खड़ी न रह सकीं, मूर्छित होकर गिर पड़ीं। बहन से समाचार पाकर शारदाशंकर बाबू स्वयं अन्तःपुर में आकर उपस्थित हुए; हाथ जोड़कर उन्होंने कादम्बिनी से कहा, "छोटी बहू, यह क्या तुम्हारे लिए उचित है सतीश मेरे कुल का इकलौता लड़का है, उसको तुम नजर क्यों लगा रही हो। हम क्या कोई पराए हैं। तुम्हारे जाने के बाद से वह दिनों-दिन सूखता जा रहा है, बीमारी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जाने का नाम नहीं लेती, बस रात-दिन 'काकी-काकी' रटता रहता है। तुमने जब संसार से विदा ले ली है तो अब यह माया-बन्धन भी तोड़ डालो—हम तुम्हारा यथोचित संस्कार करेंगे।"

कादम्बिनी अब और अधिक न सह सकी, जोर से बोल उठी, "अरे, मैं मरी नहीं हूं, मरी नहीं हूं। मैं तुम लोगों को कैसे समझाऊं, मैं मरी नहीं हूं। ये देखो, मैं जीवित हूं।"

यह कहकर वह धरती पर पड़ी कांसे की टोकरी उठाकर माथे पर मारने लगी, माथे से रक्त फूटकर बहने लगा।

तब वह बोली, "ये देखो, मैं जीवित हूं।"

शारदाशंकर मूर्तिवत् खड़े; मुन्ना डर के मारे पिता को पुकारने लगा; दोनों मूर्छित स्त्रियां जमीन पर पड़ी रहीं।

तब कादम्बिनी "अरे ! मैं मरी नहीं हूं रे, नहीं मरी रे, नहीं मरी—" चीखती हुई कमरे से बाहर निकलकर सीढ़ियों से उतरती हुई अन्तःपुर की पुष्कारिणी में कूद पड़ी। ऊपर के कमरे से शारदाशंकर ने छपाक् की आवाज सुनी।

सारी रात वर्षा होती रही, अगले दिन सवेरे भी वर्षा होती रही, दोपहर को भी वर्षा रुकने के कोई आसार दिखाई नहीं दिए। कादम्बिनी ने मरकर प्रमाणित किया कि वह मरी नहीं थी।

●

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

व्यवधान

रिश्ता निकालने पर वनमाली और हिमांशुमाली दोनों आपस में ममेरे-फुफेरे भाई हैं; वह भी बहुत हिसाब करने पर मिला। लेकिन ये दोनों ही परिवार काफी समय से पास-पास रह रहे हैं। बीच में केवल एक बगीचे का व्यवधान है, इसलिए इनका रिश्ता बहुत पास का न होने पर भी इनमें बहुत घनिष्ठता है।

वनमाली हिमांशु से बहुत बड़ा है। हिमांशु के जब दांत भी नहीं निकले थे और न बोली ही फूटी थी तभी से वनमाली ने उसे गोद में लेकर सांझ-सवेरे बगीचे में खुली हवा में घुमाया है, खिलाया है, चुप कराया है, सुलाया है; और शिशु का मनोरंजन करने के लिए परिणत बुद्धि-वयस्क लोगों के जल्दी-जल्दी सिर हिलाने और ऊंचे स्वर में बातचीत करने की जो सारी अवस्थानुचित चपलताएं और भारी उछल-कूद दिखानी होती है, वनमाली ने उन सबको करने में भी कोई कमी नहीं की।

वनमाली ने कुछ विशेष पढ़ाई-लिखाई नहीं की। उसे बगीचे का शौक था और था दूर के रिश्ते का यह छोटा भाई, जिसे एक दुर्लभ दुर्मूल्य लता के समान वनमाली अपने हृदय के सम्पूर्ण स्नेह-सिंचन से पाल रहा था, फिर जब वह उसके भीतर-बाहर को आच्छन्न करती पल्लवित होने लगी तब वनमाली ने अपने को धन्य माना।

अक्सर ऐसा देखने में नहीं आता, लेकिन कोई-कोई ऐसे स्वभाव के होते हैं, जो किसी छोटी सनक या छोटे शिशु अथवा किसी अकृतज्ञ मित्र के लिए अपने को सहज ही पूर्णरूप से विसर्जित कर देते हैं और उस विराट धरा पर एकमात्र छोटे स्नेह के कारोबार में जीवन का सारा मूलधन समर्पण कर निश्चिन्त बने रहते हैं, फिर शायद सामान्य स्वल्प अधिकार में ही परम सन्तोष के साथ दिन काट लेते हैं या तो सहसा किसी सवेरे सारा घर-बार बेच कंगाल हो रास्ते पर जा खड़े होते हैं।

हिमांशु की अवस्था जब कुछ और बढ़ी तब उम्र और रिश्ते के अनेक अन्तर के बावजूद वनमाली के साथ एक मैत्री बन्धन में बंधा। दोनों में बीच मानो छोटा-बड़ा कुछ भी नहीं रहा।

ऐसा होने के कुछ कारण भी थे। हिमांशु पढ़ता-लिखता और स्वभावतः उसकी ज्ञान-स्पृहा अत्यन्त प्रबल थी। किताब मिलते ही पढ़ने लगता, इससे बहुत-सी व्यर्थ की किताबें भी अवश्य पढ़ी गयीं, पर जैसे भी हो, इससे सब ओर से उसके मन की

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

एक विशेष परिणति साधित हुई। वनमाली एक विशेष श्रद्धा के साथ उनकी बातें सुनता, उससे परामर्श लेता, उसके साथ छोटी-बड़ी सभी प्रकार की बातों की आलोचना करता, किसी विषय में ही उसे छोटा बालक मान अग्रहणीय नहीं समझता। हृदय के सर्वप्रथम स्नेह-रस से जिसे पाला-पोसा है, बड़ी उम्र में यदि वह ज्ञान-बुद्धि एवं उन्नत स्वभाव के लिए श्रद्धा का अधिकारी हो, तो उसके समान परम प्रिय वस्तु जगत में दूसरी नहीं।

हिमांशु को बगीचे का भी शौक था, लेकिन इस विषय में दोनों मित्रों में अन्तर था। वनमाली का शौक हृदय का था तो हिमांशु में था बुद्धि का शौक। संसार के ये कोमल पेड़-पौधे, या अचेतन जीवन-राशि, जो सार-सम्भार की, कोई लालसा नहीं रखते लेकिन सार-सम्भार होने पर घर के बाल-बच्चों के समान बढ़ उठते, जो मानव शिशु से भी अधिक शिशु हैं, उन्हें यत्नपूर्वक पालने-पोसने की वनमाली की एक स्वाभावतिक प्रवृत्ति थी। लेकिन हिमांशु की पेड़-पौधों के प्रति एक जिज्ञासु दृष्टि थी। अंकुर उगते, कोपलें फूटतीं, कालियां लगतीं, फूल खिलते, इनमें उसका एकान्तिक मनोयोग आकर्षित होता।

पेड़ के बीज बोने, कलम लगाने, खाद डालने, मचान तैयार करने के विषय में विभिन्न सलाह-मशविरे की बात हिमांशु के मन में आती रहती और वनमाली उन्हें अत्यन्त आनन्दपूर्वक ग्रहण करता। इस उद्यान-खंड को लेकर आकृति-प्रकृति में जितने प्राकर की संयोग-वियोग की सम्भावनाएं होतीं, वे दोनों मिलकर पूरा करते।

द्वार के सामने बगीचे के ऊपर ही एक पक्की वेदी जैसी थी। चार बजते ही एक पतला-सा कुर्ता पहने एक चुन्नटों वाली चादर कन्धे पर डाल, हुक्का हाथ में लिये वनमाली वहां छाया में जा बैठता। कोई बन्धु-बान्धव नहीं, हाथ में कोई एक किताब या अखबार भी नही। वह बैठा-बैठा उदासीन कनखियों से कभी दाएं और कभी बाएं दृष्टि डालता। इसी तरह उसका समय हुक्के की वाष्प-कुंडली के समान धीरे-धीरे अत्यन्त हल्के भाव से उड़ता जाता, विलीन होता जाता, और फिर कहीं कोई निशान तक नहीं रख जाता।

आखिर में जब हिमांशु स्कूल से लौटकर जलपान कर हाथ-मुंह धोकर दिखायी देता तब वनमाली जल्दी से हुक्के की नली एक ओर को कर खड़ा होता। तभी उसके आग्रह को देखकर समझ में आता कि अब तक धैर्य के साथ वह किसकी प्रत्याशा में बैठा था।

फिर बगीचे में घूमते-घूमते दोनों की बातचीत होती, अन्धेरा हो जाने पर दोनों बेंच पर जा बैठते—दक्षिण पवन पत्तों को मर्मरित करता बह जाता; किसी दिन नहीं

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

भी बहता, पेड़-पौधे चित्रवत् स्थिर खड़े रहते, सिर के ऊपर आकाश को घीरे हुए तारे जगमगाते रहते।

हिमांशु बातें करता, वनमाली चुपचाप सुनता। जो न समझ में आता वह भी उसे अच्छा लगता; जो सब बातें दूसरों से सुनने में अत्यन्त खीझ पैदा करनेवाली होतीं, वही बातें हिमांशु के मुंह से बड़ी मजेदार लगतीं, ऐसे श्रद्धावान वयस्क श्रोता को पाकर हिमांशु की भाषण-शक्ति, स्मृति-शक्ति, कल्पना-शक्ति की विशेष परितृप्ति होती। वह कुछ बातें पढ़कर कहता, कुछ सोचकर कहता, कुछ बातें तभी दिमाग में उदित होतीं और बहुत बार कल्पना के सहारे से ज्ञान के अभाव को ढक लेता। वह बहुत-सी बातें ठीक कहता, बहुत-सी बेतुकी भी, लेकिन वनमाली गम्भीरतापूर्वक सुनता, बीच-बीच में दो-एक बात कहता, हिमांशु उसका प्रतिवाद करके जो उसे समझाता, वह वही समझता, फिर दूसरे दिन छाया में बैठा हुआ हुक्के से कश खींचते-खींचते उन सब बातों के विषय में बहुत देर तक आश्चर्य करके साथ सोचता रहता।

इसी बीच एक गड़बड़ी हो गयी। वनमाली के बगीचे और हिमांशु के घर के बीच से पानी निकलने का एक नाला था। उसी नाले पर कहीं एक नींबू का पेड़ उग आया था। उस पेड़ में जब नींबू लगते तब वनमाली का नौकर उसे तोड़ने की कोशिश करता और हिमांशु का नौकर उसे मना करता, इसके चलते दोनों में जो गाली-गलौज की झड़ी लगती वह यदि कोई ठोस वस्तु होती तो उससे सारा नाला भर जाता।

बीच से वनमाली के पिता हरचन्द्र और हिमांशु माली के पिता गोकुल चन्द्र में उस नींबू के पेड़ को लेकर भारी झगड़ा मच गया। दोनों पक्ष नाले के दखल के लिए अदालत में जा पहुंचे।

वकील-बैरिस्टरों में जितने महारथी थे सभी ने दूसरे पक्ष का अवलम्बन लेकर बड़ा लम्बा वाक्-युद्ध आरम्भ किया। दोनों पक्ष का जितना पैसा खर्च हो गया उतना पानी तो भादों की बाढ़ में भी उस नाले से कभी नहीं बहा होगा।

आखिर में हरचन्द्र की जीत हुई, प्रमाणित हुआ, नाला उसी का है और नींबू के पेड़ पर दूसरे किसी का कोई हक नहीं। अपील हुई, पर नाला और नींबू हरचन्द्र के ही रहे।

जितने दिन मुकद्दमा चलता रहा दोनों भाइयों की मित्रता में कोई रुकावट नहीं आयी। यहां तक कि, कोई विवाद की छाया एक-दूसरे को स्पर्श न करे इस आशंका से कातर हो वनमाली दुगुनी घनिष्ठता से हिमांशु को हृदय के निकट आबद्ध कर

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

रखने की चेष्टा करता, और हिमांशु भी रंचमात्र विमुखता नहीं दिखाता।

जिस दिन आदालत में हरचन्द्र की जीत हुई, उस दिन घर में, विशेष रूप से अन्त:पुर में परम आनन्द की धूम मच गयी, केवल वनमाली की आंखों की नींद चली गयी। उसके दूसरे दिन अपराह्न में ऐसे म्लान मुख से वह बगीचे की वेदी पर जा बैठा जैसे दुनिया में और किसी का कुछ नहीं हुआ, बस उसकी ही भारी हार हुई।

उस दिन समय निकल गया, छः बज गये, लेकिन हिमांशु नहीं आया। वनमाली ने एक गहरी दीर्घ निःश्वास छोड़ हिमांशु के घर की ओर देखा, खुली खिड़की के भीतर से देखा अलगनी पर हिमांशु के स्कूल के बदले कपड़े लटक रहे हैं; बहुत से जाने-पहचाने लक्षणों को मिलाकर देखा—हिमांशु घर में है। हुक्के की नली फेंककर वह उदास मुख से घूमने लगा और सैकड़ों बार उस खिड़की की ओर देखा, लेकिन हिमांशु बगीचे में नहीं आया।

सन्ध्या समय बत्ती जलने पर वनमाली धीरे-धीरे हिमांशु के घर गया।

गोकुल चन्द्र द्वार पर बैठे तपी देह पर हवा लगा रहे थे। "कौन है ?" उन्होंने पूछा।

वनमाली चौंक पड़ा, जैसे चोरी करते पकड़ लिया गया हो। कांपते हुए स्वर में बोला, "माम, मैं हूं।"

मामा ने कहा, "किसे ढूंढ़ने आये हो ? घर में कोई नहीं है।"

वनमाली फिर बगीचे में आ चुप बैठा रहा।

जितनी रात बढ़ने लगी, देखा, हिमांशु के घर की खिड़कियां एक-एक करके बन्द हो गयीं। दरवाजे की दरार से जो प्रकाश रेखाएं दिखाई दे रही थीं, करीब-करीब वे भी धीरे-धीरे बुझ गयीं। अन्धेरी रात में वनमाली को लगा, हिमांशु के घर के सारे दरवाजे उसके लिए बन्द हो गये, वह केवल बाहर के अन्धेरे में अकेला पड़ा रहा।

फिर उसके दूसरे दिन वह बगीचे में आ बैठा; सोचा, आज शायद आ भी सकता है। जो बहुत दिनों से रोजाना ही आता था वह फिर एक दिन भी नहीं आएगा, यह बात वह कैसे भी नहीं सोच पाया। कभी मन में भी नहीं आया था कि यह बन्धन किसी प्रकार कभी टूटेगा; ऐसे निश्चिंत मन से रहता कि जीवन के सारे दुःख-सुख कब उस बन्धन में बंध गये यह वह जान ही नहीं पाया। आज सहसा पता चला कि वह बन्धन टूट गया है; पर क्षण-भर में उसका जो सर्वनाश हो गया इसका उसे कैसे भी विश्वास नहीं हुआ।

प्रतिदिन यथासमय वह बगीचे में आ बैठता कि कहीं अकस्मात् वह आये। लेकिन ऐसा दुर्भाग्य, जो नियम-क्रम से प्रतिदिन घटित होता वह दैव-क्रम से एक

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

दिन भी नहीं घटा।

रविवार के दिन सोचा, पहले के नियमानुसार आज भी सुबह हिमांशु हमारे यहां खाने को आयेगा। ठीक विश्वास किया हो ऐसी बात नहीं, लेकिन फिर भी आशा नहीं छोड़ी गयी, सवेरा हुआ, वह नहीं आया।

तब वनमाली बोला, "तो फिर भोजन करके ही आयेगा" जब वह भोजन करके भी नहीं आया तब वनमाली ने सोचा, "शायद भोजन करके सो रहा है। नींद खुलते ही आ जायेगा।" नींद कब खुली, मालूम नहीं, पर वह आया नहीं।

फिर वही शाम हुई, रात आयी, हिमांशु के घर के दरवाजे एक के बाद एक बन्द हुए, बत्तियां एक के बाद एक बुझ गयीं।

इसी प्रकार सोमवार से रविवार तक सप्ताह के सातों दिन जब दूरदृष्ट ने उसके हाथों से छीन लिये, आशा को आसरा देने के लिए जब और एक दिन भी बाकी नहीं रहा, तब हिमांशु के रुद्ध द्वार अट्टालिका की ओर उसकी अश्रूपूर्ण दो कातर आंखों ने एक बड़ी मर्मभेदी मनोवेदना की फरियाद भेज दी और जीवन-भर की सारी वेदना को एकमात्र आर्त स्वर के बीच घनीभूत कर बोला, "हे दयामय !"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

विचारक

1

अनेक अवस्थाओं को पार करने के बाद अन्त में गतयौवना क्षीरोदा को जिस पुरुष का आश्रय प्राप्त हुआ था, वह भी उसको जीर्ण वस्त्र के समान परित्याग कर गया। तब मुट्ठी-भर अन्न के लिए द्वितीय आश्रय की तलाश करते हुए उसने अत्यन्त आत्म-ग्लानि का अनुभव किया।

यौवन के अन्त में शुभ्र शरत्काल के समान एक गम्भीर प्रशान्त-प्रगाढ़ सुन्दर आयु आती है जब जीवन-फल के फलने और अन्न के पकने का समय होता है। तब फिर उद्दाम यौवन की वसन्त-चंचलता शोभा नहीं पाती। तब तक संसार के बीच हमारा घर बसाना एक प्रकार से समाप्त हो आता है; अनेक अच्छे-बुरे कई सुख-दुःख, जीवन को परिपक्वता प्रदान कर अन्तर में मानव को परिणत कर देते हैं, हमारे अधिकार के बाहर कुहराच्छन्न दुराशा के कल्पना लोक से सारी उद्भ्रान्त वासनाओं का प्रत्याहरण करके अपनी क्षुद्र क्षमता के गृह प्राचीर में प्रतिष्ठित कराती है, तब नवीन प्रणय की मुग्ध दृष्टि को अधिक आकर्षित नहीं किया जा सकता, किन्तु पुराने लोगों के लिए मनुष्य और भी प्रियतर हो उठता है। तब यौवन-लावण्य थोड़ा-थोड़ा कर क्षीण हो आता है किन्तु जरा विहीना अन्तर्प्रकृति बहुत दिनों के सहवास क्रम के कारण मुख पर आंखों पर जैसे स्पष्टतर रूप में अंकित हो जाती है, हंसी, दृष्टिपात, कंठ स्वर भीतर के मानव के द्वारा ओत-प्रोत हो उठते हैं। जो कुछ पाया नहीं, उसकी आशा छोड़, जो छोड़ गये हैं उनके लिए शोक समाप्त कर, जिन्होंने वंचना की है उन्हें क्षमा कर—जो पास आये हैं, प्यार किया है, संसार के सारे आंधी-तूफान, शोक, अनुताप विच्छेद में जो कई एक प्राणी पास अवशिष्ट हैं, उन्हें हृदय के निकट खींच ले—सुनिश्चित सुपरीक्षित चिर-परिचितों के प्रीति परिवेष्टन में निरापद नीड़ रचना कर उसी में समस्त चेष्टाओं का अवसान और समस्त आकांक्षाओं की परितृप्ति की उपलब्धि होती है। यौवन के उस स्निग्ध सन्ध्याकाल में जीवन के उस शान्तिपूर्व में भी जिसे नूतन संचय, नूतन परिचय, नूतन बन्धन के व्यर्थ आश्वासन में नये प्रयास में भाग-दौड़ करनी होती है—तब भी जिसके विश्राम के लिए शैया रची नहीं गयी, जिसके गृह प्रत्यावर्तन के लिए सान्ध्यदीप

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

प्रज्ज्वलित नहीं हुआ—संसार में उसके समान दयनीय दूसरा कोई नहीं।

क्षीरोदा ने अपने यौवन की प्रान्त सीमा में जिस दिन प्रातःकाल जगकर देखा उसका प्रणयी पिछले रात उसके सारे अलंकार और धन अपहरण कर भाग गया है, घर का किराया देने तक का संचय उसके पास नहीं—तीन वर्ष के शिशु पुत्र को दूध लाकर पिलाने तक का पैसा नहीं—जब उसने सोचकर देखा, उसके जीवन के अड़तीस वर्षों में वह एक भी व्यक्ति को अपना नहीं बना सकी, एक घर के कोने में भी जीने-मरने का अधिकर प्राप्त नहीं किया—जब उसे स्मरण आया, फिर आज अश्रुजल पोंछकर दोनों आंखों में काजल लगाना होगा, अधर-कपोलों पर लाली फेरनी होगी, ज़ीर्ण यौवन को विचित्र छलना द्वारा ढककर हास्य मुख से असीम धैर्य के साथ नूतन हृदय-हरण के लिए नये माया-पाश का विस्तार करना होगा—तब वह कमरे का द्वार बन्द कर भूमि पर लोटते हुए बार-बार कठिन धरती पर सिर कूटने लगी—सारे दिन अनाहार में अधमरी-सी पड़ी रही थी। सन्ध्या हो आयी। दीपविहीन घर के कोने में अन्धकार घनीभूत होने लगा। संयोग से एक पुरातन प्रेमी आकर 'क्षीरो-क्षीरो' कहता द्वार थपथपाने लगा। क्षीरोदा अकस्मात् द्वार खोलकर झाड़ू हाथ में ले बाघिन की तरह गरजकर दौड़ पड़ी; रस पिपासु युवक एक क्षण देरी किये बिना सिर पर पांव लेकर भागा।

बच्चा भूख की पीड़ा से रो-रोकर खाट के नीचे सो गया था, उस गोल-माल से जग उठा, अन्धकार में टूटे कातर स्वर से 'मां-मां' कहने लगा।

तब क्षीरोदा उस रोते हुए शिशु को प्राण पण से छाती से दबा विद्युत् वेग से दौड़कर पासवाले कुएं में कूद पड़ी।

इस आवाज को सुनकर हाथ में बत्ती लिए पड़ोसी-जन कुएं के निकट आ पहुंचे। क्षीरोदा और शिशु को निकालने में देरी नहीं हुई। क्षीरोदा तब भी बेहोश थी और शिशु मर चुका था।

अस्पताल जाकर क्षीरोदा ने स्वास्थ्य लाभ किया। हत्यापराध के कारण मजिस्ट्रेट ने उसका सेसन में चालान कर दिया।

2

जज मोहित दत्त स्टैच्युटरी सिविलियन थे। उनके कठिन विचार में क्षीरोदा को फांसी का आदेश हुआ। इस बदनसीब की हालत पर तरस खा करके वकीलों ने उसे बचाने की बड़ी चेष्टा की, पर वे किसी भी तरह सफल नही हुए। जज उसे

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

रंचमात्र भी दया के योग्य मान नहीं सके।

न मान सकने का एक और कारण है। एक ओर वे हिन्दू-महिलाओं को देवी की संज्ञा देते हैं, दूसरी ओर स्त्री-जाति के प्रति उनका आन्तरिक अविश्वास था। उनका मत यह है कि रमणियां कुल बन्धन छिन्न करने के लिए उन्मुख बनी रहती हैं, यह मर्यादा रंचमात्र शिथिल होते ही समाज पिंजर में एक भी कुल-नारी अवशिष्ट नहीं रहेगी।

उनके इस प्रकार के विश्वास का कारण है। उस कारण को जानने के लिए मोहित के यौवन के इतिहास के कुछ अंश की चर्चा आवश्यक है।

मोहित जब कॉलेज के द्वितीय वर्ष में पढ़ते थे तब आकार और आचार में अब से सम्पूर्ण अलग प्रकार के व्यक्ति थे। इस समय मोहित के सामने के हिस्से में गंजापन, पीछे चुटिया, घुटालि पर प्रतिदिन सुबह पैने क्षुरधार से मूंछ-दाढ़ी का अंकुर उच्छेद हुआ करता है, किन्तु तब वे सोने के फ्रेम के चश्में, मूंछ-दाढ़ी और साहबी ढंग के केश-विन्यास से उन्नीसवीं शताब्दी के नये संस्करण कार्तिकेय के समान थे। वेशभूषा के प्रति विशेष रुचि थी, मांस-मदिरा के प्रति अरुचि नहीं थी तथा इससे जुड़े दो-चार और भी व्यसन थे।

पास ही गृहस्थ परिवार रहता था। उनकी हेमशशी नाम की एक विधवा कन्या थी। उसकी आयु अधिक नहीं थी, चौदह से पन्द्रह की ओर पांव बढ़ाती हुई।

समुद्र में वनराजि पर्यन्त नीली तटभूमि जैसे रमणीय स्वप्नवत् चित्रवत् लगती है वैसा किनारे पर जाकर नहीं लगता। वैधव्य के वेष्टन अन्तराल में हेमशशी संसार से जितनी दूर हो पड़ी थी, उस दूरत्व के विच्छेद के कारण संसार उसके लिए पर पारवर्ती परम रहस्यमय प्रमोद भवन के समान लगता। वह जानती न थी यह जगत् यंत्र का कल-कारखाना अत्यन्त जटिल और लौह कठिन—दुःख-सुख, विपद-सम्पद, संकट-संशय और नैराश्य-परिताप से मिश्रित है। उसे लगता संसार यात्र कलनादिनी निर्झरिणी के स्वच्छ जल-प्रवाह के समान सहज, सम्मुखवर्ती सुन्दर पृथ्वी के सभी पथ-प्रशस्त और सरल सुख केवल उसके वातायन के बाहर और तृप्तिहीन आकांक्षा तो बस उसके वक्षपंजरवर्ती स्पन्दित परितप्त कोमल हृदय के अभ्यन्तर में ही है। विशेषतः, तब उसके अन्तराकाश के दूर दिगन्त से एक यौवन समीरण ने उच्छ्वसित हो विश्व संसार को विचित्र वासन्ती श्री में विभूषित कर दिया था; सारा नीलाम्बर उसके हृदय हिल्लोल से पूर्ण हो गया था और पृथ्वी जैसे उसी के सुगन्धित मर्मकोष के चारों ओर रक्तपद्म के कोमल दलों के समान स्तर-स्तर में विकसित हो उठी थी।

घर में उसके मां-बाप और दो छोटे भाइयों के अतिरिक्त और कोई नहीं था।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

दोनों भाई तड़के ही जल्दी खाकर स्कूल जाते, फिर स्कूल से लौट खाना खाते और सन्ध्या के बाद मुहल्ले के नाइट स्कूल के पाठ अभ्यास करने जाते। पिता सामन्य वेतन पाते, घर में मास्टर रखने की उनमें सामर्थ्य नहीं थी।

काम से अवसर पा हेम अपने निर्जन कमरे में आ बैठती। अपलक राजपथ पर लोगों का आना-जाना देखती; फेरीवाला कातर और ऊँचे स्वर में हांक लगाता, वही सुनती; और सोचती पथिक सुखी हैं, भिक्षुक स्वतन्त्र हैं, और फेरीवाला जीविका के लिए कठिन प्रयास में प्रवृत्त है—ऐसा नहीं—ये सारे लोग मानो गमनागमन सुख रंगभूमि के अन्यतम अभिनेता मात्र हैं।

और सवेरे, अपराह्न, सन्ध्या, समय परिपाटी वेशधारी, गर्वोद्धत स्फीत वक्ष मोहित मोहन को देख पाती। वह देखने में सर्वसौभाग्य सम्पन्न पुरुष श्रेष्ठ महेन्द्र के समान जान पड़ता। लगता, उस उन्नत मस्तक सुवेश सुन्दर युवक के पास सब कुछ है और उसे सब कुछ दिया जा सकता है। बालिका जैसे गुड़िया को जीवित प्राणी मारकर खेलती है, वैसे ही विधवा मोहित को मन-ही-मन सब प्रकार महिमा से मंडित कर देवता रूप में खेलती थी।

किसी-किसी शाम को देखती, मोहित का कमरा प्रकाश से उज्ज्वल, नर्तकी की नूपुर-ध्वनि और नारी कंठ के संगीत ध्वनि से मुखरित है। उस दिन वह दीवारों पर पड़ी चंचल छायाओं की ओर देखते-देखते निद्राहीन सतृष्ण नेत्रों से दीर्घ रात्रि जगते बैठे हुए काट देती। उसका व्यथित पीड़ित हृदय-पिंड पिंजरे के पक्षी की तरह पंख-पंजर पर प्रचंड आवेग से आघात करता रहता।

ऐसा नहीं कि वह अपने कृत्रिम देवता की विलासमत्तता के लिए मन-ही-मन भर्त्सना करती, निन्दा किया करती थी। आग जैसे पतंगे को नक्षत्र-लोक का प्रलोभन दिखा आकर्षित करती है, मोहित का वह आलोकित गति वाद्य विक्षुब्ध प्रमोद मदिरोच्छ्वसित कक्ष हेमशशी को उसी प्रकार स्वर्ग मरीचिका को दिखाकर आकर्षित करता। वह गहन रात्रि में एकाकिनी जगी बैठी उस पास के वातायन की आलोक छाया तथा संगीत और अपने मन की आकांक्षा तथा कल्पना को ले एक माया राज्य गढ़ लेती। अपनी मानस पुत्तलिका को उस मायापुरी के बीच बैठाकर विस्मित-विमुग्ध नेत्रों से निरीक्षण करती और अपने जीवन-यौवन, सुख-दुःख, इहलोक-परलोक सभी को वासना के अंगार से अगरु के समान जला-जलाकर उसक निस्तब्ध निर्जन मन्दिर में उसकी पूजा करती। वह जानती नहीं थी, उस सम्मुखवर्ती उस हर्म्यवातायन के अभ्यन्तर में तरंगित प्रमोद-प्रवाह में एक निरतिशय क्लान्ति, ग्लानि, पंकिलता, वीभत्स-क्षुधा और प्राणक्षयकारी दाह है। उसे वीतनिद्र निशाचर आलोक में जो एक

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हृदयहीन निष्ठुरता का कुटिल हास्य प्रलय-क्रीड़ा करता रहता, विधवा दूर से उसे देख नहीं पाती।

हेम अपने निर्जन वातायन में बैठी अपनी माया स्वर्ग और कल्पित देवता को ले चिर जीवन स्वप्नावेश में बिता सकती थी किन्तु दुर्भाग्य क्रम से देवता ने अनुग्रह किया और सवर्ग समीप आने लगा। जिस व्यक्ति ने इतने दिनों अकेले बैठकर स्वर्ग रचा था, वह भी टूटकर धराशायी हुआ।

वह वातायनवासिनी मुग्ध बालिका के प्रति कब मोहित की लालायित दृष्टि पड़ी, कब उसे विनोदचन्द्र नाम के मिथ्या हस्ताक्षर से उसे बारम्बार पत्र लिखा और अन्त में एक सशंक उत्कण्ठित अशुद्ध वर्तिनी और उच्छ्वसित हृदयावेग पूर्ण उत्तर मिला और उसके बाद कुछ दिन घात-प्रतिघात, उल्लास-संकोच, सन्देह-संभ्रम, आशा-आशंका की कैसी आंधी बहने लगी, उसके बाद प्रलय सुखोन्मत्तता में सारा जगत् संसार विध्वा के चारों ओर कैसे घूमने लगा और घूमते-घूमते घूर्णन वेग से सारा जगत् मिथ्या छाया के समान कैसे अदृश्य हो गया और अन्त में कब एक दिन वह रमणी घूर्णमान संसार चक्र वेग से विच्छिन्न हो अत्यन्त दूर विक्षिप्त हो पड़ी, वह सब विवरण पूरे विस्तार से कहने की आवश्यकता नहीं दिखती।

एक दिन गहन रात्रि में माता-पिता, भ्राता और गृह छोड़ हेमशशी विनोदचन्द्र छद्मनामधारी मोहित के साथ एक गाड़ी पर चढ़ बैठी। देव प्रतिमा जब अपनी सब मिट्टी, फूस और पन्नी के पहले लेकर उसकी बगल में जा बैठी, तब वह लज्जा-ग्लानि से मिट्टी में मिली जा रही थी।

अन्त में जब गाड़ी छूटी तब वह रोकर मोहित के पैर पकड़कर बोली, "सुनो, मैं तुम्हारे पैरों पड़ती हूं मुझे मेरे घर पहुंचा आओ।"

मोहित ने हड़बड़ाकर उसके मुंह को जोर से दबा लिया। गाड़ी द्रुत वेग से चलने लगी।

जल निमग्न मरणासन्न व्यक्ति को जैसे मुहूर्त में जीवन की सारी घटनावली स्पष्ट याद हो आती है, वैसे उस द्वाररुद्ध गाड़ी के गाढ़ अन्धकार में हेमशशी को याद आने लगी, प्रतिदिन भोजन के समय उसके पिता उसे सामने बैठाये बिना खाना नहीं खाते थे; उसे याद आया, उसके सबसे छोटे भाई को स्कूल से लौटकर अपनी दीदी के हाथ से खाना अच्छा लगता; याद आया, सवेरे-सवेरे वह अपनी मां के साथ पान लगाने बैठती और अपराह्न में उसके बाल बांध देती। घर का एक-एक छोटे-से-छोटा कोना और दिन के प्रत्येक छोटे काम उसके मन के सामने जाज्वल्यमान हो उठने लगे। तब अपना निभृत जीवन और छोटी-सी गृहस्थी उसे स्वर्ग जान पड़ी।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

वह पान लगाना, बाल बांधना, पिता के भोजन के समय पंखा झलना, छुट्टी के दिन मध्याह्न-निद्रा के समय उनके सफेद बाल उखाड़ना, भाइयों की शैतानियों को सहना—यह सभी उसके लिए परम शान्तिपूर्ण दुर्लभ सुख के समान जान पड़ने लगे; वह समझ न सकी, यह सब रहते संसार में और किस सुख की आवश्यकता है।

उसे लगने लगा, पृथ्वी के घर-घर में सब कुल-कन्याएं इस समय गहरी निद्रा में निमग्न हैं। उस अपने कमरे में अपनी शैया पर निस्तब्ध रात्रि में निश्चिन्त नींद में पड़ी होती—यह कितनी सुखकर है, जिसे इससे पहले वह क्यों नहीं समझ सकी। घर की लड़कियां कल सुबह घरों में जाग उठेंगी. निःसंकोच, नित्य कर्म में प्रवृत्त होंगी, और गृहच्युता हेमशशी की यह निद्राहीन रात्रि का प्रभात कहां जाकर होगा और उस निरानन्द प्रभात में उसके उस गली के किनारे छोटी-मोटी घर-गृहस्थी पर जब सुबह की चिर-परिचित शान्तिमय हास्यपूर्ण धूप आ पड़ेगी उस समय वहां सहसा कैसी लज्जा प्रकट हो पड़ेगी—कैसी लांछना, कैसा हाहाकार जाग्रत हो उठेगा।

हमें का हृदय विदीर्ण हो करुण विलाप करने लगा; वह सकरुण अनुनय के साथ कहने लगी, "अभी रात बाकी है। मेरी मां, मेरे दोनों भाई अभी जगे नहीं होंगे; अभी भी मुझे लौटा आओ।" किन्तु उसके देवता ने कान तक नहीं दिया। एक द्वितीय श्रेणी के चक्र शब्द मुखरित रथ पर चढ़ाकर उसे उसके अनेक दिन के आकांक्षित स्वर्ग लोक की ओर ले चला। इसके कुछ ही दिनों बाद देवता और स्वर्ग ने एक बार फिर दूसरे एक द्वितीय श्रेणी के एक जीर्ण रथ पर चढ़ एक दूसरे पथ पर प्रस्थान किया—रमणी आकंठ पंक में निमज्जित हो गयी।

3

मोहित मोहन के पूर्व इतिहास से इस एकमात्र घटना का उल्लेख किया। रचना कहीं एकरस न हो उठे इसी से अन्य घटानाओं का उल्लेख नहीं किया।

अब उन सब पुरानी बातों को फिर से कहने की आवश्यकता नहीं। अब उसी विनोदचन्द्र नाम को स्मरण रखे; ऐसा कोई व्यक्ति जगत् में है या नहीं, इसमें सन्देह है। अब मोहित शुद्धाचारी नहीं हुए हैं, वे आह्निक तर्पण करते हैं, और एक समय शास्त्र-आलोचना किया करते हैं। अपने छोटे-छोटे लड़कों को भी योगाभ्यास करा रहे हैं और घर की लड़कियों की सूर्य, चन्द्र, मरुत गण के लिए भी अभेद्य अन्तःपुर में प्रबल शासन द्वारा रक्षा कर रहे हैं। किन्तु किसी समय एकाधिक रमणियों के प्रति अपराध किया है इससे आज रमणियों के सब प्रकार के सामाजिक अपराधों का

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कठिनमत दंड विधान किया करते हैं।

क्षीरोदा को फांसी की सजा देने के दो-एक दिन बाद भोजन विलासी मोहित जेल के बगीचे में मनपसन्द साग-सब्जी संग्रह करने गये। क्षीरोदा अपने पतित जीवन के सारे अपराधों को स्मरण कर अनुतप्त हुई या नहीं, यह जानने का उन्हें कौतूहल हुआ। उन्होंने वन्दिनी-गृह में प्रवेश किया।

दूर से ही जोर की कलह की ध्वनि सुनायी पड़ रही थी। कमरे में प्रवेश करके देखा, क्षीरोदा ने प्रहरी के साथ भारी आपाधापी-सी मचा रखी है। मोहित मन-ही-मन हंसे, सोचा, स्त्रियों का स्वभाव ऐसा ही है। मौत सिर पर सवार है, फिर भी झगड़ा करना नहीं छोड़ेंगी। ये लोग शायद यमालय जाकर यमदूत के साथ भी झगड़ा करती हैं।

मोहित ने सोचा, यथोचित भर्त्सना और उपदेश द्वारा अभी भी इसके अन्तर में अनुताप उद्रेक करना उचित है। इस साधु उद्देश्य से क्षीरोदा के निकटवर्ती होते ही क्षीरोदा करुण स्वर से हाथ जोड़े बोली, "ओ जज साहब, दुहाई तुम्हारी। इससे कहो यह मेरी अंगूठी लौटा दे।"

पता लगाया तो जान पड़ा कि क्षीरोदा ने बालों में एक अंगूठी छिपाकर रखी थी—संयोगवश प्रहरी की दृष्टि उस पर पड़ी, जिसे उसने छीन लिया।

मोहित फिर मन-ही-मन हंसे। आज नहीं तो कल फांसी के तख्ते पर चढ़ेगी, फिर भी अंगूठी को मोह नहीं छोड़ पा रही है, गहना ही स्त्रियों के सर्वस्व है।

प्रहरी से कहा, "कहां है अंगूठी, जरा दिखाओ।"—प्रहरी ने उसके हाथ में अंगूठी दे दी।

अचानक ही उन्होंने जैसे कोई जलता अंगारा हाथ में लिया हो, ऐसे चौंक उठे। अंगूठी के एक तरफ हाथी-दांत पर तेल के रंग से चित्रि मूंछ-दाढ़ी से सुशोभित एक युवक का बहुत छोटा-सा चित्र जड़ा है और दूसरी तरफ सोने के ऊपर खुदा था—विनोदचन्द्र।

तब मोहित ने अंगूठी से मुंह उठाकर एक बार क्षीरोदा के मुंह की ओर अच्छी तरह ताका। चौबीस वर्ष पूर्व का और एक अश्रु सजल प्रीति सुकोमल सलज्ज शंकित मुख याद आया; उस मुख के साथ इसका सादृश्य है।

मोहित ने फिर एक बार सोने की अंगूठी की ओर देखा। उसके बाद जब धीरे-धीरे मुंह ऊपर उठाया तब उनके सामने यह कलंकिनी पतिता रमणी एक लघु स्वर्णाकर उज्ज्वलप्रभा एवं स्वर्णमयी देवी प्रतिमा के समान उद्भासित हो उठी।

●

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पाषाणी

अपूर्व कुमार बी॰ए॰ पास करके ग्रीष्मावकाश में विश्व की महान् नगरी कलकत्ता से अपने गांव को लौट रहा था।

मार्ग में छोटी-सी नदी पड़ती है। वह बहुधा बरसात के अन्त में सूख जाया करती है; परन्तु अभी तो सावन मास है। नदी अपने यौवन पर है, गांव की हद और बांस की जड़ों का आलिंगन करती हुई तीव्रता से बहती चली जा रही है।

लगातार कई दिनों की घनघोर बरसात के बाद आज तनिक मेघ छटे हैं और नभ पटल पर सूर्य देव के दर्शन हो रहे हैं।

नौका पर बैठे हुए अपूर्व कुमार के हृदय में बसी हुई प्रतिमा यदि दिखाई देती तो देखते कि वहां भी इस नवयुवक की हृदय-सरिता नव वर्षा से बिल्कुल तट तक भर गई है और सरिता का जल ज्योति से झिल-मिल झिल-मिल और वायु से छप्-छप् कर रहा है।

नौका यथास्थान घाट पर जा लगी। नदी के उस तट पर से वृक्षों की आड़ में से अपूर्व के घर की छत स्पष्ट दिखाई दे रही है। घर पर किसी को खबर तक नहीं कि अपूर्व शहर से लौट रहा है, अतः घर पर से लिवाने के लिए कोई नहीं आया ? नाविक सूटकेस उठाने के लिए तैयार हुआ तो अपूर्व ने उसे इन्कार कर दिया। वह स्वयं ही सूटकेस हाथ में उठाकर आनन्द की लहर से झटपट नौका से उतर पड़ा।

उतरते ही, घाट पर थी फिसलन, सूटकेस सहित वह दल-दल में गिर पड़ा, और ज्यों ही गिरा, त्यों ही न जाने किधर से मोटी ऊंची हास लहरी ने आकर समीप के पीपल पर बैठी हुई चिड़ियों को उड़ा दिया।

अपूर्व बहुत ही लज्जित हुआ और झटपट स्वयं को सम्भाल कर चहुंओर देखने लगा, देखा कि घाट के एक छोर पर जहां महाजन की नौका से नई ईंटें उतार कर इकट्ठी की गई हैं उन्हीं पर बैठी हुई एक नवयौवना हंसते-हंसते लोट-पोट हो रही है।

अपूर्व ने पहचान लिया कि वह उसी के पड़ोसी की लाड़ली बेटी मृगमयी है। पहले इनका घर यहां से बहुत दूरी पर बड़ी नदी के तट पर था। दो-तीन साल गुजरे,

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

नदी की बाढ़ के कारण उन्हें वह स्थान छोड़कर वहां चला आना पड़ा।

मृगमयी के विषय में बहुत कुछ अपवाद सुनने के लिए मिलता है। ग्रामीणवासी पुरुष तो इसे स्नेह के स्वर में पगली कहकर पुकारते हैं; लेकिन उनकी घरवालियां इसके उद्दण्ड स्वभाव से सर्वदा त्रस्त, चिन्तित और शंकित रहा करती हैं। गांव के छोकरों के साथ ही उसका खेल होता है; क्योंकि समवस्यक लड़कियों के प्रति उसकी अवज्ञा की सीमा नहीं। बालकों के राज्य में यह लड़की एक प्रकार से शत्रु-पक्ष की सेना के उपद्रव के समान-सी प्रतीत होती है।

पिता की लाड़ली बिटिया ठहरी और इसीलिए वह इतनी निर्भय रहती है। वास्तव में इस विषय मृगमयी की मां अपनी सहेलियों के आगे हर समय अपने पति के विरुद्ध फरियाद किया ही करती, मगर फिर भी यह सोचकर कि पिता बेटी को लाड़ करते हैं और जब ये अवकाश के समय घर रहते हैं तो मृगमयी के नेत्रों के अश्रु उनके हृदय-पटल पर बहुत ही आघात पहुंचाते हैं। वे प्रवासी पति का स्मरण करके लड़की को किसी भी तरह पीड़ा नहीं पहुंचा सकती ?

मृगमयी का रंग देखने में अधिक साफ नहीं है। छोटे-छोटे घुंघराले केश पीठ पर आच्छादित रहते हैं। चेहरे पर बिल्कुल बचपना छाया रहता है। बड़ी-बड़ी कजरारी आंखों में न तो लज्जा है, न भय और न हाव-भाव में किसी प्रकार का संशय ? वह लम्बी, परिपुष्ट, स्वस्थ और सबल है। उसकी आयु अधिक है या कम, यह प्रश्न किसी के मन में उठता ही नहीं। यदि उठता तो ग्रामीण पड़ोसी इस बात पर मां-बाप की निन्दा करते कि अभी तक यह कुंवारी ही फिर रही है। जब कभी गांव के विदेशी जमींदार की नौका आकर घाट पर लगती है, तो उस दिन ग्रामीणवासी, उनकी आवभगत में घबरा से जाते हैं, गृहणियों की मुख-रंग-भूमि पर अकस्मात नाक के नीचे तक अवगुंठन खिंच जाता है; परन्तु मृगमयी न जाने कहां के किसी के वस्त्रों से हीन बच्चे को उठाये हुए घुंघराले केशों को पीठ पर बिखेरे जा खड़ी होती है। जिस देश में कोई शिकारी नहीं, कोई मुसीबत नहीं, उस देश की मृगी शावक की तरह निडर खड़ी हुई आश्चर्यचकित-सी देखा करती और अन्त में बाल-संगियों के पास जाकर इस नये मानव के आचार-व्यवहार के विषय में विस्तार के साथ भूमिका बांधती।

हमारे अपूर्व कुमार ने अवकाश के दिनों में घर आकर इससे पहले और भी दो-चार बार इस सीमाहीन नवयौवना को देखा है और फालतू समय में, यहां तक कि काम के समय में भी, इसके विषय में विचार किया है। इस धरा पर बहुत से चेहरे देखने में आते हैं; पर कोई-कोई चेहरा ऐसा होता है कि न कुछ कहना न सुनना,

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

चट से मन के भीतर जाकर ऐसा बस जाता है कि उसे निकालना मुश्किल हो जाता है। केवल सौन्दर्य के कारण ही ऐसा होता है। सो बात नहीं, वह तो कुछ और ही है, सम्भवतः वह है स्वच्छता। अधिकांश चेहरों पर मानव प्रकृति पूरी तौर से अपनी ज्योति से नहीं जगमगा पाती; जिस चेहरे पर हृदय के कोने में छिपा हुआ वह रहस्यमय व्यक्ति बिना रुकावट के बाहर निकलकर दिखाई देता है, वह चेहरा सैकड़ों-हजारों में छिपता नहीं; पल-भर में हृदय-पटल पर अंकित हो जाता है। इस लड़की के चेहरे पर, आंखों पर एक चंचल और उद्दण्ड नारी प्रकृति सदैव स्वच्छन्द और वन के दौड़ते हुए हिरन की तरह दिखाई देती रहती है, भागती-फिरती रहती है और इसलिए ऐसे सलौने चंचल मुख को एक बार देख लेने पर फिर सहज में वह भुलाये नहीं भूला।

पाठकगण को यह बताने की आवश्यकता नहीं कि मृगमयी की कौतूहलता से भरा हास्य-ध्वनि चाहे कितनी ही मृदु क्यों न हो ? लेकिन अभागे अपूर्व के लिए वह तनिक कुछ दुखदायी ही साबित हुई ? मारे लज्जा के उसका चेहरा सुर्ख हो उठा और हाथ का सूटकेस झट-पट नाविक के हाथ में सौंपकर वह शीघ्रता से अपने घर की ओर चल दिया।

प्रकृति नदी का सुन्दर नृत्य। नदी का किनारा, वृक्षों की छाया, पक्षियों का मृदु कलरव, प्रभात की मीठी-मीठी धूप और बीस वर्ष की अवस्था। कतिपय ईंटों का ढेर ऐसा कुछ खास उल्लेख योग्य नहीं; पर उस पर जो मानवी बैठी थी, उसने उस शुष्क और नीरस आसन पर भी एक प्रकार का मूक सौन्दर्य का भाव फैला रखा था। छिः ! छिः ! ऐसे दृश्य के मध्य में प्रथम पग उठाते ही, जिसका सारा का सारा व्यक्तित्व प्रहसर में परिवर्तित हो जाये तो उसके भाग्य की इससे बढ़कर निष्ठुरता और क्या हो सकती है ?

2

ईंटों के ढेर से बहती हुई हंसी की तरंग सुनते-सुनते वृक्षों की छाया के नीचे दलदल में सनी निम्न दुकुल सूटकेस लिये हुए श्रीयतु अपूर्व जी किसी तरह अपने घर पहुंचे ?

अकस्मात ही बेटे के पहुंच जाने से विधवा मां मारे उल्लास के फूली न समाई। उसी समय खोया, दही, दूध और बढ़िया मछली की तलाश में दूर-पास सब स्थानों पर आदमी दौड़ाये गये और पास-पड़ोस में भी एक प्रकार की हलचल-सी पैदा हो

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

गई।

भोजन की समाप्ति पर मां ने बेटे के आगे ब्याह का प्रस्ताव छेड़ा। अपूर्व इसके लिए तैयार था ही। कारण यह प्रस्ताव बहुत पहले से ही पेश था, केवल अपूर्व तनिक कुछ नई रोशनी के चक्कर में आकर हठ कर बैठा था कि बी॰ए॰ पास किए बिना विवाह हरगिज नहीं कर सकता इत्यादि। अब तक उसकी मां उसके पास होने की ही राह देख रही थी; सो अब किसी प्रकार की आपत्ति उठाने के मायने हैं कि झूठी बहानेबाजी। अपूर्व ने कहा—"पहले लड़की तो देखो, फिर देखा जायेगा।"

मां ने उत्तर दिया—"लड़की-वड़की सब देखी जा चुकी है, उसके लिए तुझे फिक्र करने की जरूरत नहीं।"

किन्तु अपूर्व उसके लिए स्वयं ही फिक्र करने के लिए उद्यत हो गया, बोला—"लड़की बिना देखे मैं विवाह नहीं कर सकता।"

मां सोच में पड़ गई। ऐसी अनोखी बात तो आज तक नहीं सुनी थी। फिर भी वह राजी हो गई।

रात को अपूर्व दीपक बुझाकर बिस्तर पर जा पड़ा। पड़ते ही बरसात यामिनी की सारी-की-सारी स्वर लहरी और पूर्व निस्तब्धता के उस पार से उसकी सेज पर एक उच्छ्वासित उच्च मृदु कंठ की हास-ध्वनि आ-आ कर उसके कानों में झंकरित होने लगी। उसका अशांत मन स्वयं को बार-बार निरन्तर यह कह-कहकर व्यथित करने लगा कि सवेरे वह जो पैर फिसलकर गिर पड़ा था उसका किसी-न-किसी युक्ति से सुधार कर लेना ही चाहिए ? उस नवयौवना को यह मालूम ही नहीं कि मैं अपूर्व कुमार हूं, अचानक फिसलन पर पांव पड़ जाने से दलदल में गिर जाने पर भी मैं कोई उपेक्षणीय गांव का वासी नहीं।

अगले दिन अपूर्व को लड़की देखने जाना था। अधिक दूर नहीं, पड़ोस में ही लड़की वालों का घर है। तनिक कुछ कोशिश करने के बाद ही कपड़े बदन पर डाले। निम्न दुकुल (धोती) और दुपट्टा जोड़कर रेशमी अचकन, सिर पर अमीरी रंग की गोल पगड़ी और पैरों में बढ़िया चमकते हुए जूते पहनकर, रेशमी कपड़े की बढ़िया छतरी हाथ में लटकाये वह सवेरे ही चल दिया।

भावी ससुराल में घूसते ही वहां कोलाहल-सा मच गया। अन्त में यथा समय कम्पित हृदय को झाड़-पोंछकर, रंग-वंग कर, जूड़े में गोटे आदि लगाकर, एक पतली रंगती साड़ी में लपेटकर उसे भावी पति के सामने लाया गया। आगन्तुका एक कोने में लगभग घुटनों तक माथा झुकाये चुपचाप जड़-वस्तु-सी बैठी रही और उसके पीछे धैर्य बंधाये रखने के लिए खड़ी एक अधेड़ अवस्था की दासी। उसका एक भाई,

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जोकि अभी बच्चा ही था, अपने परिवार में अनाधिकार प्रवेश करने वाले इस नये व्यक्ति की पगड़ी, घड़ी की चैन और उठती हुई मूंछों पर हाथ फेरने के बाद अन्त में गम्भीरता के साथ पूछा—"तुम क्या पढ़ती हो ?"

आभूषणों के भार से दबी हुई लज्जा की गठरी में से उसे अपने प्रश्न का कोई भी उत्तर नहीं मिला। दो-चार बार पूछे जाने और अधेड़ दासी द्वारा पीठ पर बारम्बार धैर्य की थपकियां पड़ने के बाद लड़की ने बहुत ही धीमे स्वर में शीघ्रता के साथ एक ही सांस में कहकर छुट्टी पा ली—"कन्या बौधिनी दूसरा भाग, व्याकरण सार, भूगोल, अंकगणित और भारत का इतिहास।

इतने में बाहर किसी की तेज चलने की धम-धम की आवाज सुनाई दी और दूसरे ही क्षण दौड़ती-हांफती और पीठ पर केशों को हिलाती हुई मृगमयी वहां पर आ धमकी। उसने अपूर्व की ओर आंख उठाकर देखा तक नहीं, सीधी उस भावी वधू के भाई राखाल के पास पहुंची और उसके कोमल हाथ को पकड़कर खींचना शुरू कर दिया। राखाल उस समय भावी वधू को देखने में लीन था; वहां से वह किसी भी तरह टस से मस नहीं हुआ ? दासी अपने संयत कंठ की मृदुता की भरसक रक्षा करती हुई यथासाध्य तीव्रता के साथ मृगमयी को धिक्कारने लगी। अपूर्व अपनी सारी-की-सारी मौनता और यश को एकत्रित करके पगड़ी बंधे माथे को ऊंचा करके बैठा रहा और उदर के पास लटकती हुई घड़ी की चैन को हिलाने लगा।

अन्त में मृगमयी ने जब देखा कि उसका साथी किसी भी तरह विचलित नहीं हो रहा, तब उसने उसकी कमर पर जोर का मुक्का जमा दिया और लगे हाथों भावी वधू से माथे का अवगुंठन उघाड़कर वह आंधी के वेग के समान जिस प्रकार आई थी, उसी प्रकार भाग गई। दासी मन मारकर रह गई और भीतर-ही-भीतर घुमड़कर गरजने लगी। राखाल अचानक अवगुंठन के हट जाने से एकाएक खिलखिला पड़ा। इस खुशी में कमर पर पड़े मुक्के की चोट को भी उसने महसूस नहीं किया; कारण, ऐसा लेन-देन अक्सर हुआ ही करता था, इससे किसी प्रकार की आज नवीनता नहीं थी। इसके लिए एक दृष्टान्त ही बहुत है।

एक दिन की बात है, मृगमयी के केश तब पीठ तक बढ़े थे; राखाल ने अचानक पीछे से आकर कैंची से उसके बाल काट दिए; इस पर मृगमयी को बहुत क्रोध आया और उसने चट से राखाल के हाथ से कैंची छीनकर अपने शेष केश बड़ी निर्दयता से कतर-कतरकर उसके मुंह पर दे मारे। मृगमयी के घुंघराले केशों के गुच्छे डाली से गिरे हुए काले अंगूरों के गुच्छों की तरह धरा पर गिर पड़े। इन दोनों में शुरू से ही इस प्रकार की प्रणाली प्रचलित थी।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

इसके बाद वह शांत सभा अधिक देर तक न चल सकी। गठरी-सी बनी वधू अपने को बड़ी कठिनता से लम्बी बनाकर दासी के साथ घर के भीतर चली गई। अपूर्व अपनी मूंछों पर हाथ फेरता हुआ उठ खड़ा हुआ। बाहर जाकर देखा कि उसका बढ़िया नया जूता वहां से गायब है। बहुत प्रयत्न करने पर भी इस बात का पता नहीं लगा कि जूते कौन ले गया और कहां गये ?

घर वाले सभी बड़े परेशान से हुए और अपराधी के नाम पर अपशब्दों की बौछार होने लगी। जब किसी प्रकार भी जूतों का पता नहीं लगा, तो अन्त में विवश होकर घर के मालिक की फटी-पुरानी ढीली चट्टी पहनकर पतलून पगड़ी से सुसज्जित अपूर्व गांव के कीचड़ वाले रास्ते को बहुत सावधानी के साथ पार करता हुआ घर की ओर चल दिया।

तालाब के किनारे सुनसान पथ पर पहुंचते ही सहसा फिर उसे वही जोर का परिहासात्मक स्वर सुनाई दिया। मानो वृक्ष और पल्लवों की ओट में से कौतुकप्रिया बन देवी ही अपूर्व की उन पुरानी चट्टियों को देखकर एकाएक हंस पड़ी हो।

अपूर्व कुछ लज्जित-सा होकर ठिठक गया और इधर-उधर दृष्टि फेंक कर देखने लगा। इतने में सघन झाड़ियों में से निकलकर किसी निर्लज्ज अपराधिनी ने उसके सामने नये जूते रख दिए और चट से बाहर जाने के लिए उद्यत हुई कि अपूर्व ने उसके दोनों हाथ पकड़कर अपनी कैद में ले लिया ?

मृगमयी ने यथा-शक्ति टेढ़ी-तिरछी होकर पूरी शक्ति का प्रयोग करके भागने का बहुत प्रयत्न किया; लेकिन सब व्यर्थ। घुंघराले केशों से घिरे हुए उसके गोल-मटोल चेहरे पर सूर्य की किरणें, वृक्षों की डालियों और पल्लवों में छन-छनकर पड़ने लगीं। कौतूहलता से वशीभूत होकर कोई पथिक, जिस प्रकार दिवाकर की किरणों से चमकती हुई स्वच्छ चंचल निर्झरणी की ओर झुककर टकटकी लगाये उसकी तली को देखता रहता है, ठीक उसी तरह अपूर्व ने मृगमयी के ऊपर उठे चेहरे पर तनिक झुककर उसकी खंजन-सी चंचल आंखों के भीतर गहरी दृष्टि फेंककर देखा और फिर बहुत धीमे से उसे अपनी भुट्ठियों के बन्धन से मुक्त कर दिया। अपूर्व क्रोधित मुद्रा में मृगमयी को पकड़कर मारता तो उसे तनिक भी अचम्भा न होता; किन्तु इस प्रकार सुनसान पथ में इस अनोखी सजा का वह कुछ अर्थ ही न समझ सकी।

नर्त्तन करती हुई प्रकृति नटी के नूपुरों की झंकार की भांति फिर वही हास्य-ध्वनि उस नीरव पथ में गूंज उठी और चिन्तातुर अपूर्व धीरे-धीरे पग उठाता हुआ घर की ओर चल दिया।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

3

अपूर्व उस दिन अनेक प्रकार के बहाने बना-बनाकर न तो घर के अन्दर गया और न मां से भेंट की। किसी के यहां भोज का निमन्त्रण था; वहीं खा आया। अपूर्व जैसा पढ़ा-लिखा और भावुक नवयुवक एक मामूली पढ़ी-लिखी लड़की के मुकाबले अपने छिपे हुए गौरव का बखान करने और उसे आन्तरिक महत्ता का पूर्व परिचय देने के लिए क्यों इतना आतुर हो उठा; यह समझना बहुत कठिन है ? एक निरी गांव की चंचल बाला ने उसे मामूली नवयुवक समझ ही लिया, तो क्या हो गया ? और उसनै पल भर के लिए अपूर्व का परिहास करके और फिर उसके अस्तित्व को किसी ताक पर रखकर, राखाल नाम के अबोध बच्चे के साथ खेलने के लिए इच्छा प्रकट की, तो उसमें अपूर्व का बिगड़ ही क्या गया ? इन बच्चों के सामने उसे प्रमाणित करने की आवश्यकता ही क्या है कि वह विश्वदीप मासिक पत्र में पुस्तकों की समालोचना लिखा करता है और उसके सूटकेस में एसन्स, जूते, रुबिनी के कैम्फर, पत्र लिखने के रंगीन कागज और 'हारमोनियम शिक्षा, पुस्तक के साथ एक पूरी लिखी हुई प्रेस कापी, यामिनी के गर्भ में भावी उषा की तरह, प्रज्चलित होने की राह देख रही है; पर मन को समझना कठिन है, कम-से-कम इस देहाती चंचल लड़की के सामने श्री अपूर्व कुमार बी॰ए॰ हार मानने के लिए किसी प्रकार भी तैयार नहीं।

सन्ध्या को अपूर्व जब घर के भीतर पहुंचा, तो उसकी मां ने पूछा—"क्यों रे, लड़की देख आया ? कैसी है, पसंद है न ?"

अपूर्व ने कुछ लजाते हुए उत्तर दिया—"हां, देख तो आया मां, उनमें से मुझे एक ही लड़की पसन्द है।"

मां ने तनिक कुछ आश्चर्यचकित स्वर में पूछा—"तूने कितनी लड़कियां देखी थीं वहां ?"

अन्त में दो-चार प्रश्नोत्तर के बाद मां को मालूम हुआ कि उसके लड़के ने पड़ोसिन शारदा की लड़की मृगमयी पसंद की है। इतना पढ़-लिखकर भी यह पसंद।

परिणाम यह निकला कि कमबख्त अड़ियल टट्टू की तरह गर्दन टेढ़ी करके, कुछ पीछे को उठकर कह बैठी—"मैं ब्याह नहीं करूंगी, जाओ।"

4

इस पर भी उसे ब्याह करना ही पड़ा।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

उसके बाद अध्ययन शुरू हुआ। अपूर्व की मां के घर जाकर एक ही रात में मृगमयी की अपनी सारी दुनिया ने बेड़ियां पहन लीं।

सास ने वधू का सुधार करना आरम्भ कर दिया। बहुत ही कठोर मुद्रा बनाकर उससे बोली—"देखो बेटी, अब तुम नन्हीं बच्ची नहीं रहीं....हमारे घर में ऐसी बेहाई नहीं चल सकेगी।"

सास ने यह बात जिस भाव से कही, मृगमयी ठीक उसे उसी रूप में न समझ सकी। उसने विचारा कि इस घर में यदि न चले, तो शायद कहीं दूसरी जगह जाना पड़ेगा। मध्याह्न के बाद वह घर में नहीं दिखाई दी। 'कहां गई ? कहां गई ?' शोर मच गया। ढूंढ़ शुरू हुई। अन्त में विश्वासघातक राखाल ने उसके गुप्त स्थान का पता बताकर, उसे कैद करवा ही दिया। वह बड़-वृक्ष के नीचे श्री राधाकान्त जी के टूटे रथ में जाकर छिप गई थी।

सब ही के सामने मां ने और पास-पड़ोस की गृह-स्त्रियों ने उसे कितना डांटा-फटकारा और लज्जित किया, इसकी कल्पना स्वयं आप ही बना लें तो अच्छा हो ?

रात्रि को खूब घनघोर घटाएं छा गईं और रिमझिम-रिमझिम मेह बरसने लगा। अपूर्व ने धीरे-से मृगमयी के पास शैया पर जाकर उसके कान में धीमे स्वर में कहा—"मृगमयी, क्या तुम मुझे प्यार नहीं करतीं ?"

मृगमयी ने तत्काल ही कड़ककर उत्तर दिया—"नहीं, मैं तुम्हारे से हरगिज प्यार नहीं कर सकती।" मानो उसने सारी गुस्से की पोटली अपूर्व के माथे पर दे मारी।

अपूर्व ने खिन्न स्वर में पूछा—"क्यों, मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है ?" इस दोष की सन्तोषजनक कैफियत देना तो कठिन है। अपूर्व ने मन-ही-मन कहा, इस विद्रोह-मन को जैसे भी बने वश में करना ही होगा।

अगले रोज सास ने मृगमयी में विद्रोह भाव के सब लक्षण देखकर उसे अन्दर के कोठे में बन्द कर दिया। पिंजड़े में फंसी नई चिड़िया की तरह पहले तो वह कोठे के अन्दर फड़फड़ाती रही अन्त में जब कहीं से भी भागने का कोई मार्ग दिखाई न दियां तो हताश, क्रोध से उन्मत्त हो बिछौने की चादर की दांत से धज्जियां उड़ा दीं और धरा पर औंधी गिर पड़ी और मन-ही-मन पिता की याद करके रोने-चिल्लाने लगी।

ठीक इस समय धीरे-से कोई उसके समीप जाकर बैठ गया। बड़े स्नेह से उसके धूल-धूसरित केशों को कपोलों पर से एक ओर हटा देने का प्रयत्न करने

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

लगा। मृगमयी ने बड़े जोर से अपना सिर हिलाकर उसका हाथ हटा दिया। अपूर्व ने उसके कानों के पास अपना मुंह ले जाकर बहुत ही कोमल स्वर में कहा—"मैंने चुपके से द्वार खोल दिया है, चलो, अपने पीछे के बगीचे में आ जायें।"

मृगमयी ने जोर से सिर हिलाते हुए कहा—"नहीं।"

अपूर्व ने उसकी ठोड़ी पकड़कर उसका मुंह ऊपर को उठाना चाहा और बोला—"एक बार देखो तो सही कौन आया है ?" राखाल धरा पर औंधी लेटी हुई मृगमयी को घूरता हुआ हत्बुद्धि ही द्वार पर खड़ा था। मृगमयी ने बिना मुंह उठाये ही अपूर्व का हाथ झटककर अलग कर दिया। अपूर्व ने कहा—"देखो राखाल तुम्हारे साथ खेलने आया है; इसके साथ खेलने नहीं जाओगी।"

उसने कुपित स्वर में कहा—"नहीं।"

राखाल ने भी देखा कि मामला कुछ संगीन है। वह किसी प्रकार वहां से निकल, जान बचाकर भाग गया ? अपूर्व चुपचाप बैठा रहा। अब मृगमयी अश्रु बहाकर सो गई तब वह चुपके से उठा और द्वार की सांकल चढ़ा, दबे पांव वहां से चल दिया।

इसके अगले ही रोज मृगमयी को पिता की एक चिट्ठी मिली उसमें उन्होंने प्राणप्यारी बेटी मृगमयी के ब्याह में न आने के कारण विलाप करके अन्त में नव दम्पत्ति को शुभ आशीष दिया था।

मृगमयी ने सास मां के पास जाकर कहा—"मैं पिताजी के पास जाऊंगी।" सास मां ने अनायास ही वधू की इस असम्भव प्रार्थना को सुनकर उसे फटकार दिया, बोली—"पिता का कहीं ठौर-ठिकाना भी है कि ऐसे ही पिताजी के पास जायेगी। तेरा तो हर काम दुनिया से निराला ही है। लाड़ मुझे पसन्द नहीं।"

वधू ने कोई उत्तर नहीं दिया ? अपने कमरे में जाकर उसने भीतर से द्वार बन्छ कर लिया और बिल्कुल निराश मानव, जिस प्रकार देवी-देवताओं से प्रार्थना करता है, उस तरह वह कहने लगी—"पिताजी, तुम मुझे ले जाओ यहां से। यहां मेरा कोई नहीं है ? मैं यहां जीवित न रह सकूंगी।"

अधिक रात चले जाने पर, जब उसके पति निद्रा में खो गये तब वह चुपके से द्वार खोलकर बाहर चल दी। वास्तव में बीच-बीच में मेघों की गर्जन सुनाई देती थी, फिर भी बिजली की रोशनी में रास्ता दिखाई देने लायक काफी रोशनी थी। पिताजी के पास जाने के लिए कौन से रास्ते को पकड़ना चाहिए, मृगमयी को कुछ भी पता न था। उसे तो केवल इना ही विश्वास था कि जिस रास्ते में पत्रवाहक डाक लेकर जाते हैं, उसी मार्ग से दुनिया के किसी भी ठिकाने पर पहुंचा जा सकता है ?

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मृगमयी भी उसी रास्ते पर चलती रही। चलते-चलते उसके शरीर का चूरा हो गया, रात्रि का लगभग अन्तिम पहर भी खत्म हो चला। सुनकर वन में, जबकि दो-चार पक्षी पंख हिला-हिलाकर अनिश्चित स्वर में बोलना चाहते थे और समय का पूर्ण निर्णय न कर सकने के कारण दुविधा में फंस चुप रह जाते थे, उस समय मृगमयी सड़क के किनारे नदी के तट पर के बाजार में पहुंची। इसके बाद, वह विचार कर रही थी कि अब किस ओर चलना चाहिए, इतने में उसे परिचित 'झमझम' शब्द सुनाई दिया ? थोड़ी देर में कंधे पर चिट्ठियों का थैला लटकाए हांफता हुआ पत्रवाहक 'खट' आ पहुंचा। मृगमयी जल्दी से उसके पास जाकर करुण स्वर में बोली—

" 'कुशीगंज' में पिताजी के पास जाऊंगी, तुम मुझे साथ ले चलो न।"

उसने उत्तर दिया—"कुशीगंज कहां है, इसका मुझे नहीं मालूम।" छोटा-सा उत्तर देकर वह घाट पर जा पहुंचा और घाट पर बंधी हुई डाक की नौका में बैठकर नाविक को जगाकर नौका खुलवा दी। उस समय उसे किसी पर दया करने या पूछ-ताछ करने की फुरसत नहीं थी।

देखते-देखते बाजार और घाट सजग हो गये। मृगमयी ने घाट पर पहुंचकर एक नाविक से कहा—"मुझे कुशीगंज पहुंचा सकोगे।"

उस नाविक ने उत्तर देने से पहले ही, बगल की नौका पर से कोई बोल उठा—"अरे कौन है ? मृगमयी बिटिया, तू यहां कैसे आई ?"

मृगमयी ने व्यग्रता से उत्तर दिया—"वनमाली ! मैं पिताजी के पास कुशीगंज जाऊंगी, तू अपनी नौका पर मुझे ले चल।"

बनमाली उसके गांव का ही नाविक था। वह उस उच्छृंखल मानवी को भली-भांति पहचानता था। उसने पूछा—"बाबूजी के पास जायेगी बिटिया। बड़ी अच्छी बात है। चल, मैं तुझे पहुंचा दूं।"

मृगमयी नौका पर जा बैठी।

नाविक ने नौका छोड़ दी। मेघों ने अश्रु बहाना शुरू कर दिया। सावन-भादों के समान पूरी चढ़ी हुई नदी के थपेड़े नौका को जोर से हिलाने लगे। मृगमयी का सारा शरीर थकावट और नींद के मारे टूटने-सा लगा, आंखें नींद से बोझिल हो गईं और वह आंचल बिछाकर लेट रही और लेटते ही वह चंचल नवयौवना नदी के हिंडोले में प्रकृति के स्नेह छाया में पालित शिशु की तरह बेधड़क सो गई।

आंख खुली, तो देखा कि वह अपनी ससुराल में पड़ी सो रही है। उसे जगते देख, महरी बड़बड़ाने लगी। उसका बड़बड़ाना सुनकर सास मां भी आ पहुंची और जो मन में आया वह कहा। मृगमयी आंखें फाड़-फाड़कर शांत हो उनके मुख की

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

ओर देखती रही। अन्त में सास मां ने भी जब उसके पिता की शिक्षा पर व्यंग करना शुरू कर दिया तब मृगमयी ने जल्दी से उठ, बगल की कोठरी में घुसकर अन्दर से द्वार बन्द कर लिया।

अपूर्व ने लाज को बिल्कुल ही ताक पर रखकर मां से कहा—"मां ! वधू को दो-चार दिन के लिए उसके घर ही भेज देने में कोई हर्ज़ की बात नहीं ?"

मां ने अपूर्व को बुरी तरह आड़े हाथों लिया, बोली—"नपूते ! दुनिया में इतनी लड़कियां होते हुए भी न जाने, कहां से छांट-छांट के ऐसी हड़जाल को मेरी छाती पर डाल दिया।"

इस प्रकार के कटु शब्द अपूर्व को निर्दोष होते हुए भी सुनने पड़े।

5

उस रोज सारे दिन घर के बाहर बूंदा-बांदी और अन्दर अश्रु की वर्षा होती रही।

अगले रोज अर्धरात्रि को अपूर्व ने मृगमयी को धीरे-से जगाकर पूछा—"मृगमयी, क्या तुम अपने पिताजी के पास जाना चाहती हो।"

मृगमयी ने चौंककर जल्दी से अपूर्व का हाथ पकड़कर कृतज्ञ कंठ से उत्तर दिया—"हां।"

तब अपूर्व ने चुपके से कहा—"तो चलो, हम दोनों चोरी-चोरी भाग चलें। मैंने घाट पर नौका का प्रबन्ध कर रखा है।"

मृगमयी ने इस बार कृतज्ञ दृष्टि से अपूर्व की ओर देखा और उसके बाद तत्काल ही उठ, कपड़े बदल, चलने के लिए उद्यत हो गई। अपूर्व ने मां को किसी प्रकार की फिक्र न हो, इसलिए एक पत्र लिखकर रख दिया और रात्रि के नीरव पहर में घर से निकल पड़े।

मृगमयी ने उसे नीरव और शान्त अन्धेरी में पहली बार अपने मन से पूर्ण अवस्था एवं विश्वास के साथ पति का हाथ पकड़ा; उसके अपने ही हृदय का उद्वेग उस स्पर्श मात्र से अपूर्व की नसों में भी संचारित होने लगा।

नौका उसी रात्रि के नीरव पहर में वहां से चल दी। अकस्मात् खुशी के होते हुए भी मृगमयी को बहुत जल्दी ही नींद ने आ दबाया। अगले रोज आनन्द-ही-आनन्द था। दोनों ओर कितने ही बाजार, खेत और जंगल दिखाई दे रहे थे। इधर-उधर कितनी ही नौकाएं आ-जा रही थीं। मृगमयी उन्हें देखकर पूछने लगी—"उस नौका

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पर क्या है ? ये लोग कहां से आ रहे हैं, उस स्थान को क्या कहते हैं ?" ये सवाल ऐसे पेचीदा थे जो अपूर्व ने कभी कॉलिज की किताबों में नहीं पढ़े थे और उसके कलकत्ता जैसी महानगरी के तजुर्बे के बाहर थे। फिर भी उसके मन को संतुष्ट करने के लिए जो भी उत्तर दिये थे, वे सब मृगमयी को बहुत अच्छे लगे थे।

दूसरी सन्धया को नौका कुशीगंज के घाट पर जा लगी। पास में ही टीन के एक छोटे से झोंपड़े में, मैली-सी धोती बांधे, कांच की भद्दी लालटेन जला, छोटे से डेक्स पर एक चमड़े की जिल्द वाला बड़ा-सा रजिस्टर रखकर, नंगे बदन, स्टूल पर बैठे, ईशानचन्द्र कुछ लिख़-पढ़ रहे थे। इसी समय इस नव दम्पत्ति ने झोंपड़े में प्रवेश किया। मृगमयी ने पुकारा—"पिताजी।" उस झोंपड़ी में आज तक ऐसी मृदु ध्वनि इस प्रकार से पहले और कभी नहीं सुनाई दी थी।

ईशान के नेत्रों से टप-टप आंसू गिरने लगे। उस समय वे निश्चय न कर सके कि उन्हें क्या करना चाहिए। उनकी बिटिया और दामाद मानो साम्राज्य के युवराज और युवराज्ञी हैं। यहां पटसन के ढेर के बीच में उनके बैठने लायक स्थान कैसे बनाया जा सकता है ? इसी के निर्णय हेतु उनकी भटकती हुई बुद्धि और भी भटक गई और खाने-पीने का प्रबन्ध ? यह भी दूसरी चिन्ता की बात थी। निर्धन बाबू अपने हाथ से दालभात पकाकर किसी प्रकार पेट भर लेता है, पर आज इस खुशी के अवसर पर क्या खिलाए और क्या करे ?

मृगमयी पिता को असमंजस में देखकर फौरन बोली—"पिताजी, आज हम सब मिलकर रसोई तैयार करेंगे।"

अपूर्व ने इस नवीन प्रस्ताव पर उत्साह प्रगट किया। उस छोटी-सी झोंपड़ी में स्थान की कमी, आदमी की कमी और अन्न की बहुत कमी थी। लेकिन छोटे से छिद्र में से जिस प्रकार फौव्वारा चौगुने वेग से छूटता है, उसी प्रकार निर्धनता के सूक्ष्म सुराख से खुशी का फौव्वारा तीव्रता से छूटने लगा।

इसी प्रकार तीन दिन बीत गये। दोनों समय नियमित रूप से स्टीमर आता, यात्रियों का आना-जाना और शोरगुल सुनाई देता था, लेकिन सन्ध्या के समय नदी का तट बिल्कुल सुनसान हो जाता था, तब अपूर्व एक अनोखी स्वतन्त्रता का अनुभव किया करता था। तीनों मिलकर कहीं-की-कहीं रसोई तैयार किया करते थे। उसके बाद नई-नई चूड़ियों से भरे हाथों से उसका परोसा जाना, श्वसुर और जामाता का सम्मिलित रूप से भोजन करना और नई गृहिणी के भोजन की त्रुटियों पर परिहास किया जाना, इस पर मृगमयी का अभिमान करना, इन सब बातों से सबका मन पुलकित हो उठता था।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अन्त में अपूर्व ने कहा कि अब अधिक दिन ठहरना उचित नहीं। मृगमयी ने कुछ और दिन ठहरने की प्रार्थना की। लेकिन ईशान बाबू ने कहा—"नहीं, अब नहीं।"

विदा बेला पर बिटिया को छाती से लगा, उसके माथे पर स्नेहसिंचित हाथ को रखकर अश्रुमिश्रित स्वर में ईशानचन्द्र ने कहा—"बिटिया, तू अपनी ससुराल में ज्योति जगाना, लक्ष्मी बनकर रहना....जिससे मेरी भी शिक्षा में कोई दोष न निकाल सके।"

मृगमयी अश्रु बहाती हुई अपने पति के साथ विदा हो गई और ईशान बाबू अपनी उसी झोंपड़ी में लौटकर उसी पुराने नियम के अनुसार माल तोलकर दिन पर दिन और मास पर मास बिताने लगे।

6

दोनों अपराधियों की युगल जोड़ी जब घर पहुंची तो गम्भीर बनी रही, किसी से कुछ बात नहीं की ? मां की ओर से किसी के व्यवहार में कोई दोष ही प्रदर्शित नहीं किया गया कि जिसकी सफाई के लिए दोनों में से कोई कुछ प्रयत्न करता ? इस शान्त अभियोग ने, इस मूक अभियान ने, पर्वत की तरह सारी घर-गृहस्थी को अटल होकर दबाए रखा।

जब यह सहन शक्ति से बाहर की बात हो गई तो अपूर्व ने कहा—"मां, कॉलेज खुल गया है, अब मुझे कानून पढ़ने जाना है।" मां ने कुछ उदासीनता प्रकट करते हुए कहा—"बहू का क्या करोगे ?" अपूर्व ने कहा—"यहीं रहेगी।"

मां ने उत्तर दिया—"ना बेटा, यहां पर उसकी जरूरत नहीं। उसे तुम अपने साथ ही लेते जाओ।"

अपूर्व ने अभिमान पीड़ित स्वर में कहा—"जैसी इच्छा।"

कलकत्ता लौटने की तैयारी मां करने लगी। लौटने के एक दिन पहले, रात को अपूर्व जब अपने कमरे में विश्राम के लिए गया, तो देखा कि मृगमयी शैया पर पड़ी रो रही है।

अनायास ही उसके हृदय को चोट पहुची। वह व्यथित स्वर में बोला—"मृगमयी ! मेरे साथ महानगरी चलने को मन नहीं चाहता क्या ?"

मृगमयी ने उत्तर दिया—"नहीं।"

अपूर्व ने पुनः पूछा—"क्या तुम मुझसें प्रेम नहीं करतीं ?"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

इस प्रश्न का कुछ भी उत्तर न मिला। विशेषतया इस प्रकार के प्रश्न का उत्तर बहुत ही सरल हुआ करता है; किन्तु कभी-कभी इसके अन्दर मनःस्तर की इतनी जटिलता होती है, कि कन्या से ठीक वैसे उत्तर की आशा नहीं की जा सकती।

अपूर्व ने प्रश्न किया—"राखाल को छोड़कर यहां से चलने की इच्छा नहीं होती है क्या ?"

मृगमयी ने बड़ी सुगमता से उत्तर दिया—"हां।"

इसे सुनकर बी॰ए॰ पास अपूर्व के हृदय में सुई के बराबर बालक राखाल की ओर से ईर्ष्या का अंकुर उठ खड़ा हुआ। बोला—"बहुत दिनों तक गांव नहीं लौट सकूंगा। शायद दो-ढाई साल या इससे भी अधिक समय लग जाये।"

इसके विषय में कुछ न कहकर मृगमयी बोली—"वापस आते समय राखाल के लिए एक बढ़िया-सा राजस का चाकू लेते आना।"

अपूर्व लेटे हुए था; तनिक उठकर बोला—"तो तुम यहीं रहोगी।"

मृगमयी ने उत्तर दिया—"हां, अपनी मां के पास जाकर रहूंगी।"

अपूर्व ने ठंडी-सी उच्छ्वास छोड़ी, बोला—"अच्छा, वहीं रहना। अब जब तक बुलाने की चिट्ठी नहीं लिखोगी, मैं नहीं आऊंगा। अब तो खुश हो न।"

मृगमयी ने इस प्रश्न का उत्तर देना व्यर्थ समझा और सोने लगी; किन्तु अपूर्व को नींद नहीं आई, तकिया ऊंचा किये उसके सहारे बैठा रहा।

रात्रि के अन्तिम पहर में सहसा चन्द्रमा दिखाई दिया और उसकी चांदनी बिस्तर पर आकर फैल गई। अपूर्व ने उस रोशनी में मृगमयी के चेहरे की ओर देखा। देखते-देखते उसे ऐसा महसूस हुआ कि रूप कथा की शहजादी को किसी ने चांदी की छड़ी छुआकर अचेत कर दिया हो। एक बार फिर सोने की छड़ी छुआते ही इस सोती हुई आत्मा को जगाकर उससे बदली की जा सकती है। चांदी की छड़ी परिहास है और सोने की छड़ी कुन्दन।

भोर से पहले ही अपूर्व ने मृगमयी को जगा दिया, बोला—"मृगमयी, मेरे चलने का समय आ गया है। चलो, मैं तुम्हें तुम्हारी मां के पास छोड़ आऊं।"

मृगमयी बिस्तर से उठकर चलने के लिए तैयार हो गई। अपूर्व ने उसके दोनों हाथों को हाथों में लेकर कहा—"अब एक विनती और है, मैंने कितने ही अवसरों पर तुम्हारी सहायता की है, आज परदेश जाते समय तुम मुझे उसका इंनाम दे सकोगी।"

मृगमयी ने आश्चर्य के साथ पूछा—"क्या ?"

अपूर्व ने कहा—"स्वेच्छा से केवल एक चुम्बन दे दो।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अपूर्व की इस अनोखी विनती और शान्त चेहरे को देखकर मृगमयी हंसने लग गई, और फिर बड़ी कठिनाई से हंसी को रोककर वह चुम्बन देने के लिए आगे दढ़ी। अपूर्व के मुंह के पास मुंह ले जाकर उससे न रहा गया, खिलखिलाकर हंस पड़ी। इस प्रकार दो बार किया और अन्त में शांत होकर आंचल से मुंह ढंककर हंसने लगी। जब कुछ न बन पड़ा तब अपूर्व ने डांटने के बहाने उसके कान खींच लिये।

अपूर्व ने भी बड़ी भारी प्रतिज्ञा कर रखी थी कि वह जबरदस्ती से कभी भी मृगमयी से कुछ नहीं लेगा; क्योंकि इसमें वह अपना अपमान समझता था। उसकी इच्छा थी कि देवताओं के समान सगौरव रहकर स्वेच्छा से भेंट किए हुए उपहार को पाये, और अपने हाथ से उठा कर कुछ भी न ले।

मृगमयी फिर न हंसी। अपूर्व उसे उषा की प्रथम किरणों में निर्जन पथ से उसकी मां के घर छोड़ आया और फिर लौट कर मां से बोला--"मां ! बहुत सोच-विचार कर इस निर्णय पर पहुंचा कि वधू को कलकत्ता ले जाने से पढ़ाई में बहुत नुकसान होगा और फिर उसकी वहां कोई साथिन भी तो नहीं है....तुम तो उसको अपने पास रखना नहीं चाहतीं। इसलिए मैं उसे उसके घर छोड़ आया हूं।"

इस प्रकार गर्व के चूर्ण में ही मां पुत्र का विच्छेद हुआ।

7

मां के घर पहुंच कर मृगमयी को पता लगा कि अब यहां उसका किसी प्रकार मन ही नहीं लगता है ? उस घर में न जाने कौन-सा परिवर्तन आ गया है कि समय काटे नहीं कटता। क्या करे, कहां जाये, किससे मिले, उसकी कुछ भी समझ में नही आया ?

थोड़े ही दिनों में मृगमयी को कुछ ऐसा लगने लगा, कि घरबार और गांव भर में कोई आदमी ही नहीं है ? अब कलकत्ता जाने को उसका मन इतना आतुर क्यों है, पहले ऐसा क्यों नहीं था ? यह उलझन उसकी समझ में नहीं आई। उसने वृक्ष के शुष्क पत्ते के समान ही डंठल से गिरे हुए उस अतीत जीवन को आज अपनी इच्छा से अनायास ही दूर फेंक दिया।

प्राचीन कथाओं से सुना जाता है कि पहले निपुण अस्त्रकार ऐसी बारीक खड्ग बना सकते थे कि जिससे आदमी को काट कर दो टुकड़े कर देने पर भी उसे मालूम नहीं पड़ता और जब उसे हिलाया जाता था तो उसके दो टुकड़े हो जाते थे। विधाता की खड्ग ऐसी ही सूक्ष्म है, कि कब उन्होंने मृगमयी के बचपन और जवानी के

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

बीच वार किया, वह जान ही न सकी। आज न जाने कैसे तनिक हिल जाने से उसका बचपना जवानी से अलग जा गिरा, और तब वह आश्चर्यचकित होकर देखती ही रह गई।

मायके में उसकी वह चिर-परिचित कोठरी उसे अपनी नहीं मालूम पड़ी। जो मृगमयी वहां काम करती थी, अब मालूम हुआ कि यहां रही ही नहीं। अब उसके हृदय की सारी स्मृति एक-दूसरे ही घर में, दूसरे ही कमरे में, दूसरी ही शैया के आस-पास गूंजती हुई उड़ने लगी। मृगमयी अब बाहर नहीं दिखाई पड़ती, उसकी हास्य-ध्वनि अन्दर ही घुटकर रह जाती। उसका बचपन का साथी राखाल तो उसे देखकर त्रस्त हो भाग जाता, खेलकूद की बात तो अब उनके मन में ही नहीं आती।

मृगमयी ने अपनी मां से कहा—"मां, मुझे सास मां के घर ले चल।"

उधर कलकत्ते जाते समय बेटे की उदासीनता को याद करके मां का हृदय विदीर्ण हो रहा था। क्रोध में आकर वधू को वह अपनी ससुराल छोड़ आया, यह बात उसके मन में सुई की तरह चुभने लगी थी।

इतने में एक दिन अवगुंठन डाले मृगमयी आ पहुंची। चेहरा उसका मुरझा-सा गया था और उसने सास मां के चरणों का स्पर्श किया। आशीष देने के स्थान पर सास मां की आंखों में अश्रु भर आये और उसी क्षण मृगमयी को उठाकर जलते हुए कलेजे से लगा लिया। उसी क्षण दोनों का मिलाप हो गया। मृगमयी के चेहरे की ओर निहारकर सास मां को बड़ा आश्चर्य हुआ। अब वह पहली मृगमयी नहीं रही थी, ऐसा परिवर्तन तो कतिपय सबके लिए सम्भव नहीं। ऐसे परिवर्तनों के लिए बड़ी ताकत की आवश्यकता होती है। सास मां ने बहुत सोच-समझकर निश्चय किया था कि वधू के सारे दोषों को धीरे-धीरे से लेगी, किन्तु यहां तो पहले से ही किसी विशेष सुधारक ने उसे नव-जीवन दे डाला था।

अब वधू ने सास मां को अच्छी तरह पहचान लिया था; और सास मां ने उसको। मृगमयी के हृदय में आषाढ़ माह के सजल मेघों के समान अश्रुओं से पूर्ण गर्व उमड़ने लगा। उस गर्व से उसकी बड़ी-बड़ी आंखों की छायादार घनी पलकों पर और भी गहरा आवरण डाल दिया। वह मन-ही-मन अपूर्व से कहने लगी, मैं अब तक अपने को न समझ सकी तो न सही पर तुमने मुझे क्यों नहीं समझने का प्रयत्न किया ? तुमने मुझे दण्ड क्यों नहीं दिया ? तुमने अपनी इच्छा के वशीभूत हो क्यों नहीं चलाया ? मुझ डाइन ने जब तुम्हारे साथ महानगरी चलने को इन्कार किया, तो तुम मुझे जबरदस्ती पकड़ कर क्यों नहीं ले गये ? तुमने मेरा कहना क्यों पूरा किया ? मेरे हठ के आगे क्यों झुके ? मेरी अवज्ञा को क्यों सहन किया ?

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

इसके उपरान्त, फिर उसे उस दिन की याद आई, पहले पहले जिस दिन अपूर्व सवेरे तालाब के किनारे सुनसान रास्ते में उसे बन्दी बना कर मुंह से कुछ न कहकर केवल उसके मुख की ओर निहारता रहा था। उस दिन के उस तालाब की, उस पथ की, वृक्ष के नीचे उस छाया की, भोर की उस सुनहली धूप की, हृदय भार से झुकी हुई उस गहरी चितवन की उसे स्मृति छा गई और सहसा उसका पूरा-पूरा अर्थ अब उसकी समझ में आ गया था। इसके उपरान्त विदा की बेला पर जिस चुम्बन को वह अपूर्व के ओठों तक ले जाकर लौटा लाई थी वह अधूरा चुम्बन अब मरु-मरीचिका की ओर तृषित मृग की तरह उत्तरोत्तर तीव्रता के साथ उन बीते हुए दिनों की ओर उड़ान भरने लगा किन्तु तृष्णा उसकी किसी प्रकार भी न मिट सकी। अब रह-रहकर उसके मन में यही बातें उठा करतीं; यदि, उस समय तू ऐसा करती, उनकी बात का यदि ऐसा उत्तर देती, तब ऐसा करती।

अपूर्व के मस्तिष्क में इस बात का बड़ा दुःख रहा कि मृगमयी ने उसे अच्छी तरह पहचाना नहीं और मृगमयी ने भी आज बैठे-बैठे यही सोचा कि उन्होंने उसे क्या समझा होगा, क्या सोचते होंगे ? अपूर्व ने उसे पाषाणी चंचल, उद्दण्ड, नादान लड़की समझ लिया होगा। लबालब भरे हुए तरलामृत की धारा से अपनी प्रेम तृष्णा मिटाने से उसे समर्थ नवयौवना नहीं जाना। इस वेदना से धिक्कार के माने लज्जा से वह धरा में धंसी जा रही थी और प्रियतम के चुम्बन और सुहाग से उस ऋणी को वह अपूर्व के तकिए को दे-देकर उऋण होने का प्रयत्न करने लगी।

इसी प्रकार काफी दिन बीत गए।

चलते समय अपूर्व कह गया था, जब तक तुम्हारा पत्र नहीं आयेगा, तब तक मैं नहीं आऊंगा। मृगमयी इसी बात को याद कर, कमरे का द्वार बन्द कर, एक दिन पत्र लिखने के लिए बैठी। अपूर्व ने जो सुनहरी किरणों के कागज दिये थे उन्हें निकाल कर बैठी-बैठी विचारने लगी, क्या लिखे ? बड़े यत्न के बाद हाथ जमा कर टेढ़ी-मेढ़ी रेखायें अंकित कर उंगलियां में स्याही पोत कर छोटे-बड़े अक्षरों में ऊपर सम्बोधन बिना किए ही एकदम लिख दिया—तुम मुझे चिट्ठी क्यों नहीं भेजते ? तुम कौन हो ? घर चले आओ और क्या होना चाहिए ? वह सोच कर भी किसी निर्णय पर न पहुंच सकी ? अन्त में उसने कुछ विचार कर लिया—"अब मुझे चिट्ठी लिखना और कैसे रहते हो सो लिखना; घर जल्दी आना सब अच्छी तरह हैं और कल हमारी काली गाय के बछड़ा हुआ है।" इतना लिखकर चिट्ठी लिफाफे में बन्द कर दी और फिर हृदय के प्यार से सिंचित शब्दों में लिख दिया श्रीयुत अपूर्व कुमार राय। प्यार चाहे कितना ही उड़ेला गया हो, किन्तु तो भी रेखा सीधी, अक्षर सुन्दर और लिखावट

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सही नहीं हुई।

लिफाफे पर नाम के सिवा और कुछ लिखना भी आवश्यक है, मृगमयी इस बात से परिचित न थी।

कहीं सास मां या कोई और न देख ले, इस भय से लिफाफे को विश्वस्त दासी के हाथ डाक में डलवा दिया।

कहने की आवश्यकता नहीं कि उस पत्र का कुछ फल नहीं निकला और अपूर्व घर नहीं लौटा।

8

मां ने देखा कि कॉलेज बन्द हो गया, फिर भी अपूर्व घर नहीं आया। सोचा, अब भी वह उनसे गुस्से है। मृगमयी ने भी समझ लिया कि अपूर्व उससे गुस्सा कर रहा है और तब वह अपने पत्र की याद करके, मारे लज्जा के गड़ जाने लगी। वह पत्र उसका कितना तुच्छ और छोटा था। उसमें तो कोई बात हीं नहीं लिखी गई, उसने अपने मन के भाव तो उसमें लिखे ही नहीं....फिर उनका ही क्या दोष ? यह सोच-सोच कर वह तीर बिंधे शिकार की तरह भीतर-ही-भीतर तड़पने लगी। दासी से उसने बार-बार पूछा—"उस पत्र को तू डाक में डाल आई थी।" दासी ने उसे कितनी ही बार समझाया—"हां, बहू जी, मैं खुद चिट्ठी को डिब्बे में डाल आई हूं। बाबूजी को वह मिल भी गई होगी।"

अन्त में अपूर्व की मां ने मृगमयी को पास बुला कर पूछा—"बहू, वह बहुत दिनों से घर नहीं आया, मन चाहता है कि कलकत्ता जाकर उसे देख आऊं, क्या तुम साथ चलोगी ?"

मृगमयी जबान से कुछ न कह सकी; परन्तु स्वीकृति रूप में सिर हिला दिया और अपने कमरे में जाकर, तकिए को छाती से लगा कर, इधर से उधर करवटें बदल कर, हृदय के आवेश को दबा कर हल्की होने का प्रयत्न करने लगी और इसके बाद भावी आशंका के विषय में सोचकर रोने लगी।

अपूर्व को सूचित किए बिना ही दोनों उसकी शुभ कामना चाहती हुई कलकत्ता को चल दीं।

अपूर्व की मां कलकत्ते में अपने दामाद के यहां ठहरी। उसी दिन सन्ध्या को अपूर्व मृगमयी के पत्र की आस छोड़कर और वचन को भंग करके स्वयं ही पत्र लिखने के लिए बैठा था तभी उसे जीजाजी का पत्र मिला कि तुम्हारी मां आई हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जल्दी आकर मिलो और रात का भोजन यहीं करना, समाचार सब ठीक है। इतना पढ़ने पर भी उसका मन किसी अमंगल सूचना की आशंका कर घबरा उठा। वह तुरन्त ही कपड़े बदल, जीजाजी के घर की ओर चल दिया। मिलते ही उसने मां से पूछा—"मां, सब मंगल तो है।"

मां ने कहा—"सब देवी की कृपा है। छुट्टियों में तू घर क्यों नहीं आया, इसीलिए मैं तुझे लेने आई हूं ?"

अपूर्व ने कहा—"मेरे लिए इतनी तकलीफ उठाने की क्या जरूरत थी मां ! मैं तो कानून की परीक्षा के कारण...."

ब्यालू करते समय दीदी ने पूछा—"भइया ! उस समय भाभी को तुम साथ ही क्यों नहीं लेते आये।"

भइया ने गम्भीरता के साथ कहा—"कानून की पढ़ाई थी दीदी।"

जीजा ने हंस कर कहा—"यह सब तो बहाना है, असल में हमारे डर से लाने की हिम्मत नहीं पड़ी।"

दीदी बोली—"बड़े डरपोक निकले भइया। कहीं इस डर से बुखार तो नहीं चढ़ा।"

इस तरह हंसी-मजाक चलने लगा, परन्तु अपूर्व वैसे ही उदासीन बना रहा। मां जब कलकत्ते आई, तब मृगमयी भी चाहती तो वह भी कलकत्ते आ सकती थी, पाषाणी कहीं की। इस प्रकार सोचते-सोचते उसे सारा मानव-जीवन व्यर्थ-सा प्रतीत होने लगा।

ब्यालू के बाद बड़ी जोर की आंधी आई और बहुत तेज वर्षा होने लगी। दीदी ने कहा—"भइया, आज यहीं रह जाओ।"

अपूर्व ने कहा—"नहीं दीदी, मुझे जाना ही होगा, बहुत-सा काम पड़ा है।"

जीजा ने कहा—"ऐसी रात में तुम्हें क्या काम है ? एक रात को ठहर ही जाओगे तो कौन-सा काम बिगड़ जायेगा ?"

बहुत कहने-सुनने के उपरान्त अनिच्छा से अपूर्व को उस रात दीदी के पास ठहरना पड़ा।

राजी हो जाने पर दीदी ने कहा—"भइया, तुम थके हुए दिखाई देते हो, अब चल कर आराम कर लो।"

अपूर्व की यही इच्छा थी कि शैया पर अन्धेरे में अकेले जाकर सो रहे तो उसकी जान बचे। बातें करना भी तो उसे बुरा लगता था।

सोने के लिए जिस कमरे के द्वार तक उसे पहुंचाया गया, वहां जाकर देखा

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कि भीतर अन्धकार छाया था। दीदी ने कहा—"डरो मत भइया, हवा से बत्ती बुझ गई मालूम देती है, दूसरी बत्ती लिये आती हूं।"

अपूर्व ने कहा—"नहीं दीदी, अब उसकी आवश्यकता नहीं है। मुझे अन्धेरे में ही सोने की आदत है।"

दीदी के चले जाने पर अपूर्व अन्धकार से भरे कमरे में सावधानी के साथ शैया की ओर बढ़ा।

शैया पर बैठना चाहता था कि इतने में चूड़ियों की खनकने की आवाज सुनाई दी और कोमल बाहुपाश में वह बुरी तरह जकड़ गया। उन्हीं क्षणों पुष्प से कोमल व्याकुल ओंष्ठों ने डाकू के समान आकर अविरल अश्रु धारा के भीगे हुए चुम्बनों के मारे उसे आचर्श्य प्रकट करने तक का अवसर न दिया।

अपूर्व पहले तो चौंक पड़ा। इसके बाद उसकी समझ में आया कि जो काम वह पाषाणी को मनाने के लिए अधूरा छोड़ आया था, उसे आज अश्रुओं के वेग ने पूर्ण कर दिया है।

●

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

भाई-भाई

दम्मी-छदामी कोरी दोनों भाई भोर होते ही जब हंसिया-गंडासा हाथ में पकड़े काम पर निकले, तब उन दोनों की घरवालियों में खूब जोर की जंग शुरू हो गई थी। आस-पास के लोग कुदरत, अनेक प्रकार की खटपट और शोर की भांति इस घर के झगड़े और उससे पैदा हुए कोलाहल के आदी बन गये थे। जोर की चीख-पुकार और औरतों की गाली-गलौज कान में पड़ते ही लोग आपस में कहने लगते, "लो, हो गई शरू।" यानी जैसी कि आशा थी, आज भी उस कुदरती सिद्धान्त में कोई अन्तर नहीं पड़ा। भोर होते ही पूरब में दिवाकर के उदय होने पर जैसे कोई उसका कारण पूछने की धृष्टता नहीं करता, ठीक वैसे ही कोरियों के इस घर में जब दोनों गृहणियों में जंग और गाली-गलौज शुरू हो जाती तो फिर उसका कारण जानने के लिए आस-पास के किसी भी व्यक्ति को किंचित मात्र भी आश्चर्य नहीं होता।

हां, इतना अवश्य है कि यह कलह या रोज-रोज का झगड़ा आस-पास के लोगों की अपेक्षा दोनों भाइयों को बहुत परेशान करता है; इस पर भी वे इसे विशेष परेशानियों में नहीं गिनते। उनके मानसिक भाव ऐसे हैं, मानो दोनों भाई विश्व यात्रा का लम्बा सफर किसी इक्के में बैठकर काट रहे हैं और उसके दोनों बिना कमानी के पहियों के निरन्तर घड़घड़ शब्द को उन्होंने जीवन-यात्रा के विधि-विहित सिद्धान्तों में ही मिला लिया है, अपितु घर में जिस दिन कोई शोरगुल नहीं होता, चारों ओर नीरवता-सी ही छाई रहती है। उस दिन किस प्रकार की मुसीबत आ जाये, इस बात का कोई अनुमान भी नहीं कर सकता ?

हमारी कहानी का कथानक जिस दिन से आरम्भ होता है, उस दिन सन्ध्या को दोनों भाई मेहनत-मजदूरी करके थके-मांदे जब घर लौटे तो देखा कि घर में सन्नाटे का साम्राज्य है।

बाहर काफी गर्मी है। दुपहरिया-भर खूब जोर की वर्षा हुई और अब भी मेघ-गरज रहे हैं। हवा का चिन्ह तक भी नहीं। वर्षा से घर के चारों ओर का जंगल और घास आदि बहुत ऊंचे-ऊंचे हो गये हैं; वहां से पानी में डूबे हुए पटसन के खेत में से दुर्गन्ध-सी निकल रही है और उसने चारों ओर मानो एक चारदीवारी-सी खड़ी कर दी है। गुहाल के पास वाली छोटी-सी तलैया में मेढ़क टर्रा रहे हैं और सन्ध्या

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

का निस्तव्ध गगन मानो झींगुरों की ध्वनि से बिल्कुल पूर्ण-सा हो गया हैं।

समीप में बरसाती नदी पद्मा नये-नये बादलों से घिर कर और भयानक रूप धारण करके आजादी का रसास्वादन कर रही है। अधिकांश खेती को डुबोकर बस्ती की ओर मुंह बनाये बढ़ रही है। यहां तक कि उसने आस-पास के दो-चार आम, कटहल के वृक्षों को उखाड़ कर धरा पर लिटा दिया है और उनकी जड़ें उसके पानी में से झलक रही हैं। मानो वे अपनी अंगुलियों को गगन में फैलाकर किसी अन्तिम अवलम्ब को पकड़ने का प्रयत्न कर रही हों।

दम्मी और छदामी उस दिन गांव के जमींदार के यहां बेगार में गये थे। उस पार की रेती पर धान पक गए हैं। वर्षा से पूर्व ही धान काट लेने के लिए देश के निर्धन किसान और मजदूर सब कोई अपने-अपने खेतों के काम पर पटसन काटने में लग गये हैं। केवल इन दिनों कोरियों को जमींदार के कारिन्दे जबरदस्ती बेगारी में पकड़कर ले गये थे। जमींदार की कचहरी के छप्परों में से पानी टपक रहा था। उसकी मरम्मत के लिए और कुछ टट्टियां बनाने के लिए वे दोनों सारा दिन परिश्रम करते रहे हैं। दो टूक पेट में डालने तक का मौका नहीं मिला। कचहरी की ओर से थोड़े से चने खाने को मिल गये थे। इसके अलावा हक की मजूरी मिलनी तो दूर की बात, वहां उन्हें गालियां और फटकार ही मिलीं, वे उनकी मजूरी से कहीं अधिक ज्यादा थीं।

कीच-गारे में से किसी प्रकार निकल और पानी में होकर बड़ी मुश्किल से दोनों भाई सन्ध्या समय घर पहुंचे ? देखा तो, छोटी बहू चन्दा छाती पर आंचल बिछाये चुपचाप औंधी पड़ी है। सावन की बदली की तरह उसने भी दिन-भर अश्रु बहाकर आंखों को हल्का किया है और अब शान्त होकर हृदय को खूब गरम कर रखा है और बड़ी बहू अपना मुंह फैलाये द्वार पर बैठी थी, उसका डेढ़ साल का बच्चा बिलख रहा था। दोनों भाइयों ने जब घर में पैर रखा तो देखा कि बच्चा नंगा-धड़ंगा चौक में एक ओर औंधा पड़ा सो रहा है।

भूख से व्याकुल दम्मी ने घुसते ही कहा—"उठ, परोस खाने को।" बड़ी बहू राधा एक साथ जोर से जाग उठी, मानो कागज के ढेर में कोई चिन्गारी पड़ गई हो, बोली—"खाने को है क्या, जो परोस दूं ? चावल तू दे गया था, मैं क्या खुद जाकर कमा लाती।"

सारे दिन की थकान और डांट-फटकार सहने के बाद निराहर निरानन्द अन्धेरे में, जलती हुई जेठाग्नि पर घरवाली के रूखे शब्द, विशेषकर आखिरी वाक्य का छिपा हुआ बुराश्तोष दम्मी को सहसा न जाने कैसे सहन न हुआ ? क्रोधित सिंह की तरह वह चिल्लाकर बोला—"क्या कहा ?"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

इतना कहकर उसी क्षण हंसिया उठाकर घरवाली के सिर पर दे मारा। राधा अपनी देवरानी के पास जाकर गिर पड़ी और वहीं पर दम तोड़ दिया।

चन्दा के वस्त्र खून से लथपथ हो गये; वह हाय अम्मा, क्या हो गया, कहकर क्रन्दन कर उठी। छदामी ने आगे बढ़कर उसका मुंह दाब लिया। दम्मी हंसिया फेंककर गाल पर हाथ रखे भौंचक्के की तरह पृथ्वी पर बैठ गया। बेटा जग गया और भय के मारे चिल्ला-चिल्लाकर रोने लगा।

बाहर का वातावरण तब तक पूर्णरूप से शान्त था। अहीरों के बालक गाय-भैंस चराकर गांव को लौट रहे थे। उस पार की रेती पर जो लोग धान काटने गये थे। वे पांच-पांच सात-सात की टोली में एक छोटी-सी नाव पर बैठकर, इस पार आकर अपनी मेहनत में दो-चार पूला धान का सिर पर लादे अपने-अपने घर जा पहुंचे थे।

गांव के रामलोचन चाचा डाकखाने में पत्र डालकर घर लौट आये थे। और सब कामों से निबटकर चुपचाप बैठे तम्बाकू का मजा ले रहे थे। एकाएक उन्हें याद आया कि उनके किसान दम्मी पर लगान के कुछ रुपये बाकी हैं, आज के दिन वह देने का वायदा कर गया था। यह सोचकर कि अब वह काम से लौट आया होगा, रामलोचन कंधे पर दुपट्टा डालकर और हाथ में छतरी ले उसके घर की ओर चल दिये।

दम्मी और छदामी के घर में घुसते ही उनके रोंगटे खड़े हो गये। देखा तो घर में दिया तक नहीं जल रहा था। आंगन अन्धेरे से भरा हुआ था और उस अन्धेरे में दो-चार काली छाया-सी अस्पष्ट रूप में दिखाई दे रही थीं। रह-रहकर बरामदे में से किसी के रोने की आवाज आ रही थी और कोई उसे रोकने का प्रयत्न कर रहा था।

रामलोचन ने तनिक शरमाते हुए पूछा—"दम्मी है क्या ?"

दम्मी अब तक पाषाण प्रतिमा के समान चुपचाप बैठा था। अपना नाम सुनते ही वह सिसक-सिसककर अबोध बालक की तरह रोने लगा। छदामी झटपट बरामदे में से उतरकर रामलोचन चाचा के पास आंगन में आ खड़ा हुआ। रामलोचन ने पूछा—"औरतें कलह करके मुंह फुलाये पड़ी होंगी, इसी से अन्धेरा है, क्यों ? आज तो दिन-भर चिल्लाती ही रही हैं।"

छदामी अभी तक क्या करना चाहिए, इस निर्णय पर नहीं पहुंच पाया था। अनेक प्रकार की असम्भव कल्पनाएं उसके मस्तिष्क में चक्कर काट रही थीं। अभी तक वह इसी निश्चय पर पहुंचा था कि कुछ रात बीते लाश को कहीं गायब कर देगा। इसी बीच में चौधरी चाचा आन टपके, जिसकी उसे स्वप्न में भी आशा न थी। तुरन्त ही उसे कोई जवाब न सूझा, कह बैठा—"हां, आज बहुत झगड़ा हो गया।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

चौधरी रामलोचन बरामदे की ओर बढ़ते हुए बोले—"इसके लिए दम्मी क्यों आंसू बहा रहा है ?"

छदामी ने देखा कि अब बचने की कोई आशा नहीं तो कह उठा—"लड़ते-लड़ते छोटी बहू ने बड़ी बहू के माथे पर हंसिया मार दिया है।"

इंसान आई हुई मुसीबत को ही बड़ा समझता है, उसके अलावा और भी कोई मुसीबत आ सकती है—यह बात शीघ्र ही उसके दिमाग में नहीं घुस पाती। छदामी उस समय सोच में पड़ा हुआ था कि इस भयानक सजाई के पंजे से कैसे छुटकारा मिले ? लेकिन झूठ उससे भी बढ़कर मुसीबत खड़ी कर सकता है, इस बात का उसे तनिक भी ध्यान न था। रामलोचन के पूछते ही तुरन्त ही उसके दिमाग में जो उत्तर सूझा वही उसने कह डाला। रामलोचन ने चौंककर पूछा—"ऐं, क्या कहा ! मरी तो नहीं ?"

छदामी ने उत्तर दिया—"मर गई !" इतना कहकर उनके पांवों पर गिर पड़ा।

चौधरी महाशय बड़े असमंजस में फंस गये। सोचा कि भगवान ने न जाने सन्ध्या समय कौन-सी मुसीबत में फंसा दिया ? कचहरी में गवाही देते-देते प्राण खुश्क हो जायेंगे। छदामी ने किसी प्रकार भी उनके चरणों को नहीं छोड़ा, बोला, "चौधरी चाचा, अब मैं बहू के बचाने के लिए क्या करूं ?"

अभियोगों के विषय में परामर्श देने में चौधरी रामलोचन गांव भर के प्रधानमंत्री थे। उन्होंने तनिक विचारकर कहा—"देख एक काम कर, तू अभी दौड़ जा थाने में, कहना कि मेरे बड़े भाई दम्मी ने शाम पीछे घर आकर खाने को मांगा था। खाना तैयार नहीं था, सो उसने अपनी बहू के माथे पर हंसिया मार दिया है। मैं ठीक बता रहा हूं। ऐसा करने से तेरी बहू बच जायेगी।"

छदामी का कंठ सूखने लगा, उठकर बोला—"चौधरी चाचा, बहू तो और मिल जायेगी, लेकिन भाई को फांसी हो जाने पर फिर भाई नहीं मिल सकेगा। जब उसने अपनी घरवाली के माथे पर दोष मढ़ा था तब उसने यह बातें नहीं सोची थीं। भय के कारण एक बात मुंह से निकल गई, अब अलक्षित विचारों से उसका मन अपनी लिए युक्तियां एकत्रित करने लगा।

चौधरी ने भी उसकी बात को युक्तिसंगत माना, बोले—"तब फिर जैसा हुआ है, वैसा ही कहना, सब ओर से बचाव होना तो बहुत कठिन है छदामी।" इतना कहकर चौधरी रामलोचन वहां से चल दिये और देखते-देखते सारे गांव में इस बात की चर्चा हो गई कि कोरियों के घर की छोटी बहू ने गुस्से में बड़ी बहू के हंसिया दे मारा है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

बांध टूटने पर जैसे ही बाढ़ आ जाती है उसी प्रकार कोरियों के घर पुलिस आ धमकी। अपराधी और निरपराधी उन्हें देखकर घबरा उठे।

2

छदामी ने निर्णय किया कि जिस राह को अपनाया है उसे उसी पर चलना ठीक होगा, क्योंकि उसने चौधरी चाचा के सामने जो बात कह डाली है उसे गांव का बच्चा-बच्चा जान गया है। अब यदि और कोई बात कही जाये तो न जाने उसका नतीजा क्या निकले ?

उसकी बुद्धि मारी गई। उसने अपनी बहू से अनुरोध किया कि वह इस बात को अपने ऊपर ले ले। सुनते ही उस पर मानो ज्वालामुखी पहाड़ फट पड़ा। उसने धीरज बंधाते हुए कहा—"अरी पगली ! ऐसा करने में किसी बात का डर नहीं है, हम लोग तुझे जरूर बचा लेंगे।" धीरज बंधा तो सही पर उसका गला सूख गया और चेहरे का रंग पीला पड़ गया।

चन्दा की आयु सत्रह-अठारह वर्ष के लगभग होगी। चेहरा भरा हुआ और गोल-मटोल, बदल मंझोला और गठा हुआ, अंग-प्रत्यंग सौष्ठव से परिपूर्ण, चाल अति सुन्दर, आस-पास के लोगों के घर जाकर गप-शप करना उनकी दिनचर्या है और बगल में पानी की गागर लिए पनघट जाते समय वह दो अंगुलियों से अवगुंठन में तनिक-सा छिद्र करके चमकीली चंचल काली आंखों से जो कुछ देखने लायक वस्तु होती है, उसे देख लिया करती है।

बड़ी बहू ठीक इससे उल्टी थी आलसिन, फूहड़ और बेशऊर सिर का कपड़ा, गोद का बच्चा, घर का काम कुछ भी उससे न सम्भलता था। हाथ में न तो कोई खास काम-काज होता और न फुरसत। छोटी बहू उससे अधिक कुछ कहती-सुनती न थी। हां, मीठे स्वर में ही दो-एक पैने दांत गड़ा देती और हाय-हाय ही-ही करके क्रोध में बकती-झकती रहती और इस प्रकार मुहल्ले भर की नाक में दम करती रहती।

पर इन दो गृहस्थियों में भी स्वभाव की आश्चर्यजनक एकता थी। दम्मी देह में कुछ लम्बा-चौड़ा, हट्टा-कट्टा है, चौड़ी हड्डियां, भद्दी नासिका, दुनिया से अनभिज्ञ आंखें। ऐसा भोला-भाला किन्तु भयानक आदमी कोई बिरला ही होगा।

और छदामी ऐसा लगता था जैसे किसी काले पत्थर को बड़ी मेहनत से कोंदकर कोई प्रतिमा तैयार की गई हो।

तनिक भी कहीं बाहुल्य एवं समानता नहीं, उसका प्रत्येक अंग स्थूल एवं

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

शक्ति से परिपूर्ण था। चाहे तो ऊंची से ऊंची चट्टान से नीचे कूद पड़े, चाहे किसी पेड़ की टहनियों को एकदम खाक कर दे। हरेक कार्य में उसके चातुर्य की स्पष्ट झलक दिखाई देती थी। वह बड़े-बड़े काले बालों को तेल में डुबो बड़े जतन से कंधे पर लटकाये रहता था....इससे स्पष्ट था कि वह अपनी देह की सजावट में विशेष ध्यान रखता है।

और-और ग्रामवासियों से सौन्दर्य की ओर से वास्तव में वह उदसीन न था, फिर भी वह अपनी घरवाली को बहुत चाहता था। दोनों में झगड़ा भी होता और मेल-जोल भी, कोई किसी को हरा नहीं पाता था ? दोनों ही अनेक दावों को खेलते हुए जीवन की डगर में आगे बढ़े चले जा रहे थे।

इस दुर्घटना के कई दिन पहले से दम्पति में बहुत अधिक तनातनी चल रही थी। बात यह थी कि चन्दा ने देखा कि उसका घरवाला काम के बहाने कभी-कभी दूर चला जाता है, यहां तक कि दो-एक दिन बाहर बिताकर घर लौटता है और कुछ कमा-धमाकर लाता नहीं। उसके बुरे लक्षणों के कारण वह उस पर कड़ी नजर रखने लगी और ज्यादती भी करने लगी। उसने भी पनघट पर चक्कर काटने शुरू कर दिए और मोहल्ले भर में अच्छी तरह घूम-फिरकर घर आकर काशी प्रसाद के मंझले बेटे की बहुत प्रशंसा करने लगी।

इससे परिणाम यह निकला कि छदामी के दिन और रातों में मानो किसी ने विष घोल दिया ? काम-धन्धे में उसे पल-भर के लिए चैन नहीं पड़ता। इसके लिए उसने एक बार भाभी को खूब डांटा-फटकारा। जवाब में भाभी ने खूब हाथ हिलाकर, झमक-झमकर उसके स्वर्गीय बाप को सम्बोधन करके कहना शुरू कर दिया—"वह औरत आंधी के आगे-आगे भागती है, उसे मैं सम्हालूं। मैं तो सब कुछ समझती हूं, किसी दिन खानदान की आबरू मिट्टी में मिला देगी !"

बगल में कोठे में चन्दा बैठी थी। उसने बाहर आकर धीमे स्वर में कहा—"दीदी, तुम्हें इतना डर क्यों है ?" बस फिर क्या था, दोनों में महाभारत छिड़ गई।

छदामी ने गुर्राकर कहा—"देख, अब की अगर सुना कि तू अकेली पनघट पर गई है तो तेरी हड्डी-पसली एक कर दूंगा।"

चन्दा ने भभककर कहा—"तब तो मेरा कलेजा ही ठंड़ा हो जायेगा।" और कहती हुई वह बाहर जाने को तैयार हो गई।

छदामी ने उसकी चुटिया घसीटकर उसे कोठे के भीतर धकेल दिया और बाहर से दरवाजे में ताला डाल दिया।

सन्ध्या समय जब छदामी घर लौटा तो देखा कि कोठा खुला पड़ा है, उसमें

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कोई भी नहीं है। चन्दा तीन गांव लांघकर सीधी अपनी नानी के घर पहुंच गई है।

छदामी बड़ी मुश्किल से घरवाली को मनाकर वहां से घर वापिस ले आया और अबकी बार उसने हार मान ली और फिर उसने किसी प्रकार की उससे जबरदस्ती नहीं की, लेकिन उसका मन अशांत रहने लगा। घरवाली के प्रति शंका के भाव उसके हृदय में शूल बनकर गड़ने लगे आसैर जब कभी वह उसकी तीव्र पीड़ा से अधिक बेचैन हो जाता तो उसकी इच्छा होती कि काश, यह मर जाये तो पिण्ड छूटे। इंसान से इंसान को जितनी ईर्ष्या या जलन होती है उतनी सम्भवतः यमराज को भी नहीं!

इसी बीच घर में यह दुर्घटना घट गई।

चन्दा से जब उसके घरवाले ने हत्या का दोष ले लेने के लिए कहा तो वह भौंचक्की होकर देखती रह गई, उसकी कजरारी आंखें अग्नि के समान छदामी को जलाने लगीं। उसका सारा शरीर और मन संकुचित होकर इस राक्षस के पंजे से निकलकर भागने का प्रयत्न करने लगा। उसकी अंतर्रात्मा विमुख होकर अपने ही घरवाले के प्रति विद्रोह कर बैठी!

छदामी ने बहुतेरा उसको ढाढस बंधाया कि तेरे डरने की कोई बात नहीं है। इसके बाद उसने थाने में और अदालत में जज के सामने उसे क्या कहना होगा, बार-बार सिखा-पढ़ाकर सब ठीक-ठाक कर दिया; लेकिन चन्दा ने लम्बा-चौड़ा उसका व्याख्यान बिल्कुल भी नहीं सुना, वह पाषाण-प्रतिमा के समान वहां चुपचाप बैठी रही।

सभी कामों में दम्मी छदामी के भरोसे रहता है। छदामी ने जब चन्दा पर सारा दोष गढ़ने की बात कही, तो दम्मी ने पूछा—"फिर बहू का क्या होगा ?"

छदामी ने कहा—"उसे मैं बचा लूंगा।"

भाई की बात सुनकर हा-हा कह दम्मी निश्चिंत हो गया।

छदामी ने चन्दा को सिखा दिया था कि तू कहना दीदी मुझे हंसिया लेकर मारने आई थी, सो मैं भी हंसिया ले उसे रोकने लगी, अचानक वह उसके लग गया। ये सब बातें चौधरी रामलोचन की बनाई हुई थीं। इनके अनुकूल जिन-जिन बातों और सबूतों की आवश्यकता थी, वे सब बातें भी उन्होंने विस्तार से छदामी को समझा दी थीं।

पुलिस ने आकर जोरों से तहकीकात करनी शुरू कर दी। लगभग सभी आस-पास के लोगों के मन में यह बात घर कर गई थी कि चन्दा ने ही जिठानी की हत्या की है। सभी गांव वालों के बयानों से ऐसा ही सिद्ध हुआ। पुलिस की ओर से चन्दा से जब पूछा गया तो उसने कहा—"हां, मैंने ही खून किया ?"

"क्यों खून किया ?"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

"मुझसे वह डाह रखती थी।"

"कोई झगड़ा हुआ था ?"

"नहीं।"

"वह तुम्हें पहले मारने आई थी ?"

"नहीं।"

"तुम पर किसी किस्म का अत्याचार किया था ?"

"नहीं।"

इस प्रकार का उत्तर सुनकर सब देखते रह गये।

छदामी एकदम घबरा गया, बोला—"यह ठीक नहीं कह रही है। पहले बड़ी बहू...."

थानेदार ने उसे डांटकर चुप कर दिया। अन्त तक अनेक बार जिरह करने पर भी वही एक प्रकार का उत्तर मिला। बड़ी बहू की ओर से किसी प्रकार हमला होना चन्दा ने किसी प्रकार भी स्वीकार नहीं किया ?

ऐसी जिद्दी औरत शायद ही कहीं देखने में आती हो। वह तो जी-जान से कोशिश करके फांसी के तख्ते की ओर झुकी जा रही है, किसी भी तरह रोके नहीं रुकती ? यह कैसा रूठना है ? चन्दा शायद मन-ही-मन कह रही थी कि मैं तुम्हें छोड़कर अपनी इस जवानी को लेकर फांसी के तख्ते पर चढ़ जाऊंगी, फांसी की रस्सी को गले लगाऊंगी, मेरे इस जन्म का आखिरी बन्धन उसी के साथ है।

बन्दिनी होकर चन्दा, फिर परिचित गांव के रास्ते से, जगन्नाथ जी के शिवालय के पास से, बीच बाजार से, घाट के तट से, मजमूदारों के घर के सामने से, डाकखाना और स्कूल के बगल से, सभी परिचित लोगों की आंखों के सामने से कलंक का दाग माथे पर लगाकर सदैव के लिए घर छोड़कर चली गई। गांव के बालकों का एक झुंड पीछे-पीछे चला जा रहा था और गांव की औरतें, उसकी सखी-सहेलियां, कोई घूंघट की सेंध में से, कोई दरवाजे की बगल में से और कोई वृक्ष की ओट में से सिपाहियों से घिरी चन्दा को जाती देख लज्जा से, घृणा से और भय से रोमांचित हो उठीं।

डिप्टी मजिस्ट्रेट के सामने चन्दा ने अपना ही दोष स्वीकार किया और दुर्घटना से पहले बड़ी बहू ने उस पर किसी प्रकार की ज्यादती या जुल्म किया था ? यह बात उसके मुंह से किसी भी प्रकार निकली ही नहीं ?

पर छदामी उस दिन गवाह के कचहरी पहुंचते ही रो दिया; और हाथ जोड़कर बोला—"दुहाई है हुजूर, मेरी बहू का कोई कसूर नहीं ?" हाकिम ने रोबीले स्वर में उसे रोककर प्रश्न पर प्रश्न करना शुरू किया। उसने एक-एक करके सारी की सारी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सच्ची वारदात कह सुनाई।

पर हाकिम ने उसकी बात का विश्वास नहीं किया। कारण, गांव के चौधरी रामलोचन ने गवाह के रूप में कहा—"खून होने के थोड़ी देर बाद मैं इनके घर पहुंचा था। गवाह छदामी ने सब बातें कबूल करके मेरे पैरों में गिर कर कहा था कि बहू को किस प्रकार बचाऊं, कोई सलाह दीजिये। गवाह ने मुझसे कहा कि मैं यदि कहूं कि मेरे बड़े भाई ने खाने को मांगा था, सो उसने दिया नहीं, इस पर गुस्से में आकर भाई ने अपनी घरवाली पर हंसिया का वार किया, जिससे उसने उसी समय दम तोड़ दिया, तो वह बच जायेगा।" मैंने कहा—"खबरदार हरामजादे, अदालत में एक कथन भी झूठ का न बोलना, इससे बढ़कर महापाप और नहीं है...."

रामलोचन ने पहले चन्दा को बचाने के लिए बहुत-सी बातें बना ली थीं, किन्तु जब देखा कि चन्दा खुद ही अड़कर फंस रही है, तब सोचा कि कहीं मुझे ही झूठे जुल्म की गवाही में न फंसना पड़े। इससे जितना जानता हूं उतना ही कहना अच्छा है। यह सोचकर उन्होंने उतना ही कहा और उस कहने में किसी प्रकार की कोई कसर उठाकर न रखी।

डिप्टी मजिस्ट्रेट ने इस केस को सेशन के सुपुर्द कर दिया।

इस बीच में खेतीबारी, हाट बाजार, रोना-हंसना आदि संसार के सभी काम चलने लगे। पहले के समान सारे धान के खेतों में सावन के मेघ बरस उठे।

पुलिस मुलजिम और गवाहों को लेकर सेशन जज की अदालत में पहुंची। इजलास लगा हुआ था। बहुत से लोग अपने-अपने मुकदमे की पेशी की इंतजारी में बैठे थे। कोई मुकदमा चल रहा था। छदामी ने खिड़की में से झांककर रोजमर्रा की इस आकुल-व्याकुल दुनिया को एक नजर से देखा। सब कुछ उसे सपना मालूम हुआ। अदालत के अहाते के भीतर के वटवृक्ष पर से कोयल कूक उठी।

अपनी पेशी पर चन्दा ने झुंझला कर जज के सामने कहा—"अरे साहब, एक ही बात को बार-बार कितनी बार बताऊं।"

जज ने उसे समझाते हुए पूछा—"तुम जिस दोष को अपने सिर पर ले रही हो, उसकी सजा जानती हो, क्या है ?"

चन्दा ने कहा—"नहीं।"

जज ने मुस्कराते हुए कहा—"फांसी यानी मौत।"

उसे सुनते ही चन्दा के होश उड़ गये। उसने गिड़गिड़ाते हुए कहा—"साहब, आपके पैरों पड़ती हूं, मुझे यही सजा दो, मुझसे अब दुनिया की बातें सही नहीं जातीं।"

जब छदामी को अदालत में पेश किया गया तो चन्दा ने उसकी ओर से मुंह

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

फेर लिया।

जज ने पूछा—"गवाह की ओर देखकर बताओ, यह तुम्हारा कौन लगता है ?"

चन्दा ने अपने मुंह को हाथों से ढक कर कहा—"यह मेरा घरवाला है साहब ?"

जज—"तुम्हें यह चाहता है ?"

चन्दा—"बहुत ज्यादा हजूर।"

जज—"तुम उसे नहीं चाहतीं क्या ?"

चन्दा—"बहुत ज्यादा चाहती हूं हजूर।"

तभी छदामी ने बीच में ही कहा—"हजूर, खून तो मैंने किया है।"

जज ने प्रश्न किया—"क्यों ?"

छदामी ने कहा—"खाने को मांगा था, सो उसने दिया नहीं।" दम्मी जब गवाही देने आया, बेहोश होकर गिर पड़ा।

होश आने पर उसने कहा—"हजूर ! खून तो मैंने किया है।"

"क्यों ?"

"खाने को मांगा था, सो उसने दिया ही नहीं।"

बहुत जिरह और गवाहों के बयान के बाद जज ने साफ-साफ समझ लिया कि घर की बहू को फांसी से बचाने के लिए दोनों भाई कसूर मंजूर कर रहे हैं। लेकिन चन्दा थाने से लेकर सेशन अदालत तक एक ही बात बराबर कहती आ रही थी। उसकी बात में तनिक भी कहीं अन्तर नहीं पड़ा। दो वकीलों ने स्वतः प्रवृत्त होकर उसे फांसी के फंदे से बचाने का बहुत प्रयत्न किया; लेकिन अन्त में हार माननी पड़ी।

जिस दिन तनिक-सी आयु में एक काली-काली छोटी-मोटी लड़की अपना गोल-मोल चेहरा लिए, गुड्डा-गुड़िया फेंककर अपने माता-पिता का संग छोड़कर ससुराल आई थी। दस दिन रात को शुभ लग्न के वक्त आज दिन की कौन सोच सकता था ? उसके पिता ने अन्तिम समय में यह कहा था कि, खैर कुछ भी हो मेरी लड़की तो ठीक-ठिकाने से लग गई।

फांसी से पूर्व, जेलखाने में सिविल सर्जन ने चन्दा से पूछा—"किसी को देखने की इच्छा हो तो बोलो ?"

चन्दा ने उत्तर दिया—"बस एक बार अपनी मां को देखना चाहती हूं।"

सिविल सर्जन ने पुनः कहा—"तुम्हारा घरवाला तुम्हें मिलना चाहता है, उसे बुलवा लिया जाये।"

चन्दा ने उद्विग्न होकर कहा—"उहूं हूं, मौत भी नहीं आई।"

●

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कंचन

मैं विदेश से लौटकर छोटा नागपुर के एक चन्द्रवशीय राजा के दरबार में नौकरी करने लगा। उन्हीं दिनों मेरी देशव्यापी कीर्ति के पटल पर अचानक एक छोटी-सी कहनी खिल उठी। उन दिनों गगन टेसू की रक्तिमाभा से विभोर था। शाल वृक्ष की टहनियों पर मंजरियां झूल रही थीं। मधुमक्खियों के समूह मंडराते फिर रहे थे। व्यापारी लोगों का लाख संग्रह का समय आ गया था। बेर और शहतूत के पत्तों से रेशम के कीड़े इकट्ठे किए जा रहे थे। संथाल जाति महुए बीनती हुई फिर रही थी। नूपुर की झंकार के समान गुंजती हुई नदी वहीं पर बही जा रही थी। मैंने स्नेह से उस नदी का नाम रखा था—'तनिका।'

उस समय का वातावरण अनोखे आवेश में परिपूर्ण था। उसका मेरे मन पर भी अधिकार हो गया था। जिससे कार्य की गति मंथर पड़ गई थी। तब मैं अपने पर ही खीझ उठा था।

दिन ढल रहा था। एक स्थान पर दोआबा बनाती हुई नदी दो शाखाओं में विभक्त होकर चली गई है। उसी बालू के टीले पर बगुलों की पंक्ति शान्त बैठी थी। अपनी झोली में रंग-बिरंगे पत्थरों को भरे मैं कोठी को लौट रहा था। यह सोचकर कि अपनी विज्ञान-शाला में इनकी परीक्षा करूंगा। निर्जन वन में अकेले आदमी का समय काटना कठिन-सा हो जाता है अतः मैंने सन्ध्या के बाद का समय प्रयोग के लिए नियत कर लिया है। डायनुमा द्वारा बिजली की रोशनी कर बैठ जाता हूं। नाना प्रकार के रासायनिक द्रव, माइक्रोस्कोप और तराजू लेकर। इसी प्रकार बैठे-बैठे कभी-कभी आधी रात हो जाती है। मुझे आज विशेष खोज के बाद 'मेगनीज' के चिन्हों का आभास मिला था। इसलिए मेरी वापसी आज विशेष उत्साह के साथ हो रही थी। उस वातावरण में कौए कांव-कांव करते हुए सिर पर से अपने-अपने नीड़ों की ओर बढ़े जा रहे थे।

इसी समय मेरे सम्मुख आकर एक बाधा खड़ी हो गई। उस निर्जन पथ के एक टीले पर पांच शाल वृक्षों का एक व्यूह जैसा खड़ा था। उसके झुरमुट में बैठे हुए व्यक्ति को केवल एक ही ओर संधि से देखा जा सकता था। उस समय मेघों के अन्तराल से एक आश्चर्यमयी दीप्ति फूट कर निकल रही थी। उस छायामय

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

वातावरण के भीतर गगन की लालिमा मानो किसी दिवंगना के खुले आंचल से गिरने वाले स्वर्ग की तरह छितरा रही थी। उसी विशेष ज्योति के पथ पर वह कोमलांगी बैठी थी। उन पेड़ के तने से टिक कर दोनों पैरों को छाती के समीप समेटे वह मन लगाकर कुछ लिखे जा रही थी।

मैं वृक्ष की आड़ में खड़ा-खड़ा केवल उसकी ओर ताकता भर रहा। हृदय के आगारों में एक अनोखी छवि अंकित होने लगी। अपनी विशद् जानकारी के पथ पर मेरा हृदय कितने ही चक्कर काटकर प्रवेश-द्वार तक आ पहुंचा था; किन्तु मैं सदैव ही उससे खिसक जाता था। लेकिन आज ऐसा जान पड़ा, मानो जीवन के किसी चरम के संघर्ष में आ गया हूं। यह कैसा हो गया ? उसका मुझे पता नही। मैं तो सदैव से अपने को पर्वत की तरह नीरस समझता आया था। अनायास ही भीतर से एक झरना फूट पड़ा।

उस बाला को भी मेरे खड़े होने का कुछ आभास-सा हो गया। उसने लिखना बन्द कर दिया; किन्तु उठ न सकी। मैंने सोचा कि कहूं—"क्षमा कीजिए ! किन्तु कैसी क्षमा ? मैंने ऐसा कौन-सा दण्डनीय कार्य किया था ?"

यही सोचता हुआ मैं अपनी कोठी की ओर बढ़ा चला जा रहा था तभी मेरी दृष्टि नीचे पड़े दो टुकड़ों में फाड़े हुए किसी पत्र के लिफाफे पर जा पड़ी। मैंने उठकार देखा—नाम, भवतोष मजूमदार, आई॰सी॰एस॰, मुकाम छपरा; हाथ की लिखावट लड़कियों जैसी। टिकट लगा हुआ है; लेकिन उस पर डाकखाने की मोहर नहीं है। मेरी अक्ल ने झट समझ लिया कि फटे पत्र के लिफाफे पर किसी दुखान्त नाटक का क्षत चिन्ह विद्यमान है और मैंने उस लिफाफे के रहस्य को जानने का भी संकल्प कर लिया।

जियोलॉजी के अध्ययन अभ्यास के साथ भीतर-ही-भीतर इस रहस्योद्घाटन का काम भी चल रहा था। जिस समय मैं रेडियम के कण पाने की आशा लेकर अनुसंधान में डूबा हुआ था। उस समय मैंने कुसुमित शाल वृक्षों की छाया और प्रकाश के बन्धन में कंचन को देखा था। इसमें कोई शक नहीं कि इससे पूर्व भी बंगाली बाला को निहारा था; किन्तु इस स्वतन्त्र और एकान्त वातावरण में देखने का अवसर कभी नहीं मिला। यहां उसकी सलोनी देह की कोमलता के साथ वन के फूल ने अपनी भाषा का स्वर मिला दिया। विदेशी कोमलांगियों के दर्शन तो बहुत किये थे, सम्भवतः वे भली भी लगी थीं; किन्तु बंगाली बाला को पहली बार ही इस प्रकार से देखा कि उसकी समग्रता को उपलब्ध किया जा सके। उसे देखकर यह प्रतीत नहीं होता कि उसका सम्बन्ध किताबों से छटा या नहीं....।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

बहुत दिन पहले, बाल्यावस्था में किन्हीं बसु महाशय का जो गीत मैंने सुना था और जिसे सुनकर भी भुला दिया था, न जाने क्यों ऐसा जान पड़ा कि उस राग को सहज संगिनी में इसी बंगाली लड़की के रूप की जो भूमिका व्यंजित है, वह आज मेरी आंखों से समक्ष साकार हो उठी है।

जियोलॉजी शास्त्र में पढ़ा था कि पृथ्वी के नीचे छुपी हुई आग्नेय सामग्री सहसा तेज भूकम्प से आंदोलितावस्था में ऊपर आ जाती है। आज अपने ही निम्न स्तर के अन्धकार में छुपी हुई उसी तपी भली सामग्री को सहसा ऊपर के प्रकाश में देखा। कठोर विज्ञानी नीलामाधव के अन्तस्थल में इस प्रकार आंदोलितावस्था की मैंने कभी आशा नहीं की थी।

पता लग गया कि प्रतिदिन तीसरे पहर जब इसी मार्ग से काम से लौटा करता तो वह मुझे विशेष दृष्टि से देखा करती पर उसकी दृष्टि से क्या है यह अब तक मैं समझ नहीं सका था ? कभी-कभी मैं मार्ग चलता हुआ पीछे की ओर मुड़कर देख लेता तो ऐसा लगता, कंचन मेरे ओझल होने के मार्ग की ओर देख रही है, मुझे मुड़ता देख वह अपनी दृष्टि घुमाकर उन कागजों की ओर कर लेती, जिन पर बैठी वह लिखा करती थी।

मेरे विज्ञानी मन को ऐसा लगा कि वह किसी को पाने के लिए इतना कठोर व्रत कर रही है ? भवतोष विलायत से लौटकर छपरे में असिस्टेंट मजिस्ट्रेट के पद पर नियुक्त हो गया है। विलायत जाने से पूर्व इन दोनों में यहीं रहते समय गम्भीर प्रणय हो गया था। परन्तु अब पद की नियुक्ति के बाद कोई विशेष विप्लव घट चुका है। असल बात क्या है ? इसकी तो जानकारी करने से ही पता लगेगा।

मेरे लिए जानकारी करना कोई कठिन कार्य नहीं था; क्योंकि मेरे सहपाठी बंकिम बाबू पटना विश्वविद्यालय में काम करते थे। उनको पत्र लिख कर डाल दिया—"बिहार की सिविल सर्विस में कोई भवतोष महाशय है। मेरे किसी मित्र ने अपनी लड़की के लिए इन्हें पसन्द किया है। इस कार्य में मेरा सहयोग चाहते हैं। रास्ता पथरीला तो नहीं। इसका पूरा पता लगाकर मुझे लिखो तो मैं अभारी रहूंगा। उन महाशय का विवाह के लिए क्या मत है, यह भी लिखिये ?"

पत्र का उत्तर मिला—"रास्ता पथरीले से भी अधिक बढ़कर है। उसकी राय के विषय में सुनो। जब मैं कॉलिज में डॉ॰ अनिल कुमार का छात्र था। जितना साधारण उनका पांडित्य था उतना ही सरल उनका हृदय। उनकी नातिन को देखो तो पता लगेगा कि सरस्वती देवी ने उनकी साधना से संतुष्ट होकर, उनके बुद्धि लोक को ही प्रकाशित नहीं किया बल्कि वह रूप सुधा को लेकर उनकी गोदी में भी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

आई हैं। तुम्हारा शैतान भवतोष उनके इसी स्वर्ग लोक में न जाने कहां से आन पड़ा ? उसकी बुद्धि प्रखर थी और वाक्पटुता में वह निपुण। पहले धोखा खाया डॉक्टर साहब ने और बाद में उनकी नातिन ने। विवाह सम्बन्ध निश्चित हो चुका था; प्रतीक्षा थी भवतोष की विलायत से लौटने की। वहां का सारा खर्च डॉक्टर साहब ने दिया था। सिविल सर्विस की परीक्षा पास करके जब वह भारत आया और यहां के किसी उच्च पदाधिकारी की कन्या से विवाह कर लिया ? उसके इन कुकृत्य और लज्जा से क्षुब्ध होकर डॉक्टर साहब नौकरी को तिलांजलि देखकर अपनी नातिन के साथ कहां चले गये ? इसका कुछ पता नहीं।"

पत्र को पढ़कर कंचन की परिस्थिति का पूर्ण आभास हुआ। तभी दृढ़ संकल्प किया कि उसको लज्जा और अवसाद से मुक्त करूंगा।

दिवाकर अस्पताल की ओर जा रहे थे। सन्ध्या अपना आवरण फैला रही थी। यह समय कंचन का घर लौटने का हो गया था। तभी कोई गंवार उसके हाथ से लिखे हुए पृष्ठ छीनकर भाग खड़ा हुआ। मैंने उसका पीछा किया और उन पृष्ठों को पाने में सफल हो गया। मैंने वे सब कंचन को लौटा दिये। अपनी सम्पत्ति को वापस आया देख कंचन ने स्निग्ध दृष्टि से देखते हुए कहा—"सौभाग्य से आप....।"

मैंने कहा—"भाग भले थे कि वह आया....।"

"इसका आशय।"

"स्पष्ट है।"

"मैं नहीं समझी।"

"यही कि उसकी सहायता से आपके साथ ही पहली बात हो गई। इससे पूर्व वही सोचता रहता था कि कैसे और क्या बोलूं ?"

"किन्तु वह तो एक....।"

"क्या एक ?"

"डाकू।"

"नहीं, वह डाकू नहीं, वह मेरा ही सिपाही था।"

कंचन अपने गहरे रंग की साड़ी का छोर पकड़, अपने मुंह पर रख खिलखिलाकर हंस पड़ी। हंसी के रुकते ही उसने कहा—"काश, यह सच होता, तो बड़ा मजा आता।"

"जिसके यहां डाका पड़ा उसको।"

"उद्धार करने वाले के लिए क्या होगा ?"

"उसे घर पर ले जाकर चाय पिला देती।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

बहुत दिन पहले, बाल्यावस्था में किन्हीं बसु महाशय का जो गीत मैंने सुना था और जिसे सुनकर भी भुला दिया था, न जाने क्यों ऐसा जान पड़ा कि उस राग को सहज संगिनी में इसी बंगाली लड़की के रूप की जो भूमिका व्यंजित है, वह आज मेरी आंखों से समक्ष साकार हो उठी है।

जियोलॉजी शास्त्र में पढ़ा था कि पृथ्वी के नीचे छुपी हुई आग्नेय सामग्री सहसा तेज भूकम्प से आंदोलितावस्था में ऊपर आ जाती है। आज अपने ही निम्न स्तर के अन्धकार में छुपी हुई उसी तपी भली सामग्री को सहसा ऊपर के प्रकाश में देखा। कठोर विज्ञानी नीलामाधव के अन्तस्थल में इस प्रकार आंदोलितावस्था की मैंने कभी आशा नहीं की थी।

पता लग गया कि प्रतिदिन तीसरे पहर जब इसी मार्ग से काम से लौटा करता तो वह मुझे विशेष दृष्टि से देखा करती पर उसकी दृष्टि से क्या है यह अब तक मैं समझ नहीं सका था ? कभी-कभी मैं मार्ग चलता हुआ पीछे की ओर मुड़कर देख लेता तो ऐसा लगता, कंचन मेरे ओझल होने के मार्ग की ओर देख रही है, मुझे मुड़ता देख वह अपनी दृष्टि घुमाकर उन कागजों की ओर कर लेती, जिन पर बैठी वह लिखा करती थी।

मेरे विज्ञानी मन को ऐसा लगा कि वह किसी को पाने के लिए इतना कठोर व्रत कर रही है ? भवतोष विलायत से लौटकर छपरे में असिस्टेंट मजिस्ट्रेट के पद पर नियुक्त हो गया है। विलायत जाने से पूर्व इन दोनों में यहीं रहते समय गम्भीर प्रणय हो गया था। परन्तु अब पद की नियुक्ति के बाद कोई विशेष विप्लव घट चुका है। असल बात क्या है ? इसकी तो जानकारी करने से ही पता लगेगा।

मेरे लिए जानकारी करना कोई कठिन कार्य नहीं था; क्योंकि मेरे सहपाठी बंकिम बाबू पटना विश्वविद्यालय में काम करते थे। उनको पत्र लिख कर डाल दिया—"बिहार की सिविल सर्विस में कोई भवतोष महाशय है। मेरे किसी मित्र ने अपनी लड़की के लिए इन्हें पसन्द किया है। इस कार्य में मेरा सहयोग चाहते हैं। रास्ता पथरीला तो नहीं। इसका पूरा पता लगाकर मुझे लिखो तो मैं अभारी रहूंगा। उन महाशय का विवाह के लिए क्या मत है, यह भी लिखिये ?"

पत्र का उत्तर मिला—"रास्ता पथरीले से भी अधिक बढ़कर है। उसकी राय के विषय में सुनो। जब मैं कॉलिज में डॉ॰ अनिल कुमार का छात्र था। जितना साधारण उनका पांडित्य था उतना ही सरल उनका हृदय। उनकी नातिन को देखो तो पता लगेगा कि सरस्वती देवी ने उनकी साधना से संतुष्ट होकर, उनके बुद्धि लोक को ही प्रकाशित नहीं किया बल्कि वह रूप सुधा को लेकर उनकी गोदी में भी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

आई हैं। तुम्हारा शैतान भवतोष उनके इसी स्वर्ग लोक में न जाने कहां से आन पड़ा ? उसकी बुद्धि प्रखर थी और वाक्पटुता में वह निपुण। पहले धोखा खाया डॉक्टर साहब ने और बाद में उनकी नातिन ने। विवाह सम्बन्ध निश्चित हो चुका था; प्रतीक्षा थी भवतोष की विलायत से लौटने की। वहां का सारा खर्च डॉक्टर साहब ने दिया था। सिविल सर्विस की परीक्षा पास करके जब वह भारत आया और यहां के किसी उच्च पदाधिकारी की कन्या से विवाह कर लिया ? उसके इन कुकृत्य और लज्जा से क्षुब्ध होकर डॉक्टर साहब नौकरी को तिलांजलि देखकर अपनी नातिन के साथ कहां चले गये ? इसका कुछ पता नहीं।"

पत्र को पढ़कर कंचन की परिस्थिति का पूर्ण आभास हुआ। तभी दृढ़ संकल्प किया कि उसको लज्जा और अवसाद से मुक्त करूंगा।

दिवाकर अस्पताल की ओर जा रहे थे। सन्ध्या अपना आवरण फैला रही थी। यह समय कंचन का घर लौटने का हो गया था। तभी कोई गंवार उसके हाथ से लिखे हुए पृष्ठ छीनकर भाग खड़ा हुआ। मैंने उसका पीछा किया और उन पृष्ठों को पाने में सफल हो गया। मैंने वे सब कंचन को लौटा दिये। अपनी सम्पत्ति को वापस आया देख कंचन ने स्निग्ध दृष्टि से देखते हुए कहा—"सौभाग्य से आप....।"

मैंने कहा—"भाग भले थे कि वह आया....।"

"इसका आशय।"

"स्पष्ट है।"

"मैं नहीं समझी।"

"यही कि उसकी सहायता से आपके साथ ही पहली बात हो गई। इससे पूर्व वही सोचता रहता था कि कैसे और क्या बोलूं ?"

"किन्तु वह तो एक....।"

"क्या एक ?"

"डाकू।"

"नहीं, वह डाकू नहीं, वह मेरा ही सिपाही था।"

कंचन अपने गहरे रंग की साड़ी का छोर पकड़, अपने मुंह पर रख खिलखिलाकर हंस पड़ी। हंसी के रुकते ही उसने कहा—"काश, यह सच होता, तो बड़ा मजा आता।"

"जिसके यहां डाका पड़ा उसको।"

"उद्धार करने वाले के लिए क्या होगा ?"

"उसे घर पर ले जाकर चाय पिला देती।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

"और इस नकली उद्धारकर्त्ता का क्या होगा ?"

"उसने जो चाहा था मिल गया।"

"क्या मिल गया ?"

"परिचय की पहली बात और क्या ?"

"बस।"

"हां।"

"मैं चाहता हूं।"

"क्या चाहते हैं आप ?"

"बातों का क्रम अब समाप्त न हो।"

"समाप्त कैसे होगा ?"

"अच्छा यदि आप होती तो पहली बात आप क्या कहतीं ?"

"मैं तो केवल यही पूछती कि सड़कों पर से पत्थर चुनने में लड़कपन नहीं लगता आपको ?"

"फिर आपने पूछा क्यों नहीं ?"

"डर लगता था।"

"डर ! मुझसे।"

"हां, दादू से सुना था कि आप बड़े विद्वान हैं। उन्होंने विलायत से छपा हुआ आपका लेख पढ़ा था। उन्होंने उसे समझने का प्रयत्न किया, पर मैं समझ न सकी।"

तभी किसी की आवाज सुनाई दी—"दीदी कहां हो तुम ? अन्धेरा हो गया है। आज कल समय अच्छा नहीं है।" डॉक्टर साहब के उपस्थित होते ही मैंने उनके चरणों की धूल लेकर प्रणाम किया। वे तनिक सहम गये। परिचय दिया—"मेरा नाम नवीन माधव सेन गुप्त है।"

उसे सुन कर वृद्ध डॉक्टर का मुख उज्ज्वल हो उठा, बोले—

"क्या कहते हो ? आप ही डॉक्टर सेन गुप्त हैं ? आप तो बच्चे हैं।"

मैंने उत्तर दिया—"अभी बच्चा ही हूं, मैंने अभी छत्तीस को पार किया है।"

"आपको हमारे यहां चलना होगा।"

"इसके लिए कहना न पड़ेगा दादू; ये तो पहले ही चलने के लिए मुंह धोये बैठे हैं।"

मैंने मन-ही-मन कहा—अनर्थ हो गया ! कैसी शरारत की है कंचन ने ?

डॉक्टर साहब ने उत्साहित स्वर में कहा—"आपको शायद देश और काल की....।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

"नहीं, नहीं ! मैं इन चीजों को कुछ भी नहीं समझता ! मुझे समझाने में आपका समय ही बर्बाद होगा ?"

"समय ! यहां समय का अभाव ही क्या है ? अच्छा, आज भोजन हमारे ही यहां करें।"

मैं धन्यवाद करने ही जा रहा था, कि कंचन बोल उठी—

"दादू ! हरेक को न्यौता देकर मुझे मुश्किल में डाल देते हो। भला इस जंगल में फिरंगी की दुकान कहां मिलेगी ? ये विलायत के 'डिनर' खाने वाली जाती से सम्बन्धित इंसान हैं। व्यर्थ में अपनी नातिन को बदनाम करना चाहते हो ?"

"अच्छा, अच्छा तो कब आपको सुविधा होगी, बताइए"—वृद्ध महाशय पूछ उठे।

"मेरी सुविधा तो कल ही हो सकती है; परन्तु मैं कंचन देवी को परेशान नहीं करना चाहता। मुझे अनुसंधान के लिए वनों में जाना पड़ता है। वहां जो कुछ भी प्रकृति की देन के द्वारा मिलता है उसे बटोर कर ले आता हूं।"

"दादू ! इनकी बातों पर विश्वास मत कीजिए....ये तो ऐस ही कहते रहते हैं।"

मैंने सोचा यह तो अजीब लड़की है, जो कहता हूं उसी को जड़ से काट देती है। इस प्रकार वार्ता करते-करते हम सब कंचन के मकान की ओर बढ़े चले जा रहे थे कि कंचन हठात् बोल उठी—"अब आप अपने शिविर को लौट जाइये।"

"क्यों ? मैंने तो सोचा था कि आप लोगों को मकान तक छोड़ आऊं।"

"बस, बस, हम खुद ही चले जायेंगे। अस्त-व्यस्त अवस्था में मकान को दिखाकर परिहास का केन्द्र नहीं बनना चाहती। उसे देखते ही मेम साहिब की याद आ जायेगी।"

विवश हो मुझे विलग होना पड़ा। उस अवस्था में मैंने कहा—"कल आप लोगों के यहां जो मेरा न्यौता है, वह मेरे नये नामकरण के लिए है। कल से नवीन माधव नाम का डॉक्टर सेन गुप्त अंश छूट जायेगा।"

"तब तो नामवर्त्तन कहिये, नामकरण क्यों कहते हैं ?"

"जैसा आप समझें।"

इसके उपरान्त मैं अपने शिविर में लौट आया। उस दिन अनुसंधान के लिए लाये हुए पदार्थों की मैं परख नहीं कर सका। मेरा मस्तिष्क कंचन के विषय में ही सोचता रहा।

अगले दिन तनिका के तट पर कंचन के साथ हमारी पिकनिक हुई। डॉक्टर साहब बालकों के समाने मुझसे पूछ बैठे—"नवीन, क्या तुम विवाहित हो ?" मैंने

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

उस भावार्थ प्रश्न का तुरन्त ही उत्तर देते हुए कहा—"अभी तक तो अविवाहित हूं।" कंचन को किसी बात से छुटकारा नहीं ? वह बोली—"दादू ! अभी तक शब्द तो कन्यापक्ष वालों को सान्त्वना देने मात्र के लिए हैं। उनका कोई यथार्थ अर्थ नहीं।"

"यथार्थ अर्थ नहीं, यह कैसे निश्चय कर लिया ?"

"यह एक गणित की उलझन है, फिर भी उच्च गणित कहने से जो वस्तु समझी जाती है, वह यह नहीं है। यह तो पहले से ही सुनने में आया है कि आप छत्तीस साल के बच्चे हैं। इस अर्से में आपसे भी पांच-सात बार कहा जा चुका है कि बेटा बहू लाना चाहती हूं। लेकिन आपने कहा –"इससे पहले मैं लोहे के सन्दूक में रुपये लाना चाहता हूं। इसके बाद इस अर्से में आपका सब कुछ हो गया केवल फांसी पर शेष थी। अन्त में प्रांतीय सरकार का बड़ा पद जुट गया तो मां ने फिर कहा—' अब तो बेटा ब्याह करना होगा। मेरी जिन्दगी के और कितने दिन बाकी हैं ?' आपने कहा—'मेरा जीवन और मेरा विज्ञान एक है, उसे मैं देश के लिए उत्सर्ग करूंगा। मैं अभी ब्याह न करूंगा।' विवश होकर फिर उन्होंने आंखों का पानी पोंछकर चुप्पी साध ली। आपके छत्तीस वर्ष का हिसाब लगाते समय मैंने कहीं गलती की हो तो कहिए, वास्तव में बताइये, संकोच की कोई आवश्यकता नहीं।"

फिर बोली—"हम लोगों के देश में आप लोग लड़कियों को जीवन-संगिनी के रूप में पाते हैं। विश्व का जिससे कोई प्रयोजन नहीं, किन्तु विदेश में जो लोग विज्ञान के तपस्वी हैं, उनको तो उपयुक्त तपस्विनी ही मिल जाती है—जैसे अध्यापक क्यूरी को सहधर्मिनी मादाम क्यूरी। तो क्या वैसी ही आपको वहां रहते नहीं मिली ?"

कंचन के कहते ही कैथेरिन की बात याद आ गई। लन्दन में रहते समय साथ ही काम किया था। मेरी एक रिसर्च की पुस्तक में मेरे नाम के साथ उसका नाम भी जड़ित था। बात माननी पड़ी।

कंचन ने तत्काल ही पूछा—"उनके साथ आपने विवाह क्यों नहीं किया ? वे क्या इसके लिए तैयार नहीं थीं ?"

"उन्हीं की ओर से प्रस्ताव तो उठा था।"

"तब।"

"मेरा नाम भारत वर्ष का ठहरा, इसलिए....।"

"यानी स्नेह की सफलता आप जैसे साधकों की कामना की वस्तु नहीं। लड़कियों के जीवन का परम लक्ष्य व्यक्तिगत है, और आप जैसे इंसानों का नैर्यक्तिक।"

इसका उत्तर मुझे देते न बन पड़ा। मुझे चुप देखकर कंचन पुनः बोली—"बंगला

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

साहित्य कतिपय आपने नहीं पढ़ा। उसमें यही बात दिखाई गई है कि लड़कियों का व्रत पुरुष को बांधना है और पुरुष का व्रत है उस बन्धन को काटकर ऊपर लोक का मार्ग पकड़ना। कच भी देवयानी के अनुरोध की उपेक्षा कर निकल पड़ा था—आप मां का अनुनय न मानकर चल पड़े हैं। एक ही बात हुई। नारी और पुरुष में चिरकाल से चला आने वाला हो, चाहे भले ही अबला क्रन्दन होता रहे। उस क्रन्दन से आप लोग अपना पूरा का नैवेद्य सजा लीजिए। देवता के उद्देश्य से ही नैवेद्य की भेंट होती है; लेकिन देवता निरासक्त ही रहते हैं।"

कंचन ने फिर कहा—"देवयानी ने कक्ष को क्या श्राप दिया था, जानते हैं, नवीन बाबू ?"

"नहीं।"

"अपने ज्ञान-साधन का फल आप स्वयं न सोच सकेंगे। हां, दूसरों को दान कर सकेंगे।" मुझे यह बात कुछ अजीब-सी लगती है। यदि यह श्राप आज कोई विदेशी लोगों को देता, तो वह बच जाता। विश्व की सामग्री को अपनी सामग्री के समान व्यवहार करने की वजह से ही यूरोप वाले लालच के द्वार पर मरते हैं।"

उस दिन जो बातें हुईं वे केवल हास्य-व्यंग्य ही नहीं थीं। उनमें युद्ध की ओर संकेत था। कंचन के साथ जब मेरा सम्बन्ध सहज हो आया था, इस पर भी मैं कंचन के सम्मुख खड़े होकर उसकी चरम अभिलाषा की थाह पाने का कोई उपाय खोज नहीं पाया।

हां, अवश्य एक दिन पिकनिक के समय यह सुयोग मिल गया। उस समय डॉक्टर साहब शिवालय के खंडहर की सीढ़ी पर बैठकर रसायन-शास्त्र की कोई नई आई हुई पोथी पढ़ रहे थे। एक आबनूस के पेड़ की झाड़ी में बैठकर कंचन अचानक कह उठी—"इस महाकाल के वन में एक अंधी प्राण शक्ति है, उससे भय ग्रस्त हूं।"

कंचन कहती गई—"पुराने भवनों की दरार से लुक-छिपकर पीपल का अंकुर निकलता है, और फिर धीरे-धीरे अपनी जड़ों से उसे बुरी तरह जकड़ लेता है। यह भी वैसा ही है। दादू के साथ यही बात हो रही थी। दादू कह रहे थे, बस्ती में बहुत दिनों तब दूर रहने से प्रकृति के अभाव से मानव का चित्र दुर्बल हो आता है और आदमी प्राणी प्रकृति का असर प्रखर हो उठता है।"

मैंने उत्तर दिया—"बताता हूं। मेरी बात को भली-भांति सोच देखियेगा। मेरा विचार यह है कि ऐसे अवसरों पर मानव का संग भीतर और बाहर से मिलना चाहिए, जिसका प्रभाव मानव प्रकृति को पूर्ण कर सके। जब तक यह नहीं होगा तब तक अंध शक्ति से पराजित ही होना पड़ेगा। काश आप मामूली...."

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

"हां, हां कहिये, संकोच मत कीजिये।"—कंचन ने शीघ्रता से कहा।

"यह तो जानते ही हैं कि मैं वैज्ञानिक हूं अतः जो कहने जा रहा हूं उसे व्यक्तिगत आसक्ति से रहित होकर ही कहूंगा। आपने एक दिन भवतोष को बहुत स्नेह से देखा था, क्या आज भी उसे उसी प्रकार...."

"समझ लीजिए, नहीं करती....तब।"

"मैंने ही आपके मन को उधर से हटाया है।"

"सम्भव हो सकता है; लेकिन आपने ही नहीं, बल्कि इस अंध शक्ति ने भी। इसलिए मैं इस हटने को श्रद्धा की दृष्टि से नहीं देखती।"

"ऐसा क्यों ?"

"दीर्घ काल के प्रयास से मानवचित्र शक्ति में अपने आदर्श की रचना करता है, प्राण शक्ति की अंधता उस आदर्श को तोड़ देती है आपके प्रति जो मेरा प्रेम है, वह उसी अंध शक्ति के आक्रमण का फल है।"

"नारी होकर भी आप प्रेम पर ऐसा अपवाद मढ़ती हैं ?"

"नारी होने के कारण ही ऐसा कह रही हूं। प्रेम का आदर्श हमारे लिए पूजा की सामग्री है। उसी को सतीत्व कहते हैं। सतीत्व एक आदर्श है। यह सामग्री वन की प्रकृति की नहीं है, मानवी की है। इस निर्जन में इतने दिनों से इसी आदर्श की पूजा कर रही थी। सारे आघातों को सहने और धोखा खाने के बाद भी उसे बचा सकी, तो मेरी पवित्रता भी नहीं जायेगी।"

"क्या भवतोष के लिए अब भी श्रद्धा का स्थान है ?"

"नहीं।"

"उसके पास जाना चाहती हो ?"

"नहीं।"

"तो फिर ?"

"कुछ भी नहीं।"

"मैं आशय नहीं समझा।"

"आप समझ भी नहीं सकेंगे। आपकी सम्पत्ति ज्ञान है, उच्चतर शिखर पर वह भी इम्पर्सनल है। नारी सम्पत्ति हृदय की सम्पत्ति है। यदि उसका सब कुछ चला जाये, वह सब कुछ जो बाहरी है, जिसे स्पर्श किया जा सकता है, तब भी उस प्रेम में वह वस्तु बच रहती है, जो कि इम्पर्सनल है।"

"वाद-विवाद में समय नष्ट न कीज़िए। मुझे कुछ ही दिनों में खोज करने के अभिप्राय से अन्यत्र कहीं चला जाना होगा किन्तु....।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

"फिर गये क्यों नहीं ?"

"आपसे....।"

तभी कंचन ने पुकारा—"दादू !"

डॉक्टर साहब अपना पढ़ना-लिखना छोड़कर उठ आये और मधुर स्नेह के स्वर में बोले—"क्या है दीदी ?"

"आपने उस दिन कहा था न कि मनुष्य का सत्य उसी की तपस्या के भीतर से अभिव्यक्त हुआ है। उसकी अभिव्यक्ति प्राणी शास्त्र से समझी जाने वाली अभिव्यक्ति नहीं है ?"

"हां, बिल्कुल ठीक....।"

"दादू तो फिर आज अपनी और आपकी बात का निर्णय कर दूं। कई दिनों से मस्तिष्क उथल-पुथल का केन्द्र बना हुआ है।"

मैं उठ खड़ा हुआ, बोला—"तो मैं चलूं।"

"नहीं ! आप बैठिये। दादू, आपका वही पद फिर खाली हुआ है और सेक्रेटरी ने पुनः आपको बुलवाया भी है।"

"हां तो फिर....।"

"आपको उस पद को स्वीकार करना होगा....अति शीघ्र वहीं लौट जाना होगा।"

डॉक्टर साहब बेचारे हतबुद्धि होकर कंचन के मुंह की ओर ताकते रहे। कंचन बोली—"अच्छा, अब समझी, आप इसी सोच में पड़े हैं कि मेरी क्या गति होगी ? यदि अहंकार की मात्रा बहुत न बढ़ती हो, तो आपको यह बात स्वीकार करनी ही होगी कि मेरे बिना आपका एक दिन भी नहीं चल सकता। मेरी अनुपस्थिति में तो पंद्रहवीं आश्विन को आप पंद्रहवीं अक्टूबर समझ बैठते हों। जिस दिन घर में अपने सहयोगी अध्यापक को भोजन के लिए आमंत्रित करते हो, उसी दिन लायब्रेरी का द्वार बन्द करके कोई 'निदारूण ईक्वेशन' सुलझाने में लग जाते हो। नवीन बाबू सोचते होंगे कि मैं बात बढ़ा-चढ़ाकर कह रही हूं।"

"आज ऐसी अशुभ बातें....।"

"सब अभी खत्म हो जायेंगी। आप चलें तो मेरे साथ अपने काम पर, छुट्टी हुई गाड़ी फिर लौट आयेगी।"

डॉक्टर साहब मेरी ओर देखकर बोले—"तुम्हारी क्या सलाह है नवीन ?"

मैं क्षण भर स्तब्ध रहकर बोला—"कंचन देवी से अधिक अच्छा परामर्श कोई नहीं दे सकता।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कंचन ने उठकर मेरे चरण छूकर प्रणाम किया। मैं संकुचित होकर पीछे हट गया। कंचल बोली—"संकोच न कीजिये। आपकी तुलना में मैं कुछ भी नहीं हूं.... यह बात किसी दिन साफ हो जायेगी ? आज आपसे यहीं अन्तिम विदा लेती हूं, जाने से पूर्व अब भेंट न होगी।"

"यह कैसी बात कह रही हो, दीदी ?"—डॉक्टर साहब ने पूछा।

"दादू...." इतना ही कह सकी कंचन।

मैंने उसी क्षण डॉक्टर साहब की पग-धूलि का स्पर्श किया। उन्होंने छाती से लगाकर कहा—"मैं जानता हूं नवीन कि तुम्हारी कीर्ति का पथ तुम्हारे सामने प्रशस्त है।"

अपने स्थान पर लौटकर पहला रिकार्ड निकाला। उसे देखते ही मन में सहसा आनन्द उमड़ आया। समझा मुक्ति इसी को कहते हैं। सन्ध्या-बेला में दिन भर का काम समाप्त करके बरामदे में आते ही अनुभव हुआ....पंछी पिंजरे से तो निकल आया है, किन्तु उसके पांवों में जंजीर की एक कड़ी अब भी उलझी हुई है.... हिलते-हिलते वह बज उठती है।

●●●

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE